सनातन दर्शन की पृष्ठभूमि

सम्पादक

श्री नारायण मिश्र एम० ए०

कृष्ण प्रेम अवस्थी एम० ए०

सनातन प्रकाशन

सनातन-आश्रम

(गौराबाग) कुर्सी रोड, लखनऊ

प्रथम संस्करण

कार्तिक कृष्ण अमावस्या
दीपमालिका, संवत् २०३१

मुद्रक :
नारायण प्रिन्टर्स
४-ए, वाल्मीकि मार्ग, लालबाग;
लखनऊ–१
दूरभाष : 27838
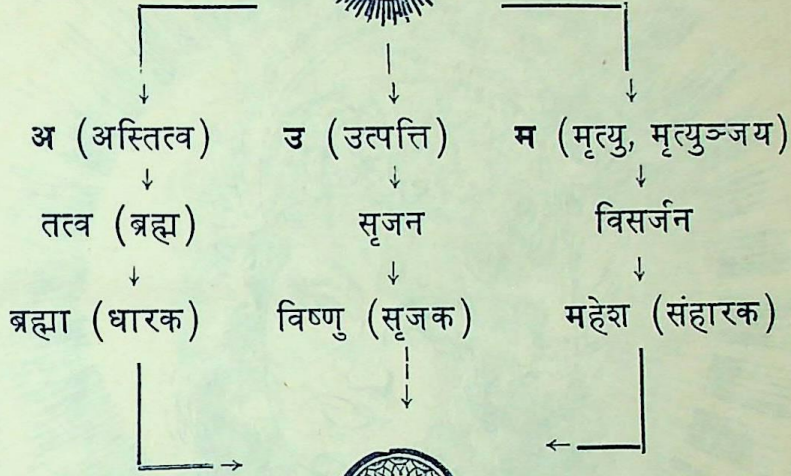
अ (अस्तित्व)
उ (उत्पत्ति)
म (मृत्यु, मृत्युञ्जय)
तत्व (ब्रह्म)
सृजन
विसर्जन
ब्रह्मा (धारक)
विष्णु (सृजक)
महेश (संहारक)
GOD
Generator
Operator
Destroyer
धारक
सृजक
संहारक
GOD
अल्लाह
الله
अलिफ
लाम
हे
ا
ل
ہ
धारक
सृजक
संहारक
अल्लाह
गॉड

·········शरीर 'रथ' है ! आत्मा कृष्ण सारथि हैं ! दस इन्द्रियाँ दस घोड़े हैं ! यज्ञोपवीत गाण्डीव है ! तू बुद्धि महारथी है, इन मायाओं के महासमर — महाभारत का·········

………'दश' इन्द्रियों को 'रथ' ! हो जा 'दशरथ' ! अन्तर्मुखी हो, जा मिल आतमा राम से ! 'दश' इन्द्रियों को 'दश मुख' बनाने वाला दशानन——अभिशप्त है स्वयं से………
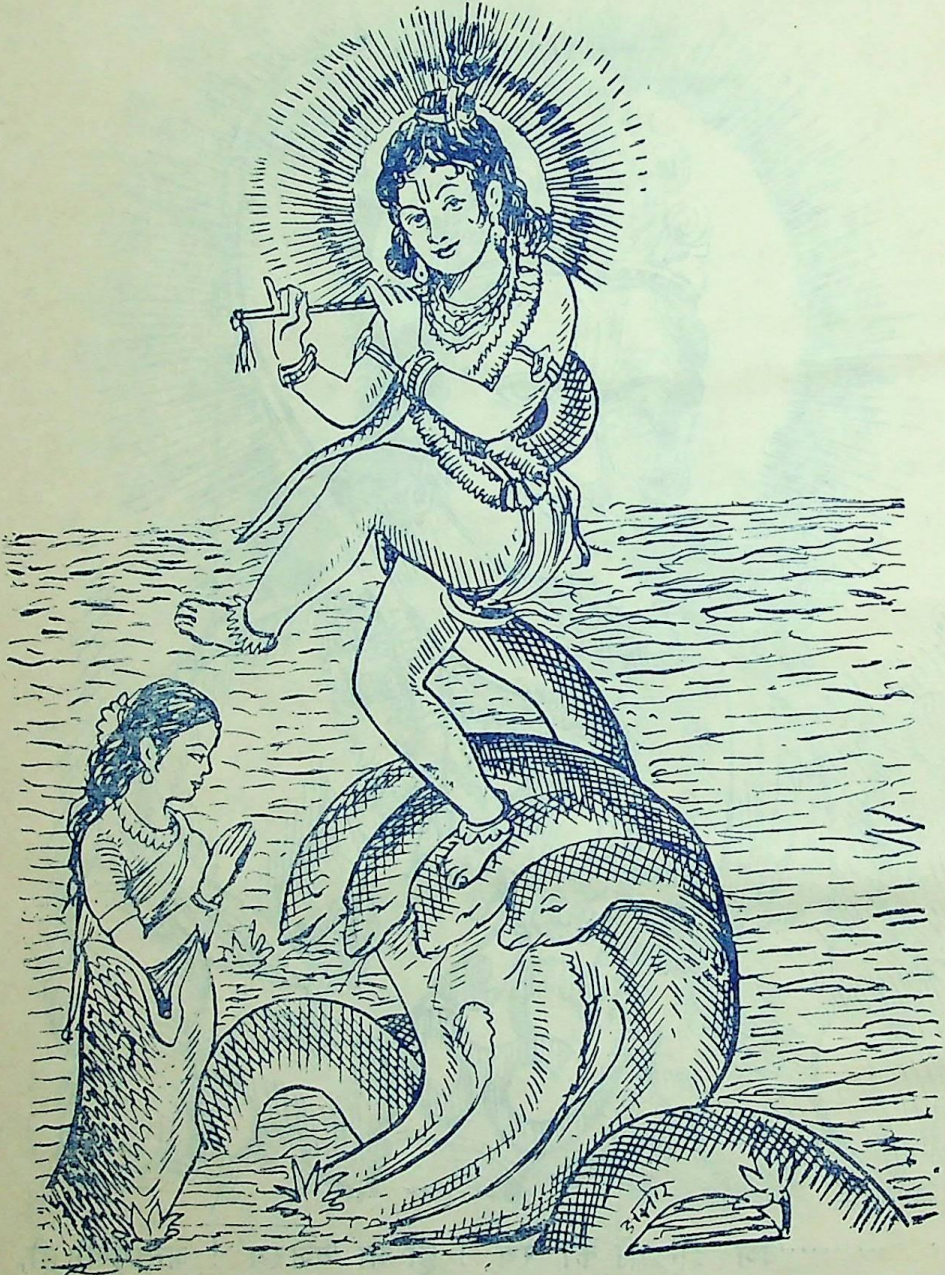
दस इन्द्रियों रूपी दस फन वाले कालिया नाग को 'नथ', रे सखा !
अन्तर्मुखी हो ! जा लिपट आतमा कृष्ण से ! फिर तू ही तो कन्हैया है……

.........फिसलते समय के साथ ये नेत्र नष्ट हो जावेंगे ! इनको भोगने वाले ! साथ समय के क्यों न तू तीसरा नेत्र खोलता चल ! यही तीसरा दिव्य चक्षु तुझे शंकर बना देगा.........

·········चिता जल उठी। शरीर भस्मी में बदल गया। भस्मी ने पानी का संग किया। नालियों का सड़ता पानी बन, डोलता फिरा, मानव शरीर !

जड़ों ने खींचा इस जल को। अन्तराल में वृक्ष, पौधों के; यज्ञ किये ॐ रूपी आत्माओं ने ! भस्मी बदल चली नाना-नाना पुष्पों, फलों— वनस्पतियों में !

भोजन स्वरूप ग्रहण किया दम्पत्ति ने वनस्पति को ! शरीर में यज्ञ किये आत्माओं ने। वनस्पति रक्त मांस के कणों में बदल चली। जुड़े जब बिन्दु गर्भ के क्षीरसागर में — भस्मी पुनः सुन्दर बालक बन बैठी !

शरीर — चिता — भस्मी — खाद — वनस्पति — पुनः बालक ! यही है कहानी आपकी ! सुना रहा हूँ आपको !

आइये चलें !
'सनातन दर्शन की पृष्ठभूमि'
में—
पहचाने स्वयं को ! ·········
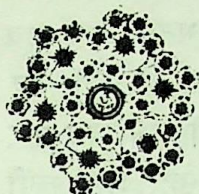
प्रथम अध्याय

यज्ञोपवीत

भक्तगण !

यज्ञोपवीत सनातन दर्शन का विशिष्ट अंग है। सनातन दर्शन जो विश्व के सम्पूर्ण दर्शन एवं नाना वेदों—ज्ञान, विज्ञान आदि का सृष्टा है पूर्ण रूप से समाया हुआ है; इन यज्ञोपवीत के तीन सूत्रों में। यज्ञोपवीत धारण कराने की परम्परा उतनी ही पुरानी है जितना कि सनातन दर्शन का भूतल पर देवलोक से पदार्पण। यज्ञोपवीत के बिना आप वेद के अधिकारी नहीं हो सकते हैं। यह क्यों है इतना महान ? क्यों इसको तीन यज्ञों का प्रतीक मानता हूं, और कौन हैं वे यज्ञ ? आज मैं इस प्राचीनतम रहस्य का अनावरण करूँगा जिससे आप इसके महत्व को जान सकें और इस पर गर्व कर सकें।

चलें युगों पूर्व अतीत के अन्तरालों को लाँघते हुए। गुरुकुल में आया है एक नन्हा सा बालक ज्ञान प्राप्ति हेतु। यहीं रहेगा और गुरुकुल में वेदों का ज्ञान अर्जन करते हुए गुरू की सेवा करेगा। अब शीघ्र लौटकर घर नहीं जावेगा। गुरू के मन में अन्तर्द्वन्द है। गुरू के मस्तिष्क में दो विपरीत भाव हैं। प्रथम तो यह कि यह बालक, जो ज्ञान लेने आया है, निश्चय ही उसे ज्ञान मिलना चाहिए, क्योंकि ज्ञान तो गंगा है। जिस प्रकार गंगा का जल न मिलने से मनुष्य तड़प-तड़प कर प्राण दे देता है, प्यासा मर जाता है, वही गति अज्ञानी की है। अरे ! अज्ञानी के जीवन और मृत्यु में अन्तर कहाँ है। वह तो जीवित भी मृतक तुल्य है। इसलिए इस अबोध बालक को निश्चय ही ज्ञान बोध हो, यह विद्वान बने !

पुनः विपरीत भाव प्रकट होता है गुरू के मस्तिष्क में। सोचते हैं अरे ! ज्ञान तो गंगा रूपी महानदी है। जिस प्रकार गंगा लहरों से अठखेलियाँ

करने वाला तैराक बीच धारा में डूब मरता है, उसी प्रकार ज्ञान रूपी गंगा की लहरों से खिलवाड़ करने वाला विद्वान बीच धारा में भटक कर डूब मरता है और नाना पाप योनियों को प्राप्त होता है। इतना ही नहीं, वह ज्ञानी होने के कारण समाज के एक विशाल अंग को भी प्रभावित कर भटका देता है। इस प्रकार समाज का एक विशाल जन-समूह, ज्ञान रूपी नदी में डूबकर नाना पाप योनियों में भटकने लगता है। अहो! इस सम्पूर्ण पाप का अधिकारी भी तो गुरू को बनना पड़ता है क्योंकि इस ज्ञान मार्ग का दर्शन तो उसी ने ही कराया। तो एक ओर ज्ञान हीन होना भी पाप हो सकता है, और दूसरी ओर ज्ञान देना भी पाप हो सकता है।

तब कैसे इस बालक को ज्ञान दूँ कि जितना भी उसे ज्ञान हो उतना ही उस मार्ग पर चलता रहे, उतना ही नम्र एवं अर्न्तमुखी हो, तपस्वी हो, और मोक्ष-मार्गी होकर लक्ष्य को प्राप्त हो? किस प्रकार उसे बचाया जावे कि ज्ञान का विस्तार उसे कुतर्की, दम्भी और मार्गहीन न बना सके और बीच ज्ञान-गंगा में भटक कर वह पापयोनियों में भटकता न फिरे।

इन्हीं विचारों से प्रेरित उस बालक को लेकर चिता के समीप गुरू जाते हैं, जिससे गुरू उस बालक को ज्ञान दें, सर्व प्रथम उस बालक का ही; अर्थात् वह बालक सर्वप्रथम ज्ञान के रूप में जाने कि वह स्वयं क्या था, क्या है, अब क्या बनना है उसको, तथा क्या-क्या बन सकता है वह।

गुरू उस चिता पर लेटे मृत शरीर को दिखाकर बालक को उपदेश करते हैं, "अरे बालक! देखो यह मृत शरीर जो चिता पर शान्त लेटा है, यह कभी नवयुवक था, उससे पूर्व तुम्हारी ही भाँति एक नन्हा बालक था, इसी प्रकार आया था गुरुकुल में ज्ञान लेने। अरे देखो! अपने ज्ञान को दर्प और भटकाव बना कर यह डूब गया है, और अब आतुर है नाना पाप योनियों में भटकने को। आज इसकी रावण गति है। आत्मा रूपी प्रभु राम आज नहीं हैं। हर लिया है इस अर्थी रूपी सीता को, दशानन रूपी दस इन्द्रियों के भटकाव ने। अग्नि प्रकट होगी और राख में परिवर्तित हो

जावेगा यह शरीर। डोलती और भटकती फिरेगी भस्मी, गली-गली, जंगल-जंगल, और सड़ता हुआ बदबूदार पानी बन जावेगी। तब एक-एक पेड़ में, पौधे में, वृक्ष में, प्रकट होगा आतमा रूपी हवन-कुण्ड राम ! जड़े खींच लेंगी उस सड़ते पानी को और वही पानी उस आतमारूपी कुण्ड में यज्ञ होकर पुनः सुन्दर वनस्पति में प्रकट होगा। इस प्रकार रावण गति से उद्धार होकर यह डोलती भस्मी पुनः राम की कृपा को प्राप्त होगी। वही वनस्पति ग्रहण करेंगे जब दम्पति तो गोभी, बैगन, आलू पुनः रक्त, मांस में बदल कर नन्हें बालक का स्वरूप धारण करेंगें, उस स्त्री के गर्भ रूपी क्षीरसागर में। राम कृपा से पुनः मनुष्य रूप धारण कर सकेगा यह, जो भटक कर राख में बदल जावेगा अब शीघ्र ही।

दो मार्ग दिखाए हैं रामायण में। एक मार्ग है दशरथ और दूसरा मार्ग है दशानन। 'रथ' ली हैं दसों इन्द्रियाँ जिसने, वह तो कहाया 'दश + रथ'=दशरथ, और आतमा राम को प्राप्त होकर मोक्ष का अधिकारी बना। यही मार्ग है तेरा। दूसरा मार्ग है दशानन। दस मुख बन बैठी हैं दसों इन्द्रियाँ जिसकी, उसे दशानन कहा है। दसों इन्द्रियों को दस मुख बनाने से वह व्यक्ति ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ज्ञानी भी महान है परन्तु वहिर्मुखी होने के कारण स्वयं से अनभिज्ञ होता हुआ चिता को प्राप्त होता है। इस प्रकार दो मार्ग हैं—प्रथम दशरथ से राम और मोक्ष; दूसरा दशानन से रावण और चिता, तदन्तर भस्मी, उपरान्त वनस्पति, पुनः पुनः जन्म एवं भटकाव नाना योनियों का।

जब यह बुद्धि अपनी लक्ष्मण रेखाओं (राम की मर्यादा का नाम ही लक्ष्मण रेखा है) को पार कर गई, दशरथ (दस इन्द्रियों को रथकर अन्त मुंखी होकर आत्मा से बुद्धि का योग करना) मार्ग से हटकर दशानन (दस इन्द्रियों को दस मुख बना कर वहिर्मुखी होना) मार्ग पर चलने लगी, तो दशानन हरण कर ले गया इसे अर्थी बनाकर चिता पर और भस्मी बनाकर बहा दिया इसे बन-बन भटकने को। तब प्रत्येक वनस्पति में प्रकट हुआ आतमा राम और डोलता फिरा बन-बन अपनी सीता को खोज-खोज कर पुनः लौटाने को; और परिवर्तित करने लगा उस आतमारूपी हवनकुण्ड

की अग्नि द्वारा वनस्पति के नाना रूपों में। यूँ अग्नि-परीक्षा द्वारा ही तो लौटी सीता।

प्रकृति और आत्मा के संघर्ष का नाम ही राम-रावण युद्ध है। क्योंकि सनातन का अर्थ है नित्य। नित्य तो आत्मा ही है, इसलिए आत्मा मात्र का धर्म ही सनातन धर्म है। सनातन की प्रत्येक पुस्तक आत्मा और प्रकृति के संघर्ष को ही नाना उपमाओं एवं माध्यमों के द्वारा प्रकट करती है। आत्मा (सनातन) प्राप्ति ही लक्ष्य है। जो पेड़ों में, नाना जीव धारियों में आत्मा रूपी हवनकुण्ड हैं, जो भस्मी को यज्ञ के द्वारा वनस्पति में तथा वनस्पति को रक्त, मांस और हड्डी में परिवर्तित कर रहे हैं उनके दर्शन का नाम ही सनातन दर्शन है। उनका धर्म ही सनातन धर्म है। चूँकि गोभी, बैगन, आलू, चहा, कबूतर, शेर आदि किसी सम्प्रदाय विशेष (हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख ईसाई आदि) से प्रेम अथवा लगाव नहीं रखते इसलिए सनातन को सम्प्रदाय कहना मूर्खता होगी।

जी हाँ! तो गुरू उसे समझाते हैं कि अरे बालक! इसे मैं तुझे भली प्रकार समझाना चाहूँगा जिससे तू इस व्यक्ति की भाँति भटके नहीं, वरन् आत्मा रूपी हवनकुण्ड में शरीर रूपी हवन-सामग्री को सम्पूर्ण यज्ञ करके तेज में परिवर्तित कर मोक्ष का अधिकारी बन सके। जब सम्पूर्ण शरीर तेज में योग एवं तप के द्वारा परिवर्तित हो जावेगा, तो बुद्धि और आत्मा का द्वैत सदा के लिए अद्वैत में परिवर्तित हो जावेगा। भस्मी शरीर बनेगा नहीं, तो पुनर्जन्म होगा किसका? यही है मोक्ष। अन्यथा रावण की गति है।

यह तीन सूत्रों का यज्ञोपवीत तीन यज्ञों का प्रतीक है कि, प्रथम तू किस प्रकार यज्ञ के द्वारा भस्मी से वनस्पति में आया; दूसरा, किस प्रकार तू वनस्पति से मनुष्य स्वरूप में यज्ञ के द्वारा लाया गया, और तीसरा सूत्र उस यज्ञ का प्रतीक है जिसके द्वारा तू बुद्धि पुजारी आत्मारूपी हवनकुण्ड में शरीर रूपी हवन-सामग्री को यज्ञ करके सम्पूर्ण को तेज में परिवर्तित करके मोक्ष का अधिकारी हो सके। तीसरा यज्ञ मात्र ही करना है तुझे। प्रथम दो यज्ञ तो स्वयं भगवान् यज्ञेश्वर, आत्मा, राम, ॐ कृष्ण, कहा जिसको, तेरे लिए करते हैं। वही तुझ भटके हुए और सड़ते हुए रावण

गति प्राप्त स्वरूप को पुनः वनस्पति में और वनस्पति को रक्त-मांस-हड्डी और बालक रूप में लाते हैं।

श्रीमद्‌भगवत्‌गीता अन्तर्द्वन्द की पुस्तक है। गीता में आत्मा ही कृष्ण है, इस शरीर रूपी रथ का सारथी है। बुद्धि, जो दसों इन्द्रियों के अर्जन से अर्जित है, अर्जुन कहा है उसको। इन्द्रियों ने ही मिलकर स्वरूप दिया है, इसलिए इन्द्र का बेटा कहलाया। अर्थात् इस बुद्धि के पास जो भी ज्ञान है वह सम्पूर्ण इसी जन्म का, जो कुछ देखा, सुना, अनुभव किया आदि ही तो है। पिछले जन्म जन्मान्तरोंका ज्ञान तो सारथी, कृष्ण; आत्मा के पास ही है। इस प्रकार एक युद्ध की सत्य घटना को पृष्ठभूमि में रखकर समझाया है एक अन्तर्द्वन्द, बुद्धि का आत्मा से, कृष्ण-अर्जुन-संवाद, मैं का मैं से, मैं के लिए, मैं तक।

मायाओं का महासमर ही महाभारत है। माया ही जीव की मृत्यु का कारण है। बुद्धि अर्जुन महारथी है। यज्ञोपवीत ही धनुष है उसका इसीलिए यह सदा धनुषाकार पहनाता हूँ। शरीर रथ है, आत्मा सारथी है। बुद्धि अर्जुन को यज्ञोपवीत रूपी गाण्डीव पर त्याग के पैने बाणों द्वारा सम्पूर्ण मायाओं को काटते हुए अन्तर्मुखी होकर सम्पूर्ण को तेज में परिवर्तित करना है। उसको अन्तर्मुखी होने में, तीसरा यज्ञ करने में, बाधक हैं सम्पूर्ण मायाएँ नाना ग्रहों (planets) की माया (gravity), माता-पिता के स्नेह, मोह, ममता आदि मायाएँ, पत्नी की, सन्तान की नाना मायाएँ, मकान, दुकान आदि की मायाएँ। इस प्रकार की नाना मायाओं के भ्रम में फँस कर यह बुद्धि अर्जुन भटक जाता है और मायाओं के माया युद्ध से मोहित होकर युद्ध की सुधि ही नहीं रहती इसको।

माया कहा उसको, जो दो अस्तित्वों के मध्य गुरूत्वाकर्षक आकर्षण उत्पन्न हो जाने से बुद्धि को बहिर्मुखी करके, आत्म-मार्ग के विपरीत करके, भटका दें और बीच मायाओं के महासमर में खड़ा सेनानी युद्ध को भूल कर गाण्डीव से अनभिज्ञ होकर नाना लिप्साओं में फँसा सुन्दरियों, अट्टालिकाओं के स्वप्न देखने लगे। दशरथ बने नहीं, और बन बैठे दशानन रावण;

स्वयं अपनी ही आत्मा, राम का द्रोही, मायाओं से मोहित और मायाओं के कारण ही नष्ट होने वाला, एक ऐसा योद्धा जो अपने ही सारथी, आत्मा, कृष्ण का द्रोही बन बैठा है। मायाओं का भार घटा कर क्षीरसागर (space) की सृष्टि करके यज्ञकर्ता बनने के विपरीत मायाओं से लिप्त हो रहा है, उसका प्रभाव बढ़ा रहा है जिससे इस शरीर रूपी रथ का विघटन अधिक तीव्र होता जा रहा है। राम-रावण युद्ध अब शरीर के भीतर ही होने लगा है। बुद्धि दशानन बन बैठा है, आत्मा, राम, से ही युद्ध करने लगा है, शत्रु मायाओं का मित्र बन कर। कहा है :—

Where is gravity, there is decay. Where there is decay, there is death. No gravity, no decay; no decay, no death, State—immortal.

अरे बालक, इस माया रहस्य को जान ! प्रत्येक लिप्सा, जो मुझे आत्मा, सारथी, के विपरीत ले जाती है, दशरथ से दशानन बना देती है, अन्तर्मुखी मार्ग से विपरीत वहिर्मुखी बना देती है, मेरी शत्रु है, योग और तप की बाधा है, मोक्ष मार्ग का अवरोध है, और बीच ज्ञान गंगा में भटका कर चिता पर चन्द मुट्ठी राख में परिवर्तित करके नाना पाप योनियों में भटका देती है। हा ! ज्ञान लुट जाता है, सम्पूर्ण भौतिक उपलब्धियाँ छिन जाती हैं, और भटकता फिरता हूँ मैं। पुनः राम कृपा से, सारथी कृष्ण के दयार्द्र होने से, मुझे बालक स्वरूप प्राप्त होता है और पुनः सब कुछ खोकर नए सिरे से ज्ञान प्राप्त करने मुझे गुरुकुल आना पड़ता है। इस आत्म-द्रोही, मोक्ष-द्रोही मायाओं को पहचान और यज्ञोपवीत रूपी गाण्डीव पर त्याग के पैने वाणों द्वारा नष्ट कर दे इनके सम्पूर्ण प्रभाव को तब मिलन हो तेरा उस आत्मा रूपी "कृष्णाः", (हवनकुण्ड) से और यज्ञ के रहस्य को, स्वयं के करोड़ों जन्मों के ज्ञान को, जानकर तथा 'परब्रह्म' के ज्ञान को जानकर ब्रह्म का ज्ञाता होकर, द्वैत को सदा के लिए अद्वैत में परिवर्तित करके तू स्वयं सृष्टा बने। परम + आत्मा = परमात्मा, परम् + ईश्वर = परमेश्वर, बने मुक्त हो जावे सदा-सदा के लिए इस जन्म-मृत्यु के चक्कर से। लुट न सके जब ज्ञान तेरा, भटक न सके तू जब, मायाओं द्वारा छला न जा

सके अरे ! तभी तो तू ज्ञानी है। स्थूल इन्द्रियों से अर्जित ज्ञान को ज्ञान कहा किसने ? जो संदेह से परे है, ऐसा ज्ञान तो मात्र आत्म-मार्ग से ही ग्रहण होता है। स्थूल इन्द्रियों से अर्जित ज्ञान तो तुझे किसी भी क्षण दशानन बना सकता है, नाना भ्रान्तियों और लिप्साओं में बहका कर चिता पर सब कुछ छीन कर तुझे पापमार्ग पर नर्क भोगने भेज सकता है, सो सावधान ! मोह, ममता, स्नेह, भी माया का स्वरूप ही है। इसे आगे चल-कर बताऊँगा तुझे ! पहले तू यज्ञोपवीत के तीन सूत्रों के रहस्य को जान !

प्रथम सूत्र है प्रथम यज्ञ सनातन का। जैसा कि गीता में कहा कि मैं ही यज्ञ के द्वारा संपूर्ण वनस्पति की सृष्टि करता हूँ। किस प्रकार यह शरीर पुनः वनस्पति बनता है, उसका ज्ञान तुझे प्रथम सूत्र से देता हूँ।

देखो बालक ! चिता जल रही है। शरीर यज्ञ होने लगा है। कपाल-क्रिया द्वारा महारथी भी स्वतंत्र कर दिया गया है। अब इस रथ पर न तो सारथी कृष्ण है, और न महारथी अर्जुन ही। आत्माकुण्ड में यज्ञ न कर सका बुद्धि पुजारी इस शरीर रूपी सामग्री को, तो फल मिले कहाँ से ? जो एक यज्ञ तो कर न सका, यज्ञ के रहस्य जान न सका, उसे मोक्ष (सृष्टा-पद) का अधिकारी कहा किसने ?

जल रही है चिता धू-धू कर, शरीर बदल रहा है भस्मी में, धुएँ में। धुएँ को पी जावेगी वनस्पति और इस प्रकार वह पुनर्जन्म को प्राप्त होगा। भस्मी जो शरीर था उसका, डोलता फिरेगा, भटकता फिरेगा, पानी का संग करके खाद बनेगा—देखो ऐसा हा पानी इन दस पौधों के पास से गुजर रहा है। आम की जड़ों ने खींचा, आत्माओं ने यज्ञ किया, नालियों का सड़ता पानी मीठे आम में बदलने लगा, बगल में नींबू के पौधे ने उसी पानी को पीकर खट्टा नीबू बना दिया, कड़वी मिर्च, काला बैगन, सफेद गोभी, सुन्दर गुलाब का फूल, नाना स्वरूपों में परिवर्तित होने लगा है जो कभी शरीर था किसी का। तब वह आत्मारूपी हवनकुण्ड क्या है ? कैसा स्वरूप है उसका ? सो जानो ! उस आत्मा रूपी हवनकुण्ड, सारथी कृष्ण, मर्यादा पुरुषोत्तम राम, ॐ का स्वरूप दिखाता हूँ तुझे !

ॐ

↓

अ	+	उ	+	म
अस्तित्व	+	उत्पत्ति	+	मृत्यु, मृत्युंजय
तत्व	+	सृजन	+	विसर्जन
धारक	+	सृजक	+	संहारक
ब्रह्मा	+	विष्णु	+	महेश
जी (G)	+	ओ (O)	+	डी (D)
जनरेटर	+	आपरेटर	+	डिस्ट्रायर
(Generator)	+	(Operator)	+	(Destroyer)

गाड (*GOD*)

↓

अल्लाह

↓

अलिफ	+	लाम	+	हे
धारक	+	सृजक	+	संहारक

↓

अल्लाह

इस प्रकार सृष्टि के आदि काल में तीन महादेव कहाए, महाविष्णु, महाब्रह्मा और महाशिव । ब्रह्मा ने उन विन्दुओं की सृष्टि की जिनसे निर्मित सम्पूर्ण चराचर है। परन्तु ब्रह्मा ने तो ब्रह्म विन्दु ही बनाए । आश्चर्य तो उन महाविष्णु, सृजक, का है जो एक ही प्रकार के विन्दुओं को सृजन के द्वारा नाना-नाना रूप दे देते हैं। वही भस्मी चिता की, वही नाना वनस्पति एवं वही नाना जीवधारियों के नाना अंगों का स्वरूप धारण कर लेती है जब क्षीरसागर((Space) मायामुक्त क्षेत्र) में पेड़ के, भस्मी यज्ञ के द्वारा वनस्पति में; एवं क्षीर सागर में शरीर के पुनर्यज्ञ के द्वारा वही वनस्पति रक्त, मांस एवं हड्डी में, परिवर्तित होकर बालक का रूप बन जाती है, नाना अंगों की सृष्टि करने लगती है। महाशिव उन खिलौनों का

संहार कर उन्हे पुनः सूक्ष्म ब्रह्म विन्दुओं में बदलने लगे जिससे विष्णु शक्ति उनका पुनः सृजन कर सके। इस प्रकार धारक, सृजक, संहारक क्रियाओं के द्वारा निरंतर उत्पत्ति, विसर्जन के खेल आरम्भ हुए। जुड़े जब विन्दु क्षीरसागर (Space) में, तो नन्हीं गोलियों में बदलने लगे, उस क्षीरसागर में, माया मुक्त क्षेत्र में। यही गोलियाँ जुड़-जुड़ कर उल्काओं का स्वरूप धारण करने लगीं, इसी प्रक्रिया से ग्रहों, नक्षत्रों, सितारों में बदलने लगीं। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार विन्दु (Atom) से वृक्ष एवं विन्दु से बालक की सृष्टि क्षीरसागर में सृजन यज्ञ के द्वारा होती है। उसी प्रकार से क्षीर-सागर में विन्दु (atom) से ग्रह (planet) की सृष्टि भी यज्ञ के द्वारा सृजन से होती है। जिस प्रकार मायाओं का प्रभाव बढ़ने से जीवधारी मृत्यु को प्राप्त होकर विसर्जित होते हैं उसी प्रकार ग्रह भी माया का सम्पूर्ण प्रभाव होने से महा प्रलय (total decay due to total gravity) को प्राप्त होकर पुनः विन्दु-विन्दु (atoms) में परिवर्तित हो जाते हैं, जिसे मैं बाद में तुझे सविस्तार बताऊँगा।

इस प्रकार महाविष्णु क्षीरसागर (space) के अधिपति कहाये क्योंकि सृजन क्रिया (integration of atoms) माया (gravity) में संभव नहीं है। यदि ऐसा होता तो आधुनिक वैज्ञानिक भस्मी से मनुष्य और मिट्टी से सोना, हीरा बना लेता, परन्तु माया में विसर्जन (decay) ही हो सकता है इसलिए प्रलयंकर (cosmic lord) महाशिव माया क्षेत्र के देवता कहाये, पृथ्वी का आधिपत्य उन्हें प्राप्त हुआ। हिमालय उनका सिंहासन बना। सृजन और संहार तो उन्हीं विन्दुओं (atoms) का ही करना है। इससे महाब्रह्मा सर्वत्र अधिकारी होने से प्रजापति कहाये और सर्वत्र उन्हें स्थान मिला। इन तीनों महादेवों की शक्तियां भी नाम-गुण के अनुरूप कहाईं। महाब्रह्मा से ब्रह्म, महाविष्णु से विष्णु शक्ति, और महाशिव से शिव शक्तियां प्रकट हुई और अ, उ, म् जुड़ने लगे और ॐ रूपी आत्माओं को सृजक, संहारक, धारक, क्रियाएँ नाना सृष्टियों को स्वरूप देने लगीं। इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रहों, वनस्पतियों आदि का सृष्टि चक्र आरम्भ हो गया। यही आत्मा ही जब परमपद को प्राप्त होगी तो परम + आत्मा =

परमात्मा हो जावेगा तू ! यही है लक्ष्य तीसरे यज्ञ का। यही दर्शन ईस्वी पूर्व पाश्चात्य विद्वानों का भी था। "god" ही "God" में परिवर्तित होता है। अर्थात् जब गॉड का जी (g) छोटा था तो गॉड देवी देवता अर्थात् आत्माओं का प्रतीक माना गया परन्तु गॉड की 'जी' जब बड़ी (capital) 'G' में बदली तो गॉड, परमात्मा बन गया। अक्षर वही है, ढंग लिखने का वही है पर अन्तर विन्दु और सम्पूर्ण ब्रह्मांड का है केवल छोटी और बड़ी 'जी' से। यही दर्शन मुहम्मद पूर्व अल्लाह (अलिफ + लाम + हे) का भी था। विशेष बात यह है कि सबने तीन ही अक्षर इस्तेमाल किए और यही कहा है कि "वह" एक है ! इसे पूर्ण विस्तार से आगे बताएँगे।

इस प्रकार जब जड़ों ने खींचा उस भटकते हुए पानी को तो सर्वप्रथम आत्मारूपी हवनकुण्ड ने उसे ब्रह्म स्वरूप होकर स्वीकार किया। उपरान्त उस कुण्ड ने रूद्र रूप धारण करके सम्पूर्ण पदार्थ को तेज विन्दुओं (atoms) में परिवर्तित कर दिया रूद्र शक्ति (cosmic force) के द्वारा। क्षीरसागर (space) था; माया (gravity) नहीं थी, तो सूक्ष्म तेज ब्रह्म (nude atoms) कुपित (radio active) नहीं हुए। तब उस आत्मा रूपी हवनकुण्ड ने विष्णु स्वरूप होकर सृजन किया तो नालियों का सड़ता हुआ पानी उस पेड़ की आवश्यकता के अनुरूप पत्तियों, टहनियों और नाना फलों फूलों में परिवर्तित होने लगा। यही है गीता का प्रथम यज्ञ किया आत्मा अनादि यज्ञेश्वर महाप्रभु कृष्ण ने ! यही है प्रथम सूत्र तेरे यज्ञोपवीत का रे बालक ! यूँ आया तू भस्मी से वनस्पति में, यज्ञ के द्वारा ! पहचान उस महाप्रभु सारथी कृष्ण को जो इन नाना वृक्ष रूपी रथों में प्रकट होकर सारथी बने हैं तेरे लिए कि लौट सके तू ! इस आत्मा सारथी को देख ! प्रत्येक वृक्ष, प्रत्येक पौधा मंदिर है तेरे कृष्ण का; राम का; यज्ञेश्वर भगवान ॐ का ! इन सब में स्तुति कर उसकी ! अरे प्रणाम कर उसे ! नतमस्तक हो !!

रथ कहा है उसको जिसको कोई सारथी चलाता हो। पेड़ के चलाने वाली आत्मा सारथी है उस रथ का। इसी प्रकार यह शरीर भी एक रथ

है जिसे आत्मा कृष्ण चलाते हैं। प्रत्येक यन्त्र, जो सारथी द्वारा गतिमान है, रथ है। शरीर और वृक्ष, पौधे, पशु, पक्षी सब यन्त्र मात्र हैं जिन्हें आत्मा सारथी चलाते हैं और यज्ञ के द्वारा नित्य वनस्पति आदि की सृष्टि करते हैं। शरीर रूपी यंत्र का सारथी बुद्धि को नहीं कहकर आत्मा को ही क्यों कहा ? इसलिए कि बुद्धि भोजन को रक्त, मांस में बदलना जानता नहीं; दिल की धड़कनों का संतुलन रखना इसके लिए संभव नहीं है, सारथी आत्मा के बिना क्षीरसागर बनाए रखना इसके लिए संभव नहीं है और सारथी के हटते ही यह रथ चलता नहीं है। इसलिए सारथी आत्मा ही है जो इसे भस्मी से मनुष्यरूप, यज्ञों के द्वारा प्रदान करता है — बुद्धि कर सकता नहीं है !

इस प्रकार सारथियों ने यज्ञों के द्वारा मायाओं को निरस्त्र करके भस्मी को वनस्पति के नाना रूप दिए। सुन्दर फल लहलहाने लगे; रंग बिरंगे मोहक पुष्पों से वातावरण झिलमिलाने लगा। हरित दूर्वाओं से रास लीला की मेरे कृष्ण, आत्मा ने ! एक-एक पेड़ के अन्तर में प्रकट होकर रास-लीला की सारथी ने, तो डोलते-भटकते सड़ते शरीर का पुनर्जन्म होने लगा सुन्दर वनस्पति में। लौट चला तू पुनः ! यज्ञेश्वर, सहस्त्रों सूर्यों को तेज देने वाले; नदियों में महान गंगा जैसे, पर्वतों में महान हिमालय जैसे ब्रह्मों में परमब्रह्म, रूद्रों में शंकर, वैष्णवों में महाविष्णु, आत्मा रूपी हवनकुण्ड राम हैं जो, कृष्ण है जो सारथी हैं नाना रथों का, उसने नाना वृक्षों, पौधों और प्रत्येक रथ में रास-लीला की, मुस्कराए तो मुस्कराने लगी वनस्पति ! उसकी मोहक मुस्कान से डोलते-भटकते शरीर भी सुन्दर पुष्पों में पुनर्जन्म को प्राप्त कर मुस्करा उठे ! क्या देखा तूने मोहक मुस्कान मेरे कन्हैया की !

यज्ञों के द्वारा सारथियों के, लहलहा उठी वनस्पति जब; एक दम्पति आए वहाँ पर और बोले उन सारथियों से :—"हे सारथियों, तुमने जो यज्ञ किए हैं ! भस्मी को पुनः वनस्पति का स्वरूप दिया है इन मायाओं के महा-समर में, महाभारत में, परन्तु तुम्हें वरदान तो नहीं मिलेगा ?"

"क्यों ? ऐसा क्यों कहते हो आत्मन् !" पूछा सारथियों ने वृक्षों के।

"जब तक यह सामग्री यज्ञ की, जो वनस्पति स्वरूप है, तेज में परिवर्तित नहीं होगी, पृथ्वी की माया से मुक्त न हो सकेगी। यदि पृथ्वी की माया (gravity) से मुक्त न हो सकी तो क्षीरसागर (space) पहुँचेगी कैसे ? यदि क्षीरसागर न पहुँच सकी तो क्षीरसागर में शेषनाग पर शयन करते सृजक, महाविष्णु, को प्राप्त होगी कैसे ? अहो ! जब यज्ञ का भाग मिला ही नहीं क्षीरसागर में महाविष्णु को, तो तुम्हारा यज्ञ पूर्ण होगा कैसे ? तुम्हें वरद करेगा कौन ?"

"तब क्या हो ?" पूछा सारथियों ने।

"हे महान आत्माओं ! तुम अपने यज्ञ का फल कृपापूर्वक हमें प्रदान करो। हम इसे सामग्री रूप स्वीकार करके इसे अर्पित करेंगे सारथी कृष्ण, आत्मा को जो यज्ञेश्वर है हमारा ! दूसरे यज्ञ के द्वारा हम इसे बलिष्ठ शरीर में परिवर्तित करेंगे। तीसरे यज्ञ के द्वारा मैं बुद्धि पुजारी आत्मारूपी हवनकुण्ड में शरीर रूपी हवन सामग्री को यज्ञ करके सम्पूर्ण को तेज में परिवर्तित कर दूँगा तो सम्पूर्ण, क्षीरसागर में महाविष्णु को प्राप्त होगा और मुझे यज्ञ का एवं परम् ब्रह्म का ज्ञान होने से ब्रह्म ज्ञानी, ब्रह्मर्षि का महान पद प्राप्त होगा, पुनर्जन्म न होकर मोक्ष पद प्राप्त होगा। यह सम्पूर्ण शरीर आत्मारूपी हवनकुण्ड में योग (बुद्धि का आत्मा से संयोग) एवं तप से तेज में परिवर्तित होकर पृथ्वी की माया (gravity) से मुक्त होगा और क्षीरसागर जावेगा तो यह शरीर तुम्हारी ही अर्जित सामग्री है न ! तुम भी वरद होगे, मुझे मोक्ष मिलेगा ! बोलो ! क्या मुझे आज्ञा देते हो कि इस सामग्री को यज्ञ के हेतु तोड़ लूँ ?"

"संकल्प लो !"

"मैं संकल्प एवं प्रतिज्ञा पूर्वक बचन देता हूँ कि इस सामग्री को दूसरे यज्ञ के द्वारा बलिष्ठ शरीर में तथा तीसरे यज्ञ के द्वारा इस शरीर को योग एवं तप से तेज में परिवर्तित कर 'अहं ब्रह्मास्मि पद' को प्राप्त होकर

क्षीरसागर में महाविष्णु को यज्ञ का फल अर्पित करूँगा । साक्षी हों इसके मेरे यज्ञोपवीत के दूसरे एवं तीसरे सूत्र ।''

''दिया ।'' कहा सारथियों ने ।

प्रसन्न हो उस दम्पति ने फलों को तोड़ा और लाकर पकाया एवं भोजन के रूप में स्वीकार किया तो उनके सारथी कृष्ण आतमा ने ब्रह्मस्वरूप हो स्वीकार किया उस सामग्री (भोजन) को । उपरान्त रुद्ररूप हो सम्पूर्ण को तेज में परिवर्तित कर दिया । पुनः विष्णुस्वरूप हो उस सारथी ने उन तेज विन्दुओं को पुनःसृजन के द्वारा रक्त, मांस व हड्डी आदि में बदल दिया । यही था दूसरा यज्ञ सनातन आतमा का, जो दूसरा सूत्र है तेरे यज्ञोपवीत का ।

गोभी, बैंगन, आलू खाने से अरे बालक ! तू गोभी का तो बनता नहीं है वरन् रोटी, सब्जी सब कुछ रक्त, मांस आदि में परिवर्तित कर देता है जो; इस शरीर को माया के प्रभाव (decay) से बचाता है जो; हृदय को गतिमान करता है जो; क्षीरसागर (gravity free) बनाता है जो, यज्ञ के लिए तेरे शरीर में; जिससे वनस्पति, रक्त, मांस व हड्डी में परिवर्तित हो उके, उस सारथी कृष्ण को अन्तर में देख ! अरे वही है तेरा माता, पिता, स्वामी, सखा, सहायक ! वही तो तुझे भस्मी से वनस्पति में तथा वनस्पति से इस रूप में लाया है । दशरथ बनकर प्राप्त हो उसे । दशानन बनकर स्वयं अपनी आतमा का द्रोही मत बन । आतमद्रोही का शरीर ही राम-रावण युद्ध का स्थल है और युद्ध का अन्त चन्द मुट्ठी राख और योनियों का भटकाव होता है ।

इसप्र कार उस दम्पति ने सामग्री अर्पित की सारथी आतमाओं को और यज्ञ के द्वारा रक्त मांस आदि में भोजन परिवर्तित होने लगा । ऐसे ही विन्दु जब जुड़ने लगे गर्भ के क्षीरसागर में तो रथ में एक नन्हा सा रथ बनने लगा । भस्मी पुनः गर्भ में बालक का रूप धारण करने लगी यज्ञेश्वर कृष्ण की अनुकम्पा से ।

आतमा, माता के गर्भ के क्षीरसागर में परिक्रमा कराती है उस नन्हें रथ को और देवताओं से प्रार्थना करती है कि हे महाप्रभुओं ! दया

करो ! जब इस रथ का नाता टूटे, इस रथ से और मायाओं में प्रकट हो यह रथ, गर्भ के क्षीरसागर को त्याग कर, इसे सारथी देना। अन्यथा यह रथ चल सकेगा नहीं; सांस चलेगी नहीं; दिल धड़केगा नहीं; मायाओं के पैने बाणों से खंडित होने लगेगा। मां का दूध यज्ञ के द्वारा रक्त-मांस-हड्डी बन न सकेगा। इसलिए इस रथ को मायाओं में आते ही सारथी देना जो क्षीर-सागर बना सके तो यज्ञ हो; सांस चले; दिल धड़के; माता का दूध रक्त-मांस-हड्डी बन सके और माया के कारण विघटन (decay due to gravity) न हो सके इसका। जब तक यह नन्हा रथ क्षीरसागर में है गर्भ के, इसे सारथी की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह यंत्र तो आश्रित है उस माता यंत्र का और उसी के सारथी आत्मा रूपी तेज चक्र के द्वारा रक्षित है एवं पोषित है।

शुभ मुहुर्त में नन्हा रथ क्षीरसागर गर्भ का त्याग कर प्रविष्ट हुआ मायाओं के महासमर (war of gravities) में तो 'मैंने' (आत्मा, सारथी, कृष्ण) इस रथ का नियंत्रण लिया और करोड़ों ग्रहों के साथ मेरा माया युद्ध आरम्भ हो गया। मायाओं का प्रथम समर ब्यूह जन्म-पत्र कहाया। तीस अंश (डिग्री) की एक राशि और बारह राशियों (तीस गुणा बारह= ३६० अंश) का एक चक्र बनाता हूँ। जन्म समय के गोचर के ग्रहों को उन्हीं कोणों पर रख कर देखता हूं कि जब यह रथ क्षीरसागर से माया में प्रविष्ट हुआ तो किस-किस ग्रह ने किस प्रकार अपनी-अपनी माया (gravity) प्रविष्ट (penetrate) करनी चाही जिसे सारथी ने निरस्त किया तभी तो सांस चल सकी, यज्ञ हो सका और यह रथ सड़ा नहीं।

क्योंकि मैं आत्मा गर्भ में प्रविष्ट नहीं होता हूँ, इसलिए अजन्मा हूँ। सदा इस रथ में अवतरित होता हूँ इसलिए अवतार हूँ; मेरा जन्म एवं मृत्यु न होने से नित्य हूँ, सनातन हूँ ! ब्रह्मा, विष्णु, महेश का प्रतीक हूँ, परमात्मा का सूक्ष्म होकर आत्मा हूँ और मैं ही विस्तार को प्राप्त होकर (परम + आत्मा=परमात्मा)परमात्मा हूँ, परमेश्वर (परम + ईश्वर) हूँ ! स्रष्टा हूँ ! सनातन हूँ !

क्योंकि मैं (आत्मा, कृष्ण) गर्भ में प्रविष्ट नहीं होता हूँ तो मेरा ज्ञान नष्ट नहीं होता है, मुझे प्रत्येक युग का ज्ञान है, मैं अमर हूँ क्योंकि मायामुक्त (no gravity, no decay; state immortal) हूँ। जबकि अर्जुन (बुद्धि) को शरीर ही की भाँति पुनःसृजन (जन्म) को प्राप्त होना पड़ता है इसलिए उसे केवल स्थूल इन्द्रियों के ज्ञान के अर्जन के द्वारा एक जन्म का अधकचरा ज्ञान ही प्राप्त होता है। इसलिए हे बालक ! सम्पूर्ण वेदों का ज्ञान भी उन छोटे जलाशयों के समान व्यर्थ है जिसने आत्मा कृष्ण के, ब्रह्म के, ज्ञान रूपी महासागर को प्राप्त कर लिया है। इसलिए सम्पूर्ण वेदों का ज्ञान तुझे अन्तर्मुखी करें और तू उस सारथी, आत्मा, कृष्ण से ब्रह्म का ज्ञान लेकर मोक्ष को प्राप्त हो, अन्यथा सम्पूर्ण वेदों का ज्ञान भी व्यर्थ होगा। यदि तू ज्ञान प्राप्त कर दशानन बन बैठा और कोरा तर्कवादी होकर नाना पाप योनियों को प्राप्त हो गया, तो वेद का ज्ञान ही पाप का कारण बन बैठा और मैं भी पापी हो गया क्योंकि यह ज्ञान दिया मैंने तुझको। एक जन्म का स्थूल इन्द्रियों का अधकचरा ज्ञान तेरे दम्भ का कारण न हो वरन् इस ज्ञान के द्वारा तू अन्तर्मुखी होकर, बुद्धि और आत्मा के द्वैत को योग मार्ग से अद्वैत कर दे और तप से सम्पूर्ण को यज्ञ करके ब्रह्मर्षि के महान पद को प्राप्त हो तो अर्जुन–अर्जुन न रहे कृष्ण–कृष्ण न रहे। कृष्ण ही अर्जुन हो; अर्जुन ही कृष्ण हों ! लौटे तेरा करोड़ों जन्मों का ज्ञान तुझे और स्रष्टा की सारी शक्तियाँ मिलें तुझको जो तेरी हैं। फिर तेरी मुस्कराहट से संपूर्ण ब्रह्माण्ड हर्षित हो उठें ! तेरी इच्छा मात्र से नूतन चराचर की सृष्टि हो ! वह मार्ग है तेरा बालक ! चिता रावण गति है, भटकाव है, सो जान ! तेजस्वी हो ! ब्रह्मर्षि हो !!

अहो ! इस प्रकार भस्मी से वनस्पति एवं वनस्पति से रक्त-मांस-हड्डी में परिवर्तित होकर जब बालक रूप हो यह शरीर क्षीरसागर को त्याग कर माया में आया तो आत्मा सारथी ने इसका नियंत्रण लिया और करोड़ों ग्रहों से माया-युद्ध (war of gravity) आरम्भ हो गया। प्रत्येक ग्रह अस्थिर है, परिक्रमाओं को प्राप्त है। इससे माया के प्रभाव भी निरन्तर बदलते रहते हैं। प्रत्येक ग्रह इस शरीर रूपी रथ में आत्मा सारथी द्वारा सृजित माया

रहित क्षेत्र को नष्ट करना चाहता है। यदि क्षीरसागर मायाओं द्वारा नष्ट हो गया तो रथ चलेगा नहीं। माँ का दूध रक्त-मांस-हड्डी में परिवर्तित हो न सकेगा, तो बालक पनप न सकेगा तथा यह शरीर विघटित (decay due to gravity) होने लगेगा। सड़ने लगेगा। इसलिए सारथी अकेला इस रथ पर नाना ग्रहों की नाना मायाओं को निरस्त्र करते हुए इस रथ की रक्षा करने लगा। माँ के दूध को रक्त-मांस में बदलने लगा। अभी बालक की आँख खुली नहीं है। क्योंकि अभी अकेला सारथी है रथ पर, इसलिए अद्वैत है, अर्थात् एक है, दो नहीं !

आत्मा सारथी ने चाहा कि क्यों न इस रथ पर एक महारथी को ले आऊँ जो सम्पूर्ण रथ को योग एवं तप के द्वारा मेरे (आत्मा) में यज्ञ कर दे तो संपूर्ण मुझ जैसा हो जावे, अर्थात् कृष्णवत् हो और कृष्ण (आत्मा) ही की तरह अमर हो जावे तो मुझे पुनः पुनः नया रथ न ढूँढ़ना पड़े, इस माया महासमर में।

क्यों न इस शरीर पर, जो कि मंदिर है मुझ आत्मा का, एक पुजारी ले आऊं जो इस शरीर रूपी सामग्री को मुझ आत्मारूपी हवनकुण्ड में यज्ञ कर दे तो सम्पूर्ण मुझ अमर आत्मावत् हो, अमर हो और मैं यज्ञ के परम को प्राप्त होने से परम + आत्मा = परमात्मा हो जाऊं !

बालक ! यह शरीर एक मन्दिर है जिसमें मैं (आत्मा) भगवान हूँ तथा मैं (बुद्धि) ही पुजारी हूँ ! पुजारी को भगवान में लय होकर द्वैत को अद्वैत में परिवर्तित करना है। यही है लक्ष्य ! यही है पूजा ! ! अरे! मंदिर क्या है सो सुन !

शरीर के जैसा एक कमरा बनाता हूँ। सिर के जैसा गुम्बद लगा कर जटा जैसी शिखा स्थापित कर देता हूँ। आत्मा जैसी मूर्ति बिठाकर उस मन्दिर में तुमसे कहता हूँ भजो ! तुम आँख बंद कर भजने लगे तो भजा किसे बन्द आँखों में ? स्वयं को ही न ! यही हैं मैं की पूजा; मैं के द्वारा; मैं के लिये ! मूर्ति वह महान पवित्र माध्यम है जिससे ज़ब मेरे

ध्यान रूपी गेन्द टकराती है तो पलटती है और पलट कर अन्तर में वहीं स्थापित हो जाती है जहाँ होना चाहिये, मुझ बुद्धि पुजारी को, इस शरीर मन्दिर में, आत्मा भगवान के सामने !

अरे ! यह मूर्ति तो मेरी आत्मा का मूर्त रूप है ! छवि है !! पवित्र आत्मा जैसी ही पवित्र है ! अमर है !! सृष्टा है !! ईश्वर है !!! किसने कहा मूर्तिपूजा ढोंग है ? पूछो उन मूर्ति–पूजा–विरोधी विद्वानों से कि क्या पिता का चित्र पिता की भांति ही आदरणीय नहीं है ? क्या पिता-भक्त पिता के चित्र को फाड़कर फेंक देगा, उसे जूते मारेगा, और दूसरी ओर पिता की आरती उतारेगा तथा सेवा करेगा ? यदि तुम्हारे विधान में यही है तो तुम्हारा गुरु तो अब नहीं है, उसके चित्र मात्र ही रह गये हैं ! क्यों नहीं फाड़ कर फेंक देते उन चित्रों को ? क्यों नहीं निकालते जलूस अब उन चित्रों का, जूतों से पीटते हुए ?

बालक ! मन्दिर मेरे शरीर का ही प्रतिरूप है, एवं मूर्ति मेरी आत्मा का प्रतीकरूप है। जिस प्रकार पिता का चित्र भी पिता की भाँति ही सम्माननीय है उसी प्रकार सृष्टा आत्मा (जो तुझे भस्मी से वनस्पति एवं वनस्पति से रक्त–मांस–हड्डी के इस स्वरूप में लाया है) जितना महान है, उतना ही उसका मूर्तरूप यह मूर्ति भी है ! इसलिए मूर्तियों का भक्त हो ! उपासक बन !! नत मस्तक हो !!! मूर्ति के प्रति कभी भी संशय न हो तेरे मन में ! इस महान एवं पवित्र माध्यम (मूर्ति) के द्वारा तू अपने सृष्टा आत्मा से योग करने में सफल हो एवं सृष्टा पद को प्राप्त हो !

अद्वैत का प्रतीक भी अद्वैत ही हो सकता है, इसलिये अपनी आत्मा का मूर्त रूप तू किसी मनुष्य को नहीं बना सकता, क्योंकि उसमें तो स्वयं बुद्धि और आत्मा का द्वैत है। तब पत्थर की मूर्ति ही तो आत्मा का प्रतीक बन सकती है क्योंकि मूर्ति अद्वैत है ! इसलिये प्रथम पूजा कर उस आत्म-प्रतीक मूर्ति 'ॐ' की, उपरान्त सेवा कर गुरुजनों की ! इसलिये मूर्ति ही में तेरी प्रीति होवे। बालक ! ध्यान रहे कि आत्मा का प्रतीक कोई व्यक्ति नहीं हो सकता है। आत्मा अटल है ! मूर्ति भी अटल है !

आत्मा काम, क्रोध, आवेश, प्रतिकार, घृणा, द्वेष को प्राप्त नहीं होती है। मूर्ति भी काम, क्रोध, आवेश, प्रतिकार, घृणा को प्राप्त नहीं होती है। जबकि शरीरधारी इनसे सर्वथा परे नहीं हो सकता है। इससे भी सिद्ध होता है कि आत्मा की उपासना के लिये, मूर्ति का माध्यम ही सर्वोत्तम है।

पुनः मूर्ति के प्रति लाई गई आस्था कभी भी खण्डित नहीं होती है; जबकि गुरु रूप में पूजित शरीरधारी के प्रति कभी भी मन में सन्देह उत्पन्न हो सकता है। मूर्ति चोरी नहीं करती; झूठ नहीं बोलती; छिप के व्यभिचार, दुराचार नहीं करती। इसलिये पवित्र, महान, अमर आत्मा की पूजा के लिये आत्म-प्रतीक मूर्ति को ही बना !

न तो तू शरीरधारी की पूजा करता है, और न मूर्ति की ही। यह दोनों तो मात्र माध्यम हैं। पूजा तो तू आत्मा 'ॐ' की ही करता है। तब क्यों न मूर्ति को ही आत्म-प्रतीक माध्यम बना, आत्मा की पूजा करे ? इसलिये मूर्ति पूजा ही सदा उचित एवं सर्वोत्तम है।

गुरु जो मैं हूं ! तुझे ज्ञान दे रहा हूं !! तेरा प्रथम गुरु नहीं हूं। माता-पिता भी यन्त्र मात्र हैं, तेरे प्रथम गुरु नहीं हैं। तेरा प्रथम गुरु तो कृष्ण (आत्मा) है जो ब्रह्मा है, विष्णु है, महेश है, राम है; जो इस शरीर को अपने गुरुत्व के द्वारा नाना ग्रहों के गुरुत्वाकर्षण से बचाता है तो इसका विघटन (Decay) नहीं होता है। इसलिये अरे बालक ! गुरु मात्र कृष्ण को जान ! हम सब तेरे गुरु-मन्दिर के पुजारी होने से उप-गुरु का सम्मान पाने के अधिकारी हैं। गुरु 'ॐ' है ! उसका प्रतीक मन्दिर की प्रतिमा है। गुरु का सम्मान पाने का एकमात्र अधिकार उसी को है ! हम पुजारियों को उसके उपरान्त उप-गुरु का सम्मान दे !

इस प्रकार जब प्रभु कृष्ण ने इस नन्हें रथ का, इस सुन्दर मन्दिर रूपी शरीर का, नियन्त्रण लिया तो वे (कृष्ण) इस रथ पर, इस शरीर मन्दिर में, अकेले थे। अद्वैत था। जब इस बालक की आँख भी नहीं खुली थी तब भी वह कृपालु प्रभु इसकी नाना ग्रहों की मायाओं से,

रक्षा करते हुये, माँ के दूध को यज्ञ के द्वारा रक्त-मांस-हड्डी आदि में सृजन कर इसकी काया को बलिष्ठ कर रहे थे। इसका शरीर निरन्तर विस्तार को प्राप्त हो रहा था। ज्ञान नहीं था इसे। क्यों ? क्योंकि यह चिता थी, भस्मी बन चुका था। उपरान्त, भस्मी के कण भी विसर्जित हुये जब अणु-अणु में यज्ञकुण्ड के द्वारा, तो पुनः सृजन से वनस्पति बना एवं पुनः अणु-अणु में यज्ञ के द्वारा पवित्र होकर पुनःसृजन से रक्तादि विन्दुओं में सृजित हुआ। इसलिये इसके पास ज्ञान कहाँ ? ज्ञान तो नित्य है, सनातन कहा जिसको—उस आतमा कृष्ण के पास है। जैसा कि गीता में भी कहा उन्होंने कि, हे अर्जुन ! तेरे सैकड़ों जन्म हो चुके हैं, परन्तु तू जानता नहीं है और मैं जानता हूं। इसलिये हे बालक ! उस आतमारूपी कृष्ण को प्राप्त होकर असंख्यों जन्मों का ज्ञान प्राप्त कर ब्रह्म ज्ञानी हो।

अब सुन बालक ! कि इस शरीर रूपी रथ पर सारथी कृष्ण जो अकेला सम्पूर्ण ग्रहों की मायाओं को निरस्त्र कर रहा है, कितनी आश्चर्यजनक लीला है उस मोहक की—भस्मी चिता की सुन्दर बालक बन बैठी है—तेज से कृष्ण के स्वयं कृष्ण लग रहा है वह ! मुस्करा रहा है यह शिशु ! अरे ! यह मुस्कान तो उस लीलाधारी की है! ! अरे देखो! ! उस ठग की शरारत को कि गोभी-बैंगन-आलू बालक बना किलकारियाँ ले रहा है ! क्या देखा तूने कृष्ण मेरा ?

सारथी की प्रेरणा हुई। दसों इंद्रियाँ जाग उठीं। दस फन वाला कालिया नाग फुफंकार उठा। नन्हें से बालक की आँखें खुली। देखा तो ज्ञान का अर्जन आरम्भ हो गया। इस प्रकार, जो आँखों से देखा, जो कानों से सुना, आदि ज्ञानार्जन जो हुआ, बुद्धि का स्वरूप बना। ऐसा तो नहीं कि भारत में उत्पन्न होकर रूसी बोलने लगा हो ? जो भाषा पढ़ सका, जान सका इन इंद्रियों द्वारा, वही तो बुद्धि बनी ! जबकि करोड़ों जन्मों में न जाने कितनी-कितनी भाषाओं का ज्ञान लिया परन्तु अब वह कहाँ है इस बुद्धि के पास ?

इसलिये यह जो बुद्धि है दसों इंद्रियों के ज्ञान का अर्जन होने से

अर्जुन कहाता है। क्योंकि अर्जन इसका इंद्रियों ने किया है इसलिये इंद्र का पुत्र कहलाया। इन्द्र कहा है—दसों इंद्रियों के समूह को। यही मन है। मन ही इन्द्र है। इसी को कालिया नाग कहा है मैंने, जिसकी यह दसों इंद्रियाँ दस मुख हैं। बहिर्मुखी होने से दसों इंद्रियाँ हिंसक कही हैं। स्थूल होने से इनका ज्ञान सदा सन्देहयुक्त रहता है। इससे विषैला कहा है इनको। इन्हीं इंद्रियों की नाना-नाना लिप्साओं को अप्सराओं की संज्ञा दी है! इन्हीं के कारण भटक कर इस शरीर को चिता की गति और नाना योनियों का भटकाव प्राप्त होता है।

इस प्रकार कृष्ण की इच्छा से इंद्रियों ने बुद्धि को अर्जन द्वारा स्वरूप प्रदान किया तो अद्वैत इस शरीर का, द्वैत में बदल गया। शरीर रूपी रथ पर आत्मा सारथी कृष्ण हैं और महारथी अर्जुन बुद्धि है। यज्ञोपवीत ही गाण्डीव है उस महारथी अर्जुन का। इसीलिये इसे अन्य मालाओं की भाँति न पहना कर गाण्डीव की भाँति पहनाता हूं। मायाओं का महासमर ही महाभारत है।

त्याग के पैने वाणों द्वारा यज्ञोपवीत के गाण्डीव पर महारथी को, सम्पूर्ण लिप्साओं को, सम्पूर्ण मायाओं को नष्ट करते हुये अन्तर्मुखी होकर, कृष्ण में लीन होकर, सम्पूर्ण को कृष्णवत् (अमर) बना देना है तो महासमर का विजेता बनेगा, त्रैलोकेश्वर बनेगा। सृष्टा का महान पद पावेगा। शरीररूपी सामग्री को आत्मारूपी हवनकुण्ड में बुद्धिरूपी पुजारी यज्ञ करके सम्पूर्ण को तेज में परिवर्तित करेगा तो उसे उन महान रहस्यों का ज्ञान तथा स्वयं कर सकने की क्षमता प्राप्त होगी जिनसे एक ही प्रकार के अणु नाना-नाना स्वरूपों को धारण करते हैं—यज्ञों के द्वारा!

इस प्रकार बालक! मैं तो तेरा उप-गुरु मात्र हूं, अर्थात् गुरु के गृह का मार्ग भर दिखाने वाला हूं। जब तू प्रथम गुरु आत्मा 'ॐ' कृष्ण के पास पहुंचेगा तो तुझे संशय से परे करोड़ों वेदों के ज्ञान से भी अति महान ब्रह्म का एवं परंब्रह्म का ज्ञान प्राप्त होगा। उससे पूर्व मार्ग का ज्ञान मात्र तुझे ज्ञानी होने का भ्रम न दिलावे क्योंकि ज्ञानी वही है जिसका ज्ञान

संशय रहित हो । ऐसा ज्ञान आत्म-मार्ग से ही मिल सकता है, स्थूल इंद्रियाँ ग्रहण करने में समर्थ नहीं हैं । तथा जो स्वयं को न जान सका और विश्व-ज्ञानी बनने का दावा करता है वह निश्चय ही मनुष्य के उपरान्त नीच योनियों को प्राप्त होता है । अपने पिछले जन्म के तप के तेज को इस जन्म में भोगकर वह 'विश्व-ज्ञान-गुरु' स्वयं से अनभिज्ञ, ज्ञान के दम्भ से अभिशप्त, अति निकृष्ट पशु-योनियों को प्राप्त होता है, जिनका स्पर्श मात्र मनुष्य को अपवित्र कर देता है । इसलिये बालक दम्भ के पाप और ज्ञान के पाखण्ड से दूर रहे तू ! ज्ञान को मात्र मार्ग दर्शक मानकर निरन्तर उस मार्ग का अनुसरण करता रहे तू ! कोरा तर्क शास्त्री अभिशप्त है धरा पर ।

अरे बालक ! जान इस तथ्य को कि तू मुझे गुरु मानकर सम्मान देता है तो मैं दम्भ को प्राप्त नहीं होता हूं क्योंकि मैं तुझे अपना इष्टदेव मानकर निरन्तर भजता हूं । अरे ! तू ही तो मेरा लीलाधारी कृष्ण है ! मेरा प्रभु है !! तो बालक अब साक्षात् प्रकट होकर सशरीर तेज में मुझे दर्शन दे उस असंख्य व्रह्माण्ड स्वरूप के । यही गुरु-दक्षिणा है मेरी !! मेरे द्वारा ग्रहण कराये गये ज्ञान-मार्ग से तू मोक्ष को प्राप्त होकर असंख्यों सृष्टियों का सृष्टा बने, यही पूजा हो मेरी तथा यहीं हों मेरी पूजा के पुष्प !

इस प्रकार यज्ञोपवीत के तीन सूत्रों को धारण कराने की पृष्ठभूमि क्या है सो संक्षेप में बताई मैंने तुझको ! यह यज्ञोपवीत पुनः-पुनः तुझे तीन यज्ञों की, तीन कर्तव्यों की, सुधि दे तथा निरन्तर मोक्ष मार्ग पर दशरथ (दस इंद्रियों को रथ=नियन्त्रण) बनाकर चलने को प्रेरित करे ! पहले तीन यज्ञ क्या हैं सो तुझे बताये कि किस प्रकार भस्मी से यज्ञ के द्वारा, आत्मा कृष्ण के द्वारा, वनस्पति में लाया गया तू । दूसरे किस प्रकार आत्मा सारथी कृष्ण तुझे वनस्पति से मनुष्य स्वरूप में लाया । तीसरा यज्ञ है किस प्रकार तू बुद्धि पुजारी शरीररूपी सामग्री को आत्मारूपी हवनकुण्ड में यज्ञ करके सशरीर तेज में परिवर्तित कर सके, तो ब्रह्मज्ञानी हो और करोड़ों वेदों का ज्ञाता हो, ब्रह्मर्षि के महान पद पर

आसीन हो, नाना ग्रहों पर, नाना सृष्टियों को रचकर सृष्टा का महान सम्मान पाकर अनन्त काल तक जन-जन का प्यारा प्राणाधार हो सके।

प्रथम दो यज्ञ स्वयं आत्मा कृष्ण ने किये। तीसरा यज्ञ मात्र ही तुझे करना है! देख कि स्वयं कृष्ण तेरे लिये दो सूत्रों के यज्ञ करते हैं, तथा तीसरे यज्ञ में प्रभु यज्ञेश्वर तुझे यज्ञ का ज्ञान देने के लिये यज्ञकुण्ड मात्र बनने को तैयार हैं। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार गुरु पहलवान अपने शिष्य को दाँव-पेंच सिखाने के लिये स्वयं लेट जाता है। अरे! कितना भाग्यवान है तू! कि नारायण स्वयं गुरु बनकर ज्ञान देने को आतुर हैं कि नारायण ही हो जावे तू!

तीन सूत्र यज्ञोपवीत के तीन प्रतिज्ञा हैं तेरी! प्रथम प्रतिज्ञा एवं संकल्प है कि वनस्पति में भी उस आत्मा राम को, यज्ञेश्वर कृष्ण रूपी सारथी 'ॐ' को देखूंगा! प्रत्येक पेड़-पौधे को भगवान का मन्दिर मानकर उसकी स्तुति करूंगा, रक्षा करूंगा एवं नित्य नूतन वनस्पति की सृष्टि करूंगा, जिससे स्वयं यज्ञेश्वर प्रभु यज्ञ-रूप हवनकुण्ड प्रकट होकर चिता की भस्मी को पुनः जन्म प्रदान करें।

दूसरा संकल्प है तेरा कि सम्पूर्ण जीवधारियों में उस प्रभु यज्ञे-श्वर कृष्ण को देखता हुआ तथा स्वयं में भी उसे ही भासता हुआ इस शरीर को उसका मन्दिर मानकर भजूंगा। अर्थात् यह शरीर उस आत्मा कृष्ण का है, मैं तो बुद्धि रूप मात्र पुजारी हूं इस मन्दिर का, ऐसा जान कर इसकी रक्षा करूंगा तथा लिप्साओं के द्वारा इसे भोगूंगा नहीं एवं गन्दा नहीं करूंगा। नित्य यज्ञ के हेतु सामग्री (भोजन) प्रदान करूंगा तथा सम्पूर्ण इन्द्रियों को कृष्णरूपी आत्मा के लिये ही प्रयोग करूंगा, लिप्साओं से प्रेरित होकर उनका आनन्द उठाने की अनाधिकार चेष्टा नहीं करूंगा। यह शरीर जब मैं बनाता ही नहीं हूं तो यह मेरा कैसे हुआ? यह तो उस आत्मा का है जो इसे यज्ञ के द्वारा लाया है, तो इसका लिप्साओं की पूर्ति के लिये प्रयोग करने वाला मैं कौन? यह महापाप है। ऐसा पाप करने वाला निश्चय ही भारी दुख झेलता हुआ स्वयं को भी खो

बैठता है, और मनुष्य योनि से भटक कर नाना निकृष्ट योनियों को प्राप्त होता है।

तीसरी प्रतिज्ञा तेरी है इस शरीररूपी हवन सामग्री को आत्मा-रूपी हवनकुण्ड में यज्ञ करके सम्पूर्ण को तेज में परिवर्तित कर देने की, जिससे तुझे मोक्ष मिले। यही है तेरे जीवन का मात्र लक्ष्य। इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिये ही तेरे द्वारा सम्पूर्ण क्रियायें हों। तू कभी भी इस लक्ष्य से अतिरिक्त जीवन का लक्ष्य न बनावे तथा मोक्ष-मार्ग से विपरीत तेरा कोई मार्ग न हो। इसका प्रतीक है तेरे यज्ञोपवीत का तीसरा सूत्र।

तू कभी भी कर्महीन न हो। क्योंकि कर्म ही परमेश्वर है और आत्मा अनादि है। कर्म द्वारा ही आत्मा परम होकर परमात्मा बनती है। कर्म के द्वारा ही तू पुनः मनुष्य स्वरूप को प्राप्त होता है, भस्मी रूप तज कर! इसलिये कर्म में ही तेरी प्रीति होवे, और बीच संग्राम में खड़े सैनिक की भाँति सर्तक योद्धा बनकर कर्म को कर्म के लिये ही करता हुआ, लिप्साओं को त्यागता हुआ, तू मोक्ष-मार्ग पर अग्रसर हो सके; इसीलिये इन तीनों सूत्रों के यज्ञोपवीत को गाण्डीव की भाँति धारण करवाता हूं। तुझे एक क्षण को भी भटकाव न हो। भ्रम में पड़कर तू सुख और लिप्साओं की पूर्ति में न भटकने लगे, इसलिये जब भी तेरी दृष्टि इस गाण्डीव पर पड़े, एक योद्धा के धर्म का ज्ञान हो तुझे तथा मायाओं के महासमर की सुधि आवे तुझको!

मनुष्य भूख से नहीं मरता, मरता तब है जब वह भूख को मिटाने की कोशिश करता है और इसी प्रयास में स्वयं मिट जाता है। भूख इंद्रियों की, लिप्साओं की, मिटती नहीं है, बढ़ती जाती है निरन्तर, ज्यों-ज्यों मिटाने का प्रयास करता है मनुष्य! इन लिप्साओं से छुटकारा तभी मिल सकता है जब इन लिप्साओं की भूख मिटाने का प्रयास न करके तू इन लिप्साओं को ही मिटा दे; और कर्म को कर्म के लिये निष्काम भाव से करे।

यज्ञोपवीत का मन्त्र गायत्री है। यह आत्मा का मन्त्र है, तथा आत्मा ही की स्तुति है, जैसा की गीता में स्वयं आत्मा कृष्ण कहते हैं कि

छन्दों में मैं गायत्री छन्द हूं। गीता के आठवें अध्याय में इसी मन्त्र का ही विस्तार है।

गायत्री मन्त्र में मैं तुझे आत्मा का साकार रूप दर्शाता हुआ उसकी महानता एवं कृपाओं का गुण-गान करता हूं। "ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदिवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् !"

"तत्सवितुर्वरेण्यम्", ऐसे सविता अर्थात् सूर्य का वरण (धारण) करता हूं! कैसे सूर्य का? ॐ है जो! आत्मा है जो! कैसा है वह ॐ? सूर्य के जैसा तेजस्वी हवनकुण्ड है जो; प्राणाधार है; ज्योर्तिमय है; तम का नाश करने वाला है; सम्पूर्ण सृष्टियों का कर्ता है; सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाला है। इस प्रकार आत्मा का साकार रूप दिखाया इस मन्त्र में तथा गुण-गान किये उसके। इसीलिये गायत्री को तीन रूपों में भजता हूं। प्रथम प्रातः वह 'ब्रह्म-स्वरूप' है। दोपहर को उसे 'रुद्र-रूप' जानकर उपासता हूं तथा सायंकाल 'विष्णु-स्वरूप' गायत्री की पूजा करता हूं। इस प्रकार गायत्री मन्त्र के द्वारा उस आत्मप्रतीक जगत आत्मा सूर्य को ब्रह्मा, विष्णु, महेश मानकर तू स्वयं अपनी आत्मा को भजता है। यही प्रकृति का नियम भी है।

प्रातःकाल तूने जब भोजन ग्रहण किया तो आत्मा सूर्य रूपी तेजस्वी हवनकुण्ड ने 'ब्रह्म-स्वरूप' हो सम्पूर्ण भोजन को यज्ञ के लिये सामग्री स्वरूप ग्रहण किया। तूने प्रातः ब्रह्म-स्वरूप गायत्री की उपासना की।

दोपहर को आत्मा सूर्य रूपी तेजस्वी हवनकुण्ड प्रलयंकर रुद्र का रूप धारण कर अपनी प्रलयंकर शक्तियों (cosmic forces) के द्वारा भोजन को यज्ञ कर तेज के सूक्ष्म ब्रह्म अणुओं (atoms) में परिवर्तित करने लगा तो तू भी गायत्री की "रुद्र-स्वरूप" उपासना करने लगा तथा 'त्राहि माम्' की मुद्रा में सूर्य को जल दिया।

सायंकाल आत्मा सूर्यरूपी हवनकुण्ड ने विष्णु-स्वरूप हो उन तेज के सूक्ष्म विन्दुओं का सृजन करना आरम्भ किया और उन्हीं विन्दुओं को

रक्त, मांस व हड्डी में परिवर्तित करने लगा तो तूने भी 'विष्णु-स्वरूप' गायत्री की उपासना की।

इस प्रकार बालक सनातन धर्म प्रकृति का धर्म है तथा इसका प्रत्येक नियम प्रकृति के ही अनुरूप है। सम्पूर्ण ब्रह्मांडों में आत्मा मात्र का जो धर्म है तथा प्रकृति के विपरीत जो किसी लोक-लोकान्तर में नहीं है सो धर्म है तेरा। सनातन की लिखी पुस्तक है एक-एक पत्ते पर; एक-एक नक्षत्र पर; ग्रहों, सूर्यों, ब्रह्मांडों पर लिखे अमर सिद्धान्तों का, जो एकमात्र धर्म है, उसे सनातन धर्म कहा है मैंने !

निराकार नहीं है प्रभु आत्मा ! ब्रह्म को भी निराकार कहना भ्रान्ति है। यदि आत्मा निराकार होता तो "तत्सवितुर्वरेण्यम्" न कह कर मैं कहता "तत् निराकार वरेण्यम्।" इस प्रकार वेद मन्त्र का अप-मान होगा यदि तू उसे निराकार कहेगा। जो निराकार है; जिसका कोई आकार नहीं, उसका अस्तित्व कहाँ ? तथा जिसका निराकार (आकार हीन) होने से अस्तित्व ही नहीं, वह तो है ही नहीं ! इससे तो सृष्टा का ही अस्तित्व मिटा दिया निराकार उपासकों ने। जिसने नाना सृष्टियों की उत्पत्ति की, नाना आकार प्रदान किये, उसी सृष्टा का अस्तित्व ही मिटा दिया। अरे ! वह नानाकार है; हर पेड़ में, हर पत्ते में, कण-कण में व्याप्त है वह। उसके अतिरिक्त सम्पूर्ण ब्रह्मांडों में है ही क्या ? हर रूप वही है ! हर रंग वही है ! मैं भी वही हूं ! तू भी वही है !! इसलिये जब प्रत्येक आकार उसी का है तो उसे नाना-नाना आकार जान ! सर्वत्र भज उसको !

अंगन्यास और सर्वांगन्यास के बिना तुझे पूजा का कुछ भी फल प्राप्त न होगा, क्योंकि इसके बिना तो तेरी पूजा लक्ष्यहीन हो जावेगी। जिस सामग्री को यज्ञ कर उसे तेज में परिवर्तित करना है तुझे उस सामग्री को अंगन्यास तथा सर्वांगन्यास द्वारा शुद्ध एवं आभास कैसे नहीं करेगा तू ! यह शरीर ही तो सामग्री है जो यज्ञ करनी है तुझे, आत्मारूपी हवन-कुण्ड में ! फिर उसे शुद्ध एवं उसका न्यास करना पाखण्ड और ढोंग कहा किसने ? क्या कोई पुजारी बिना सामग्री का स्पर्श किये जादूगरी से सामग्री

को कुण्ड में यज्ञ करता देखा तूने ? इसलिये संध्या विधि में दिखाये गये प्रत्येक विनियोग एवं न्यास को विधि पूर्वक करता हुआ, उन पूर्वज महात्माओं को ध्यान द्वारा प्रणाम करता हुआ तू आत्मा की उपासना करे। उन महात्माओं को, जो दिव्य तेज में परिबर्तित होने से नित्य स्वरूप सनातन हो गये हैं, तू आह्वान श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक करे तथा उनका कृपापात्र होने से शीघ्र लक्ष्य को प्राप्त हो।

इस प्रकार बालक ! तुझे मैंने यज्ञोपवीत के रहस्य बताये हैं तथा शुभ मुहूर्त में विधिवत तुझे यह गाण्डीव, तीन यज्ञों का प्रतीक; तीन प्रतिज्ञाओं का साक्षी, सम्पूर्ण वेदों का सार, आत्मा राम की लक्ष्मण रेखा, मोक्ष का मार्ग, धारण करांकर इन मायाओं के महासमर, महाभारत का महारथी घोषित करूंगा।

विवाहोपरान्त यज्ञोपवीत दुहरा कर देते हैं। उसका कारण यह है कि पत्नी को मोक्ष दिलाने का भार भी पति पर है। पत्नी यदि स्वयं यज्ञोपवीत धारण करेगी तो वह पतिव्रता कैसे रहेगी ? उसका तो पति ही परमेश्वर है। उसे मात्र पति परमेश्वर को भजना चाहिये। जैसे कि पृथ्वी सूर्य को भजती है, तो चन्द्रमा पृथ्वी को भजता हुआ ही पृथ्वी के साथ सूर्य की परिक्रमा करता है। जो प्रकृति का नियम है, वही सनातन है !

यह भी दुर्भाग्य है कि कुछ सनातन की ही पीढ़ियों से पोषित विद्वान, सनातन द्रोही बनकर स्त्रियों को यज्ञोपवीत धारण कराने लगे हैं जो कि उन देवियों को गाली है; पति-भ्रष्टा का कलंक है तथा यज्ञोपवीत न होकर विधवा सूत्र है।

भक्तजनो ! मैंने सुनायी आपको अतीत की कहानी कि किस प्रकार और क्यों धारण कराते हैं यह यज्ञोपवीत गुरुजन ! कितना पवित्र और महान है यह ! तीन रेखाओं से, तीन सूत्रों से, बांध देता है गुरु जिससे डूब न जाये शिष्य कहीं बीच ज्ञान गंगा में भटककर ! इस प्रकार सनातन के रहस्यों को संक्षिप्त रूप से प्रकट किया मैंने। राम है जो; कृष्ण है सो; ब्रह्मा भी है; विष्णु भी है; महेश भी है ! सर्वत्र है ! सर्वत्र है !!

साकार है !! प्रकट है !! प्रकट है !!!

क्या देखा नहीं नन्हा कन्हाई तुमने ? क्या दिखी नहीं मोहक मुस्कान उसकी ? उसकी लीला सुनोगे तुम ? माखन चोर लीलाधारी की !

माता यशोदा तंग आ गईं नन्हें कन्हाई की शैतानी से। दही मथ रही हैं। बगल में नन्हे कन्हैया को बिठाया हुआ है। बाहर खेलने जाना चाहता है। माता यशोदा डर से बाहर निकलने नहीं देती हैं। पापी कंस के भेजे पिशाच कहीं नन्हें सुकुमार का अहित न करें !

परन्तु कन्हाई मानते नहीं हैं। धीरे-धीरे सरक कर भागने की कोशिश करते हैं तो पैरों में बँधे घुंघरू धोखा दे जाते हैं। माँ चौंक कर पकड़ लेती हैं। झिड़कती है। पास बिठा लेती हैं और पुनः दही बिलोने लगती हैं। कन्हाई फिर मौका पाकर भागने की कोशिश करते हैं। खीझ कर यशोदा उन्हें ऊखल से बांध देती हैं और छड़ी से उनकी पिटाई करती हैं। बैठकर पुनः दही मथने लगती हैं।

कुछ देर बाद निगाह उठाकर देखती हैं तो अवाक रह जाती हैं। ऊखल ने बड़े कन्हाई का रूप भरा है और स्वयं चलता हुआ ड्योढ़ी के पास पहुंच गया है। बगल में बंधे हैं नन्हें कन्हाई ! चीख उठीं ! भागकर रस्सी खोली। आँचल में छिपा लिया अपने लाड़ले को और भयभीत आँखों से देखने लगीं ऊखल को। अरे ! विचित्र बात है ! अब तो ऊखल फिर ऊखल बन गया है। कृष्ण के जैसा उसका स्वरूप भी नहीं है। चलता भी नहीं है।

यशोदा अनुचरों को बुलाकर कहती हैं, अरे ! यह ऊखल ,मायावी कंस का भेजा पिशाच है ! अभी कन्हैया का स्वरूप भरकर मेरे लाड़ले को लिये जा रहा था। कितनी मूर्ख हूं मैं, कि अपने मनमोहन को स्वयं बांध बैठी उससे ! अब यह पिशाच हमारे डर से पुनः ऊखल बन बैठा है ! तुम लोग इसे रस्सी से बांधकर गाँव से बाहर ले जाओ ! नदी के किनारे लकड़ियाँ बटोर कर इसे जलाकर राख कर दो ! और सुनो ! इसकी राख नदी में बहा देना। पता नहीं कैसा मायावी है यह पिशाच ! साथ ही

स्वयं भी वस्त्रों सहित स्नान करना और यज्ञोपवीत भी बदल देना। कहीं छूत बनकर गाँव न लौट आवे यह पिशाच !

अनुचरों ने आज्ञा का पालन किया, परन्तु क्या जाने यह भोली माता कि कन्हैया के स्पर्श से जीवन मिल गया था ऊखल को। स्पर्श मात्र से जड़ ऊखल स्वयं कन्हैया बना और नन्हें कन्हाई की इच्छा मात्र के लिये बाहर जा रहा था।

और ! देख रहा हूं मैं ! ठगी उस ठगेश्वर की !! कि छू लिया है राख को, तो राख का पुतला कन्हैया ही नजर आने लगा है, मुस्कराने लगा है, चलने लगा है, नाना लीला दिखाने लगा है। छोड़ के चल देगा जिस दिन यह आत्मा कन्हाई, गाँव से बाहर नदी के किनारे चन्द मुट्ठी राख में बदल जावेगा। तुझ अछूत को भस्म कर सब सवस्त्र नहायेंगे। यज्ञोपवीत बदलेंगे। इतना अछूत, अपवित्र, कंस का पिशाच हो जावेगा तू !

पहचान स्वयं को रे जड़ ऊखल शरीर—कि किसके तेज से मुस्करा रहा है तू ! सोच रहा है ! देख रहा है ! नाना लीला दिखा रहा है तू! अरे चौंक ! चौंक !! पहचान उस पारस, आत्मा, माधव को, जिसके छूने से मुझे माधव दिख रहा है तू ! देख ! देख !! कहीं छोड़ के निकल न जावे छलिया—कि फिर जड़ ऊखल ही बन के रह जावे तू !!

देखता क्यों नहीं रे ऊखल ! कि समय का जल अंजुली से निकलता जा रहा है। रीती अंजुलि, छूटा संग कन्हाई का; चन्द मुट्ठी राख में गाँव से बाहर बदल जावेगा तू !

अरे मत देख ! मत सुन !! मत सोच !!! समा जा ! समा जा !! लिपट जा उस कन्हाई से कि सदा-सदा को कन्हाई ही हो जावे तू ! अरे भक्तों ! देखो ! देखो !! मैं ऊखल हूं कन्हाई का !!!

छू लिया है सनातन ने—सनातन हो गया हूं मैं !

हरि ॐ नारायण हरि
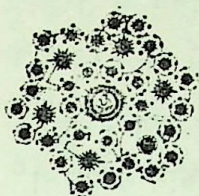
द्वितीय अध्याय

दशानन मार्ग

भक्तजन !

आज आपको बताऊंगा दशानन मार्ग, जो है दर्शन चिता का ! जब माया महासमर में सारथि रथ को त्याग कर चल देता है तो महारथी अर्जुन की, जो दशरथ न बन सका, क्या गति होती है।

इससे पूर्व भी मैं आप प्रभुओं को बता चुका हूँ कि कृष्ण-अर्जुन-संवाद बुद्धि और आत्मा का वार्तालाप है। युद्ध की सत्य घटना को पृष्ठ-भूमि में रखकर महर्षि संजय ने दर्शाया है एक अन्तर्द्वन्द। एक महाभारत है कौरव और पाण्डवों का , तो दूसरा महासमर है मायाओं का—प्रकृति का पुरुष से ! गीता वेदों का संक्षिप्त ज्ञान है। वहाँ पर वार्तालाप में बुद्धि अर्जुन और आत्मा कृष्ण में प्रश्न उत्तर हो रहा है तथा दसों इन्द्रियों का समूह इन्द्र, जो मन है, अर्जुन का मूक प्रेरक है।

अर्जुन संशय में है। एक ओर आत्मा कृष्ण हैं; जो गुरु हैं; सखा हैं, परम प्रिय हैं। दूसरी ओर इन्द्र हैं, जो पिता है, सृजक है। दोनों अर्जुन (बुद्धि) को विपरीत मार्ग पर चलने को प्रेरित कर रहे हैं। क्या करे यह बुद्धि अर्जुन ? विचित्र धर्म संकट है। यदि इन्द्र (मन) का कहना नहीं मानता, विमुख जाता है उससे तो पित्र-द्रोही होने का दोष लगता है। यदि कृष्ण का कहना नहीं मानता तो गुरुद्रोह का पाप लगता है। दोनो ही एक दूसरे के विपरीत मार्ग दिखा रहे हैं।

कृष्ण कहते हैं, इस दस इन्द्रियों रूपी दस फन वाले कालिया नाग को 'नथ' तो तू मुझको प्राप्त होकर मेरा ही स्वरूप, अर्थात् स्वयं सृष्टा कृष्ण हो जावेगा। यही बात रामायण ने कही कि इन दस इन्द्रियों को

'रथ' (लगाम लगा) तो दशरथ होगा और राम खेलेगा आंगन में तेरे ! कृष्ण ने दस फन वाला कालिया नाग नथने को कहा ।

चिहुंक उठा इन्द्र (मन) ! बोला अरे अर्जुन ! हम दस इन्द्रियों ने ही तो मिलकर तेरा अर्जन किया । बता ? आंख न देखती, कान न सुनता, मुंह न बोलता तो तेरा स्वरूप कहाँ से बनता ? हमारे द्वारा अर्जित और हमीं से द्रोह ? हमारा पुत्र हमें नथेगा अब ? पितृद्रोही होगा रे ?

कांप उठा अर्जुन ! यह गुरु कृष्ण क्यों मेरे पिता इन्द्र को दस फन वाला नाग कहकर नथने को प्रेरित करते हैं ? यह तो सचमुच द्रोह है ! यह इन्द्रियां तो मेरी सृजक हैं । अपने स्वजनों को मारकर क्या मैं महापाप नहीं करूंगा ? इन्हें मारकर यदि परम धाम भी मिला तो क्या इस पाप से बच सकूंगा मैं ? क्या पितृ-द्रोह के कारण महापापी होकर मुझे अपयश का भागी न बनना पड़ेगा ? अपने ही स्वजनों को मारकर यदि जय भी मिली तो क्या उसे भोग सकूंगा मैं ?

बोले सारथि (आत्मा) कृष्ण ! कि हे अर्जुन ! इस इन्द्र (मन) के इन्द्रजाल में मत आ ! यह भ्रम मात्र है ! तेरा माता-पिता, बन्धु, सखा, स्वामी, सहायक तो मैं मात्र आत्मा कृष्ण हूँ । अरे यह रथ तो मेरे ही तेज से चलता है, दसों इन्द्रियों रूपी घोड़ों की रास (लगाम) तो मुझ सारथि के पास है । यह रासलीला मेरी है ! मत भटक ! इस रथ को इन्द्र का अखाड़ा मत बना ।

यह झूठ बोलता है, कहा इन्द्र ने ! यह शरीर, यह पारिजात, मुझ इन्द्र का है ! सोच रे अर्जुन (बुद्धि) ! कृष्ण तो परमब्रह्म है । सूक्ष्मातिसूक्ष्म है । तो तेरा कैसे हुआ वह छलिया ? तू उन स्थूल इन्द्रियों के द्वारा अर्जित है जो एक-एक इन्द्रिय असंख्यों स्थूल-ब्रह्म-बिन्दुओं से जुड़ कर बनी है । स्थूल से अर्जित तू, कैसे देखेगा उस कृष्ण को ? पुनः मुझ इन्द्र की सम्पूर्ण इन्द्रियां बर्हिमुखी हैं और कृष्ण बैठा अन्दर है । तो कैसे मिल सकेगा उसे तू ? जिसे तू देख नहीं सकता, जिसे तू सूंघ नहीं सकता, जिससे

तू बोल नहीं सकता; जो दसों इन्द्रियों से परे का ज्ञान है; वह कृष्ण तेरा कैसे हो गया ? एक ओर वह भ्रम मात्र कृष्ण है और दूसरी ओर मैं तुम्हारा सृजक इन्द्र हूं जिसने अपने दसों द्वारों से तुझे अर्जन किया तो तू सोचने-समझने के योग्य हुआ। आज भी तू मेरी जिह्वा इन्द्रिय ही की कृपा से बोलता है। कान इन्द्रिय की कृपा से सुनता है। आंख इन्द्रिय की कृपा से देखता है। आज भी तू आश्रित हमारा है और 'नथ' देना चाहता है हमको, उस कृष्ण के कहने पर ? अरे ! सोच कि क्या मूर्खता कर रहा है तू ! हमारे द्वारा ही तो तुझे सम्पूर्ण जगत दिखता है। हमारे द्वारा ही तो तू नाना सृष्टियों के दर्शन पाता है। हमारे द्वारा ही तो तुझे स्वजन-दुर्जन का ज्ञान होता है। हमारे द्वारा ही तो तू स्वजनों को पहचानता है, बोलता, सुनता है और नाना ऐश्वर्य का भोग करता है। यदि हमको ही 'नथ' दिया तूने, अथवा 'रथ' दिया तूने ; तो उस जीवन में क्या रह जावेगा बाकी ? उस नीरस-जीवन को कब तक ओढ़ सकेगा तू ?

अर्जुन को लगता है कि इन्द्र ठीक ही तो कह रहा है ! यह कृष्ण भले ही मेरा मित्र है ! सखा है ! परन्तु है तो पुराना छलिया !

तभी कृष्ण उसे पुनः प्रेरित करते हैं कि हे अर्जुन ! इस इन्द्र के भटकाव में मत आओ ! यह भ्रम मात्र है। मेरे इस रथ का त्याग करते ही सब व्यर्थ हो जावेगा। यह पारिजात इन्द्र का नहीं है। इसकी नाना लिप्सा रूपी अप्सराओं के छलने में मत आओ। दसों इन्द्रियों को 'नथ' (नियन्त्रित) कर, एक सेनानी की भांति युद्ध करो ! इन्द्र जो तुम्हें स्वजन दिखा रहा है उनमें कोई भी स्वजन नहीं है तुम्हारा। जिसे इन्द्र दिखाता है उसे भ्रम जानो।

सोचो ! जिसे तुम माता कहते हो क्या वह माता है तुम्हारी ? इससे पूर्व तो तुम वनस्पति थे, जो गर्भ में यज्ञ के द्वारा रक्त-मांस-हड्डी में परिवर्तित हुऐ थे। तो बताओ कौन-कौन से वृक्ष और पौधे माता बने थे ? इससे पूर्व तुम भस्मी थे चिता की ; तो बताओ कौन सी चिता माँ थी तुम्हारी, जिसके गर्भ से प्रकट हुए थे तुम भस्मी बनकर ? उससे भी

पूर्व उस चिता पर पड़ा वह मृत शरीर तुम थे। तो उस शरीर के माता-पिता तुम्हारे माता-पिता हुए। हे अर्जुन! मुझे बताओ कि वे कौन थे और कहाँ पर हैं अब ?

एक उदाहरण देता हूँ। एक हलवाई ने लड्डू बनाये। दस पात्रों का उपयोग किया। एक बर्तन में बेसन घोला ; एक में शीरा बनाया ; एक में घृत को गर्म किया। इस प्रकार उसने दस बर्तनों का उपयोग करके लड्डू बनाये, तो अब बताओ कि लड्डू किस बर्तन ने बनाये ?

स्पष्ट है कि लड्डू बर्तन ने नहीं वरन् हलवाई ने बनाये। तो उन लड्डूओं का सृजक कौन हुआ ? बर्तन अथवा हलवाई ?

इसी प्रकार हे अर्जुन ! भस्मी को नाना वृक्ष रूपी बर्तनों में यज्ञ करके वनस्पति स्वरुप देने वाला हलवाई मैं आत्मा हूँ। वनस्पति को यज्ञ के द्वारा रक्त-मांस-हड्डी एवं यज्ञ के द्वारा शरीर रूप देने वाला सृजक मैं आत्मा हूं ; तो बता पात्र तेरे किस प्रकार माता-पिता हो गये ? जिसे तू माता कहता है क्या वह माता तेरा अंग, जो कटकर अलग हो गया है, पुनः वनस्पति से नया बनाकर लगा सकती है ? मत भटक अर्जुन ! तेरा माता पिता, स्वामी, सहायक मात्र मैं आत्मा सारथि कृष्ण हूं।

यह इन्द्र जो कहता है कि तू उसके द्वारा देखता है, आंख उसके आदेश से चलती है, सो भ्रम जान ! हे अर्जुन !! यह सब मिथ्या है ! कपट है !! भटकाव है !! जो कुछ भी तुझे दिखाई पड़ता है वह मुझ आत्मा द्वारा ही प्रकाशित है। हे अर्जुन ! सहस्त्रों सूर्यों को मैं ही अपने तेज के द्वारा प्रकाशित करता हूं। मेरे में ही यह सम्पूर्ण चराचर समाया है तथा मैं ही इस सम्पूर्ण चराचर में सर्वत्र समाया हुआ हूँ। प्रत्येक वस्तु मेरे ही द्वारा प्रकाशित है। इस तत्व को तू भली प्रकार जान !

हे अर्जुन ! सम्पूर्ण भूत प्राणियों के लिये जो रात्रि है (गीता अध्याय २ श्लोक ६९) उसमें योगी पुरुष जागता है तथा जिस क्षण भंगुर सुख (दिन) में सब भूत प्राणी जागते हैं तत्व ज्ञानी के लिये वह गहन रात्रि

है ! अर्थात् !! तत्व ज्ञानी जानता है कि यदि मैं आत्मा शरीर को त्याग देता हूँ तो सहस्त्र सूर्य भी क्यों न प्रकाशित हों, इन्द्रिय आंख खुली रहने पर भी देख सकता नहीं है। कुछ भी तो मृतक को दीखता नहीं है। इस आत्मा रूपी लालटेन की रोशनी जब तक रहती है, यह आत्मा रूपी सूर्य जब तक शरीर में प्रकाशित रहता है, तभी तक तो इस इन्द्रिय आंख के लिये दिन है अन्यथा कितनी गहन रात्रि है कि उस गहन अन्धकार को दूर कर सकने में सहस्त्र सूर्य भी समर्थ नहीं हैं, तो बताओ वह इन्द्रिय आंख सूर्य के तेज से नाना दृश्य देख सका अथवा मुझ आत्मा रूपी सूर्य के प्रकाश द्वारा ही दिखा सम्पूर्ण चराचर उसको ! इस प्रकार हे अर्जुन ! तत्व ज्ञानी योगी का दिन उसके अन्तर में है तथा वाह्य जगत उसके लिये गहन रात्रि है। दिन कहाँ है ? जहाँ प्रकाशित सूर्य है ! सूर्य कौन सा प्रकाशित है ? जिसके प्रकाश में देख सका मनुष्य। ऐसा सूर्य मुझ आत्मा के अतिरिक्त इस शरीर में दूसरा नही है ! मेरे हटते ही गहन अन्धकार है।

हे अर्जुन ! इस प्रकार मुझको जानने वाले पुरुषों का दिन उनके शरीर के अन्दर है तथा जब तक मैं उस शरीर में विद्यमान हूँ दिन ही दिन है ! मेरे द्वारा शरीर को त्यागते ही गहन रात्रि है।

परन्तु इन्द्र के द्वारा भटकाये गये भूतप्राणी इस तत्व को न जान कर मान बैठते हैं कि शरीर के भीतर गहन अन्धकार है तथा बाहर प्रकाश-वान सूर्य जहाँ है, वहाँ दिन है। वे प्राणी लिप्साओं से प्रेरित होकर स्वयं को न जानते हुये वाह्य जगत के मिथ्या सम्बन्धों एवं नाना प्रकार की लिप्साओं में भटकते रहते हैं तथा वाह्य जगत के दिवा-रात्रि को ही सत्य मान बैठते हैं। अहो ! उन्हें सुधि तभी आती है, जब मैं उन्हें त्याग कर चल देता हूँ और खुली आँखों से भी उन्हें दिवा-रात्रि भासते नहीं हैं। दूसरी ओर ज्ञानी जन जानते हैं कि उनके लिये मैं ही सूर्य हूँ, सर्वस्व हूँ, क्योंकि मेरे हटते ही जगत उनके लिये मिथ्या हो उठता है तथा वे जगत के लिये मिथ्या हो जाते हैं।

इस प्रकार हे अर्जुन ! इस इन्द्र के भटकाव में मत आ ! मैं ही तेरा पिता हूँ, क्योंकि मेरे तेज एवं प्रेरणा से ही तो ज्ञान का अर्जन कर

सकीं, ये इन्द्रियाँ। हे पार्थ ! मैं ही दसों इन्द्रियों रूपी घोड़ों के, इस शरीर रूपी रथ का सारथी हूँ। मेरी ही दोनों प्रकृतियां हैं, अपरा प्रकृति भी मैं हूँ ! परा प्रकृति भी मैं, आत्मा कृष्ण, तेरा सखा, सृजक हूँ !

हे अर्जुन ! इन इन्द्रियों के खेल को स्वप्न मात्र जान। यह भ्रम है, मिथ्या है !! सपने की नाईं है। इससे इस दस इन्द्रियों रूपी दस फन वाले भ्रामक, हिंसक, विषाक्त कालियानाग को 'नथ'।

भक्तजन ! यहाँ मैं आपको एक स्वप्न की कथा सुनाना चाहूंगा। स्वप्न जो देखा, मैंने एक रात्रि में।

क्या देखता हूँ मैं स्वप्न में कि, राजा बन गया हूँ। सुन्दर वस्त्राभूषणों से अलंकृत है शरीर मेरा। सुन्दर अश्व पर सवार हूँ। असंख्यों योद्धाओं की सेना मेरा जय-जयकार करती मेरा अनुसरण कर रही है। शत्रु राजाओं पर चढ़ाई कर रखी है मैंनें।

खटा-खट ! खटा-खट !! घोड़ों की टापों की आवाज सुन रहा हूँ, घोड़े की पीठ पर उसी प्रकार उछल रहा हूँ जैसे कि सवारों को उछलते हुए देखा था। अरे !! मुझे घोड़ा दौड़ाना भी आता है और मुझे आज तक पता ही नहीं था ! आश्चर्यचकित हूँ मैं। नहीं जानता हूँ कि स्वप्न देख रहा हूँ। सब सत्य जान पड़ता है। एक क्षण को भी तो लगता नहीं है कि स्वप्न देख रहा हूँ। घोड़े सरपट दौड़ रहे हैं। मेरी जयकार गूंज रही है। इतनी शक्ति है मेरे हाथों में कि तलवार हिलाता भर हूँ, किसी को छूती नहीं है और शत्रुओं के किलों की बुर्जियां कट-कट कर गिरती जा रही हैं। अरे वाह !! कितना शक्तिशाली हूँ मैं ! देखो आज तक मुझे अपनी शक्ति का ज्ञान ही नहीं था ! ऐसा सोचता हूँ !! तभी जोर की ऐड़ लगाता हूँ और घोड़ा हवा में उड़ने लगता है। मेरे शत्रु परास्त होते जा रहे हैं। मेरी जीत हो रही है। तभी आँख खुल जाती है।

सब स्वप्न था। रात के दो बज रहे हैं। घोर स्तब्धता छायी हुई है। कहीं जयकार का शोर नहीं है। सन्नाटा और अन्धकार है। रात्रि

गहन अन्धकार को चीरती मस्त झूमती बढ़ती जा रही है नूतन प्रभात की ओर। उठ कर पानी पीता हूँ। कितना अच्छा स्वप्न था। मन ही मन प्रसन्न होता हूँ, पुनः लेटता हूँ और धीरे-धीरे गहरी खुमारी नींद की शक्ल में बदल जाती है। पुनः स्वप्न देखने लगता हूँ, एक ही रात्रि का दूसरा स्वप्न।

भाग रहा हूँ मैं ! लोग मेरे पीछे भाग रहे हैं। चोरी की है मैंने। क्या चुराया है नहीं मालूम, बेतहाशा भागा चला जा रहा हूँ। बुरी तरह थक गया हूँ। दम फूल रहा है। नसें फटने को हैं। एक-एक मन के पांव हो रहे हैं। कनपटियां सांय-सांय कर रही हैं। सांस नहीं ले पा रहा हूँ। तेज भागा नहीं जा रहा है। आह ! क्या करूं ? क्या ये लोग मुझे पकड़ लेंगे ? भयभीत हूं।

तभी स्मरण होता है कि मैं तो अदृश्य भी हो सकता हूँ। मुझे तो यह सिद्धि प्राप्त है। क्यों न गायब हो जाऊँ। ये लोग देख ही न पावेंगे। मैं कामना करता हूँ कि मैं अदृश्य हो गया हूँ, एवं मान लेता हूँ कि मैं अदृश्य हो गया हूँ। परन्तु तभी लोगों की आवाजें आती हैं "अरे ! वह रहा !! पकड़ो ! पकड़ो !!" अरे ! मैं तो गायब भी नहीं हो सकता हूँ ! लगता है चोरी के कारण यह शक्ति प्रभु ने छीन ली। फिर भाग रहा हूँ। भाग रहा हूँ ! भाग नहीं पा रहा हूँ। 'चलो ! हवा में उड़ जाऊँ', सोचता हूँ, बाहें फैलाता हूँ और हवा में उड़ने लगता हूँ। तभी ध्यान आता है कि ज्यादा ऊंचा नहीं उड़ पा रहा हूँ, लोग पैरों से पकड़ कर नीचे खींच लेंगे। इस विचार के आते ही पुनः धम से पृथ्वी पर आ गिरता हूँ। लीजिये, अब उड़ भी नहीं सकता हूँ। पुनः दौड़ रहा हूँ। भयंकर पीड़ा हो रही है। अकथनीय कष्ट है। दौड़ा चला जा रहा हूँ, पीछा निरन्तर जारी है। खिचे हुए चेहरे ; बढ़ते हुये हाथ। कांप रहा हूँ मन ही मन ! भयभीत हूँ ! व्याकुल हूँ !! थक कर चूर-चूर हो चुका हूँ। आँखें बाहर निकली पड़ रही हैं; साँस फूल रही है। दीवार सामने आ रही है। गली बन्द है। पीछा लोग कर रहे हैं। सोचता हूँ दीवार के आर-पार निकल जाऊंगा। दीवार पुनः जुड़ जावेगी ये लोग हाथ मलते रह जावेंगे।

अभी दीवार छू भी नहीं पाता हूँ कि एक जोड़ी हाथ थाम लेते हैं मुझको। कलेजा धक से रह जाता है। फिर अनेकों हाथ थाम लेते हैं, घसीट कर लिये जा रहे हैं वे मुझे। भयभीत हूँ ! व्याकुल हूँ !! आर्त हूँ !!! कभी सोचता हूँ चूहा बन कर भाग निकलूँ, चिड़िया बन कर उड़ जाऊं। कुछ कर पाता नहीं हूँ। एक भयानक किस्म के व्यक्ति के सामने लाया जाता हूँ। उसकी बड़ी-बड़ी मूंछे हैं, आंखें लाल-लाल हैं। एक पत्थर पर बैठा हुआ है, बहुत से उसी प्रकार के लोग हाथ जोड़े खड़े हैं, एक बड़ा मशाल जल रहा है। मैं थर-थर कांप रहा हूँ।

"इसने चोरी की है ! इसका दाहिना हाथ काटकर जला दो !"— वह गुर्रा कर कहता है।

मैं बोलना चाहता हूं पर वाणी अवरुद्ध है, गले में सुइयाँ सी गड़ रही हैं। भयंकर कपकपी चल रही है। चीखना चाहता हूं चीख नहीं पाता हूं। बहुत दुखी हूं कि हाथ कटा जब पड़ोसी देखेगा, तो जानेगा कि मैं चोर हूं। उफ !! कितनी अपमानजनक स्थिति होगी। हाथ कटने का दुख नहीं है, चोर बनने का दुख अति भारी है। रो रहा हूं, हिचकियाँ बँध गईं हैं। अभी तक मालूम नहीं कि चुराया क्या है ? घसीट कर लिये जा रहे हैं वे लोग, मुझे कसाई सामने दीख रहा है। कितना भयानक चेहरा है उसका, कितना पैना गड़ासा है उसके हाथ में ! खींच कर हाथ वेदी पर रख लेता है और प्रहार करता है। चीख उठता हूं मैं ! नींद खुल जाती है। पहले टटोल कर हाथ देखता हूं तो ध्यान आता है कि तू स्वप्न देख रहा था।

तभी मन में एक विचार उठता है कि अरे ! स्वप्न में तो तुझे एक क्षण को भी लगता नहीं है कि तू स्वप्न देख रहा है, तो कहीं ऐसा तो नहीं कि जो कुछ तू देख रहा है वह भी मिथ्या स्वप्न मात्र ही हो ? स्वप्न में तू थक गया था, दम फूल रहा था, जबकि सत्य यह था कि तू कुछ कर नही रहा था, आराम से सो रहा था। सब कुछ सत्य के जैसा ही था। एक क्षण को भी तुझे सन्देह हुआ नहीं। तब कहीं यह भी मात्र स्वप्न तो

नहीं कि मैं आप सब भक्त समुदाय को 'सनातन दर्शन की पृष्ठभूमि' सुना रहा हूं। स्वप्न में आभास ही नहीं होता कि मैं स्वप्न देख रहा हूं !

लगता है बात कुछ ऐसी ही है। नन्हा सा स्वरूप था मेरा ! किसी का घर खुशियों से झूम उठा था। बालक का जन्म हुआ है। लोग बधाइयाँ दे रहे थे। घर के लोग फूले नहीं समा रहे थे। बढ़ते काल के साथ बढ़ता रहा मैं। घुटनों चला, मार खाई, ज्ञान लिया, डिग्रियाँ बटोरी और वकील हो गया। किसी को पछाड़ दिया, तो किसी ने पछाड़ दिया मुझको ! किसी के लिये लुटा दिया स्वयं को, तो कोई मुझ पर सर्वस्व न्योछावर कर बैठा। किसी को मैंने अपमान दिया, तो किसी ने मुझे अपमानित किया। किसी का भगवान बना, तो कोई भगवान बन बैठा मेरे लिये। जिन्दगी की गाड़ी यूँ रफ्ता-रफ्ता चलती रही। एक पत्नी आई। सन्तानों का सन्मुख हुआ। एक मकान बना फिर उसकी एक मंजिल पड़ी। लड़कों के लड़के हुये। काल बढ़ता रहा। जीवन की गाड़ी चलती रही। ऐसे ही समय में मैं एक दिन अपने आंगन में बैठा पौत्र को खिला रहा था—खाँसी की एक धसक उठी। फिर गर्दन जो झुकी तो झुकती ही चली गई। साँस लौटी नहीं; दिल धड़का नहीं; बन्द पलकें नहीं मालूम खुलीं या नहीं ! अन्धकार था गहन ! छटने लगा अन्धकार धीरे-धीरे; खुलने लगी आँख तो देखा नन्हा सा स्वरूप है मेरा। पड़ोसी के घर जन्म हुआ है। अभी एक वृद्धा ने मुझे गोद में लेकर चूमा है और दूसरी वृद्धा से कहा है, "बहन ! पौत्र तो तुम्हारा अति सुन्दर है, साक्षात् कन्हाई है।"

अरे ! यह मूर्ख स्त्री जानती नहीं कि मैं पति हूं इसका ? यह क्यों विधवा का स्वांग भरे है ? क्यों पहचानती नहीं यह मुझको ? क्या भूल गई यह कि मैं ही तो इसे व्याह कर लाया था ? इसके लिये क्या नहीं किया मैंने ? इसकी खुशियों पर ही तो नर्तक बना जिया था मैं ! अब यह पहचानती भी नहीं है। अरे ! तो क्या यह सब स्वप्न था ? क्या यह मेरी स्वप्न में पत्नी थी ? सन्तानें स्वप्न मात्र थीं ? मकान, नौकर, चाकर, वाहन आदि क्या स्वप्न में बटोरे थे मैंने ? सोंच रहा हूं मैं ! एक नन्हें बालक के रूप में ! लुट चुकीं डिग्रियाँ ! लुट गया है ज्ञान !! लुट गये हैं

स्वजन सब, न कहीं मकान है न दुकान है !! सब स्वप्न था जो भटका फिरा, रोता फिरा, हँसता फिरा। सब स्वप्न था, सब भ्रम था ! सारथि हटा और रात हुई ! रात छटी सारथि का संग मिला; सुबह हुई स्वरूप नया ! अजनबी बना जग सारा; अजनबी बना मैं जग के लिये ! पुराना स्वप्न लुटा; नया देखने लगा हूँ मैं !!

पुनः घुटने-घुटने चल रहा हूँ। स्कूल मास्टरों के डन्डों को खा रहा हूँ। पिछला सब बिसर गया है। स्वयं को भी बहिर्मखी होने से भूलता जा रहा हूँ ! हँसती-मुस्कराती, रोती-सिसकती, इठलाती, झिलमिलाती, भयभीत-कँपकपाँती, कभी हर्षित कभी उदास, कभी जीतती कभी हारती, जीवन की गाड़ी बढ़ती जा रही है ! समय फिसलता जा रहा है !! इसका गन्तव्य क्या है जानता नहीं हूँ; इसका मात्र लक्ष्य क्या है, नहीं जानता हूँ ! जानना चाह कर भी नहीं जान पा रहा हूँ। बाहर तम गहन है, अति गहन है। कितना अन्धकार है कि स्वयं को ही नहीं देख पा रहा हूँ। हाथ को हाथ नहीं सुझाई देता है। मुझे मेरा कन्हाई भी नहीं दिखता है। स्वयं को न जानता हुआ अन्तर्नेत्र से हीन एक अन्धे की भाँति भटक रहा हूँ इस माया-सागर में ! अब प्रोफेसर हो गया हूं ! बहिर्मुखी ज्ञान ने गणितज्ञ बना दिया है ! परन्तु अन्धी आँखें देख नहीं पा रही हैं अपने कन्हाई को ! ढूंढ़ता हूँ उसे कभी यहाँ, कभी वहाँ ! ज्ञान-गंगा की लहरों में तैरता, डुबकी मारता खोज रहा हूँ मैं ! मिलता नहीं है वह! एक डुबकी गहरी, अति गहरी ! बाहर आता हूँ ! अरे यह क्या ? पुनः नन्हा सा बालक बन गया हूँ ! लगता है डूब गया हूँ। डुबा दिया गया हूँ अपनी भ्रान्तियों, लिप्साओं के द्वारा !!

लुटा के सब कुछ पुनः घुटने-घुटने चल रहा हूँ। कभी डाक्टर; कभी भिखारी ! एक स्वप्न मिटा, तो दूसरा स्वप्न जारी है। गहन अंधकार में मायाओं के भटक रहा हूँ मैं—स्वयं को खोजता हुआ ! स्वयं को ही नहीं ढूंढ़ पा रहा हूँ ! कितना गहन अन्धकार है, उस मेरे कन्हाई के बिना !! सिंह शावक भटक गया है ! शेर बच्चा है परन्तु माता से भटक

कर भयभीत हिरण की भाँति मार्ग ढूंढ़ रहा है और माया का खेल देखो कि हिरण भी उसे देखकर अपने सींगों से उसे मारने दौड़ता है !

भक्तजन ! देखता हूँ कि इतना स्पष्ट तथ्य भी बुद्धि अर्जुन समझ नहीं पा रहा है, आत्मा कृष्ण से ! सम्पूर्ण जगत मिथ्या है, स्वप्न मात्र है उस कृष्ण के बिना ! यह स्वप्न आरम्भ होता है जब कृष्ण आत्मा इस रथ पर आते हैं, यही है सूर्योदय और इसका सूर्यास्त है सारथि का रथ से हट जाना । यह सूर्योदय और सूर्यास्त कहाँ हुआ ? जहाँ सहस्त्रों सूर्यों से भी अधिक प्रकाशवान सूर्य कृष्ण थे ! इसीलिये तत्व-ज्ञानी इस आत्मारूपी दिन को ही देखता है, तो उसका दिन अन्दर है, बाहर नहीं ! सकामी भक्तजनों का दिन बाहर है, उन्हें तो बन्द आँखों में अन्धकार के अतिरिक्त कुछ भासता नहीं है । तो जहाँ तत्व-ज्ञानी का दिन है, वहाँ सकामी की रात्रि है, तथा जिस दिन को सकामी भजता है, वहाँ तत्वज्ञानी गहन रात्रि मानता है !

दूसरा विचार उस स्वप्न से जो मन में उठा, वह यह था कि चोरी की, तो उसने कहा था, हाथ काटकर जला दो ! अरे ! तो अब कौन सा महापाप करता हूँ कि सशरीर जला दिया जाता हूँ ! छिन जाता है सम्पूर्ण अर्जन और बदल जाता हूँ चन्द मुट्ठी राख में ! स्वजन नहीं ! धन बैभव नहीं ! ज्ञान नहीं ! अरे ! चौंकता क्यों नहीं रे भक्त ! कि गीता और रामायण का ज्ञान भी छीन लेता है । क्यों ? क्यों मुझे ठोकर मार कर वह चिता पर कहता है कि रे नीच ! तू इस योग्य भी नहीं कि इन पवित्र पुस्तकों का ज्ञान भी धारण कर सके ! तू शूद्र से भी शूद्र है, पशु से भी पशु है । इस ज्ञान का, मेरे नाम का भी अधिकारी नहीं हैं रे ढोंगी !! कौन सा था महापाप कि इतना अधिक रूठ गया कन्हाई ?

What was that mission I was supposed to take and have not taken, therefore, being punished by the last capital punishment I am deprived of everything including the knowledge of the name of Lord Krishna.

कौन सा लक्ष्य था जो न ले सका तो इतनी भयंकर सजा पुनः पुनः पाता हूँ ! स्वप्न से स्वप्न तक भटकता रहता हूँ । जन्म-जन्मांतरों में भी इस स्वप्न से जागृति होती नहीं है ! वह लक्ष्य है मोक्ष ! अहं ब्रह्मास्मि !! जो स्वयं आत्मा कृष्ण दिखाते हैं, बुद्धि अर्जुन को–

"मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ।"

पुनर्जन्म न हो तेरा, ऐसा मार्ग हे अर्जुन ! मैं तुझे दिखा रहा हूँ ! इस इन्द्र के माया जाल से निकल, अन्तर्मुखी हो और ब्रह्म के सूक्ष्मज्ञान को अर्न्तमार्ग से ग्रहण करके ब्रह्मज्ञानी हो तथा उसी मार्ग पर चलता हुआ ब्रह्मर्षि के महान पद, मोक्ष पद, को प्राप्त हो । यज्ञोपवीत के तीसरे सूत्र के के रहस्यों को जानकर स्वयं यज्ञेश्वर हो, अर्थात् तू स्वयं भस्मी को स्वरूप देने में सक्षम हो, तो गर्भ का आश्रय न लेना पड़े तुझे । गर्भ में जावे नहीं पुनः पुनः तो ज्ञान नष्ट न हो तेरा ! भस्मी को स्वरूप दे और योगमाया से प्रविष्ट हो जावे, ऐसा ज्ञान तो मात्र मैं आत्मा कृष्ण ही दे सकता हूँ । यज्ञ के रहस्य को जाने बिना तू कदापि अमर नहीं हो सकता । मेरे (आत्मा) अतिरिक्त कोई भी तुझे यह मोक्ष मार्ग दिखाने में समर्थ नहीं है । ब्रह्म, देव आदि पुनरावर्ती प्रकृति के हैं । मैं ही सनातन हूँ ! नित्य हूँ !! नित्य सनातन ज्ञान तू मुझ आत्मा कृष्ण सनातन से ही प्राप्त कर सकता है । इच्छाधारी स्वरूप, ब्रह्म के रहस्य को जाने बिना प्राप्त होना असम्भव है । उसे मैं सर्वेश्वर कृष्ण तुझे स्वयं बता रहा हूँ क्योंकि तू मेरा अतिशय प्रिय सखा है ! हे अर्जुन ! यह अमर ज्ञान तुझे इसीलिये दे रहा हूँ कि जो मैं हूँ वही हो जावे तू ।"

तभी इन्द्र ने पुनः पुकारा, "हे अर्जुन ! इस छलिया की बातों में मत आ ! यह वाक्पटु है !! इसकी नीति बड़ी गहन है । यह झूठ को सच और सच को झूठ बना देता है । इसके कहने में आकर जो स्पष्ट दिखाई पड़ता है, उसे झूठ मानकर तथा जिसकी झलक मात्र भी दिखती नहीं, उसे सत्य मानेगा तो तुझसे बड़ा मूर्ख और कौन होगा धरा पर ? यह बार-बार तुझे माया-महासमर महाभारत की सुधि दिलाता है । छल कर रहा

है। अरे ! कहाँ हैं सेनाओं के समूह ? कहाँ हैं कौरव ? देख ! सामने कोमलांगी अप्सरा सी सुन्दर पत्नी तेरी !! तेरे आलिंगन को आतुर है ! लाज से उसकी मृगनयनी आँखें झुकी हुई हैं ! आंचल पुनः पुनः ढलक जाता है ! यह स्वर्ग का सुख तुझे मैं इन्द्र ही तो दिला सकता हूँ ! ये नाना प्रकार के भोग ; ये अनुचरों के समूह ! गाती-नाचती किन्नरियाँ! ! सुन्दरियों के कोमल, सुवासित शरीर !! अट्टालिकाओं के गगन-चुम्बी समूह !! रोम-रोम झूमने लगे और उन्मुक्तता, मादकतादायनी सुरा !! सब तेरे लिये हैं ! इस स्वर्ग को त्यागकर युद्ध की वीभत्स धारणा को क्यों ध्यान में लाता है तू ? भोग इनको !! एक-एक क्षण तेरे जीवन का आनन्दमयी हो, यही परम अभिलाषा है मेरी।"

"नहीं ! अर्जुन नहीं !! यह मिथ्या है ! भ्रम है ! इन्द्रजाल है ! मेरे अतिरिक्त तू भोगता किसे है ? सोच, जिस सुन्दरी को तू भोगने जा रहा है, क्या वस्तुतः तू उसे भोग रहा है ? यदि तू नपुंसक हो जावे तो क्या भोग सकेगा उस सुन्दरी को ? तो तूने भोगा किसे ? स्वयं अपनी इन्द्रिय का ही सुख उठाया न ! अर्थात् स्वयं को भोगा ! यह इन्द्रिय चली किससे ? मेरे तेज से ही ! तो बता तूने भोगा किसे ? अरे ! मूर्ख मत बन ! तूने स्वयं की इन्द्रियों का आनन्द उठाया, उस सुन्दरी ने भी स्वयं अपनी ही इन्द्रियों का आनन्द लिया। दोनों ने स्वयं को भोगा, एक दूसरे के लिये यन्त्र मात्र होकर, तो भोगा किसको ? स्वयं अपनी आत्मा को ही। इस प्रकार जब तेरी लिप्सा रूपी अप्सरा कामुक हो उठती है तो तुझे नारी सुन्दर और कामुक लगने लगती है । इस अप्सरा (लिप्सा) द्वारा ठगा हुआ तू मान बैठता है कि तू उस अप्सरा को भोग रहा है जबकि तू भोगता पुनः मुझे ही है। इस इन्द्रजाल को पहचान, अर्जुन ! यह इन्द्र धूर्त है ! महाधूर्त है !!"

"मुझ सर्वानन्द आत्मा के अतिरिक्त आनन्द कहाँ है ? सोच ! गीत एक गायिका सुना रही है, उसके मृदंग की मधुर झन्कार, सुरीली वाणी और भावपूर्ण गीत सुनकर तू मान बैठता है कि वह बहुत आनन्द दे रही है

तुझको ! तभी अनुचर एक पत्र थमाता है। जिसमें तेरे अतिशय प्रिय की अकाल मृत्यु की सूचना है। छाती फटने को है ! दुख महा भारी है !! परन्तु इन सबसे अनभिज्ञ रूपसी का गायन निरन्तर है। परन्तु अब तुझे गीत का आनन्द मिलता नहीं है। तो बता आनन्द कहाँ था ? रूपसी के गीत में यदि आनन्द होता, तो वह तो अब भी दुर्घटना से अनभिज्ञ गा रही है। स्पष्ट है कि आनन्द तेरे भीतर था जिसे दुर्घटना की सूचना ने ध्वस्त कर दिया। इस प्रकार तू भीतर के आनन्द को भोगता हुआ इन्द्र-जाल में फंसा मान बैठा कि अमुक गीत में आनन्द है। पुनः तेरी लिप्सा रूपी अप्सरा तुझे ठगती है बहिर्मखी करके, जबकि भोग तू मुझ आत्मा ही को रहा है।"

"अब मिष्ठान का स्वाद भी नहीं मिल रहा था। भोजन गले से उतर नहीं रहा था। मिठास नहीं है मिष्ठान में, तो बता स्वाद कहाँ था ? क्या भोजन को दुर्घटना का ज्ञान है ? क्यों मर गई मिठास इनकी ? कहाँ थी मिठास इनकी ? तेरे भीतर ही तो कुछ खण्डित हुआ था सूचना से। नाना-प्रकार के भोग क्यों स्वाद हीन हो गये ? तो बता मेरा ही स्वाद लेता हुआ लिप्सा रूपी अप्सराओं के द्वारा ठगा नहीं जा रहा ? सुन्दर अट्टालिका क्यों फीकी पड़ गई, क्या दीवालों ने पत्र पढ़ लिया ? यह ढोंगी इन्द्र अपनी अप्सराओं के द्वारा तुझे आत्म-द्रोही बना रहा है। इसका स्वर्ग मात्र ढकोसला है ! भ्रम है !!"

"हे अर्जुन ! सम्पूर्ण भोगों का भोग मैं आत्मा कृष्ण हूँ ! सम्पूर्ण इन्द्रियों का सुख भी मुझको जान ! सारे ब्रह्माण्डों का आनन्द भी मुझ सर्वानन्द कृष्ण को अपने अन्तर में स्थापित देख ! जब तक मैं सारथि इस रथ पर हूँ यह सम्पूर्ण जगत तुझे दृश्य है ! प्राप्त है !! इसलिये सम्पूर्ण विश्व, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड तेरे लिये मैं मात्र आत्मा कृष्ण हूँ ! महानों का महान मैं हूँ ! विशालों का विशाल मैं हूँ !! सुखों का महासुख मैं हूँ !! जो कुछ भी दीखता है, भासता है सो मुझको जान मेरे अतिरिक्त इस सम्पूर्ण चराचर में कुछ नहीं है। क्योंकि मुझ से तेरा अस्तित्व है, मुझको प्राप्त हो

तो सम्पूर्ण को सदा के लिये पाने का अधिकारी बने। आत्म-परायण हो!"

तो भक्तगण! मैंने संक्षेप में आपको श्रीमद्भगवत्गीता के कुछ अंश सुनाये, जिससे आप महात्माओं को मार्ग का आभास हो सके। आत्मा का मार्ग ही मोक्ष-मार्ग है। इंद्र का मार्ग दशानन मार्ग है। स्वर्गादिकों की प्राप्ति मरकर प्राप्त होने से, जीव को पुनः लौटकर इस भूतल पर जन्म लेना पड़ता है। परन्तु दशरथ-मार्ग में चिता का माध्यम नहीं है, उसमें कृष्ण के द्वारा, कृष्ण में ही, सब कुछ यज्ञ होता है, अर्थात् शरीर को आत्माकुण्ड में यज्ञ करके तेज में परिवर्तित करना पड़ता है। अभी मैं आपको दशानन-मार्ग का दर्शन सुनाऊंगा। यह दर्शन पृष्ठभूमि है, चिता मार्ग की।

द्वैत, बुद्धि और आत्मा का अद्वैत में परिवर्तित हो न सका। सारथि के पुनः-पुनः प्रेरित करने पर भी महारथी ने गाण्डीव नहीं उठाया। बीच महासमर में खड़ा, इंद्रजाल से मोहित, सुन्दरियों के स्वप्न देखता रहा। सारथि पुकारता रहा, गाण्डीव उठा नहीं। लाये थे कृष्ण महारथी को प्रेरणा से, कि मायाओं को निरस्त्र करके सम्पूर्ण को कृष्णवत् करेगा। इंद्र से मोहित अर्जुन काम उल्टा करने लगा। मायाओं को घटाने के बजाय नई-नई मायाओं का भार बढ़ाने लगा। पत्नी की माया, सन्तान की माया, मकान-दुकान की माया, ज्ञान के पाखण्ड की माया। समर गहन होता गया। रथ पर भारी आक्रमण होने लगा। कवच भंग हो गये और माया प्रविष्ट होने लगी। भ्रमित महारथी ने फिर न उठाया गाण्डीव!

Increased pressure of gravity resulted in increased and faster decay of body.

अरे अर्जुन! क्या कर रहा है? जाग! जाग!! इस मोह जाल से। माया प्रविष्ट होने लगी है। कवच भंग हो चुके हैं रथ के। क्षीर-सागर रथ का समाप्त होने वाला है।

आह! छला गया, अर्जुन न जागा! न जागा!! आग लगी

थी कपड़ों में अपने, पर नशा शराब का उसे मदहोश किये रहा। जल गया तन, तो भी भ्रमित न चेता, न चेता ! छोड़ दिया रथ सारथि ने, चल दिया ठोकर मारकर भ्रमित को ! अरे !! लुट गया ! बर्बाद हो गया अर्जुन !!

Gravity started penetrating in the body. Space was lost due to heavier decay. Soul left the body and there was intelligence arrested inside the dead body. Lord Krishna and Arjuna could not be made one. State immortal could not be acheived. Entire mission of life was destroyed.

देखो ! शरीर में राम-रावण युद्ध हुआ है ! बुद्धि दशानन बनकर आत्मा राम को ललकार बैठा था। क्यों न बना दशरथ ? राम त्याग गये हैं इसको। देखो अब क्या गति होती है इसकी। अरे ! आत्म-भक्त क्यों बन बैठा आत्म-द्रोही ?

भक्तजन ! अब प्रश्न उठा कि इस मृत शरीर का, इस खण्डित यज्ञहीन रथ का, क्या करें ? तो यहाँ पर विश्व के तीन विशिष्ट दर्शन हैं। एक दर्शन कहता है, दफना दो ! यह दर्शन है श्री बाईबिल एवं श्री कुरान का। दूसरा दर्शन कहता है, हिंसक पक्षियों को खिला दो। यह दर्शन है पारसी सम्प्रदाय का। अन्य कुछ सम्प्रदाय भी इसे मानते हैं तथा तीसरा दर्शन कहता है, इसे यज्ञ करना था, नहीं कर सका, तो यज्ञ कर दो ! यह दर्शन है सनातन का !

पूछा, जब उन दोनों सम्प्रदायों के धर्म गुरुओं से तथा खोजा उनकी पुस्तकों में, तो पता चला कि वे सम्प्रदाय पुनर्जन्म को नहीं मानते हैं। उनके मुताबिक यह सो रहा है, इसे कब्र में सुला दो। जब प्रलय हो जावेगी, सब नष्ट हो जावेगी सृष्टि; तो देवदूत आकर उन्हें पुकारेंगे और कब्रों में सोये मृत शरीर जागृत होकर पुनः नया खेल आरम्भ कर देंगे।

उनकी बात हमारी समझ में आती नहीं है। जो शरीर सोया है,

वहाँ वह कुछ समय बाद निश्चय ही गलकर मिट्टी हो जावेगा, तथा वृक्षों की जड़ों द्वारा खाद रूप में ग्रहण कर लिया जावेगा और वनस्पति के रूप में पुनर्जन्म को प्राप्त होगा, तथा पुनः-पुनः जन्म के चक्रों को प्राप्त होगा, तो प्रलय के बाद उसमें से निकलकर आवेगा कौन ? प्रकृति के नियम के विपरीत नियम को ईश्वरीय नियम कहना क्या स्वयं में एक दुस्साहस नहीं ? उस परमपिता परमेश्वर का उपहास नहीं ? जिसकी किताब लिखी है सम्पूर्ण प्रकृति में ! पत्ते-पत्ते पर ! !

इसी भ्रान्ति को लेकर बहुत से शहंशाहों ने गुलामों को जानवरों की तरह जोत-जोत कर पिरामिड बनवाये और ममी बनवाकर स्वयं सो गये । प्रलय भी नहीं आई और प्रलय से पहले ही खोदकर बाहर कर दिये गये । यह लिप्सा पुनःजन्म में आने की, किस प्रकार उन्हें बांधे रही, कौन जाने ?

पारसी सम्प्रदाय से पूछा तो उन्होंने कहा, कि यह शरीर किसी के काम आ सके, इसी भावना से प्रेरित होकर हमने टावर-आफ-पीस बनवाये हैं, वहीं रख देते हैं । हिंसक जीव नोच-नोच कर खा जाते हैं !

उनकी इस धारणा को भी हम सारहीन पाते हैं, क्योंकि उनसे कहीं अच्छी प्रतियोगिता इस शरीर की, हमारे पास है । यह शरीर चिता पर धुवें और भस्मी में बदल जावेगा । धुवां वनस्पति की सृष्टि में सहायक होगा, तथा भस्मी तुरन्त खाद में बदल जावेगी और उस वनस्पति की सृष्टि करेगी, जिससे इसकी सन्तानों का पेट भरेगा । यदि मरने वाले से हम पूछें तो वह यही कहेगा कि इन्ही सन्तानों की लिप्साओं के कारण ही तो मैं इस गति को प्राप्त हो रहा हूँ, मुझे इन्हीं की सेवा में ही लगाना तथा हिंसक पक्षियों को प्राप्त होकर, उनकी योनियों में नहीं भटकना चाहता हूँ मैं ! मैं अपनी सन्तानों द्वारा ग्रहण होकर पुनः इसी मनुष्य स्वरूप को ही प्राप्त होना चाहूँगा ! चलिये अब देखें सनातन क्या कहता है !

इन मायाओं के महासमर में जिस प्रकार यह मृत शरीर योद्धा था, उसी प्रकार योद्धा मैं भी हूँ। अन्तर केवल इतना है, कि इसका सारथि इसे तजकर चला गया है, क्षीरसागर शरीर का नष्ट हो गया, तथा यज्ञेश्वर सारथि के चले जाने से यज्ञहीन होकर रह गया है। अब विश्व के अन्य भी विद्वान एवं वैज्ञानिक समुदाय मानने लगे हैं कि शरीर में निश्चित द्वैत है। बुद्धि के अतिरिक्त ही कोई शक्ति है जो इसे चलाती है, यज्ञ करती है तथा इसका तेज चक्र (human aura) जागृत रखकर शरीर को सड़ने से बचाती है। बुद्धि, इन सबसे अनभिज्ञ है तथा मरने के उपरान्त सात घण्टे से सत्तरह घण्टे तक मस्तिष्क निरन्तर काम करता रहता है; अर्थात् उसके सोचने का क्रम बना रहता है, परन्तु उसके द्वारा सोचे गये किसी भी प्रकार के आदेश को शरीर का कोई भी कोश क्रियान्वित नहीं कर पाता है, क्योंकि क्षीरसागर (space) के नष्ट हो जाने के कारण इच्छा मात्र से चलने वाला नाजुक यन्त्र, माया (gravity) के दबाव में आने से, खिचाव एवं दबाव में पड़ जाने से, सूक्ष्म क्रियाओं को कर सकने में असमर्थ हो जाता है। सूक्ष्म क्रियायें ही प्रेरणा द्वारा भिन्न २ अंगों को चलायमान करती हैं; तथा सूक्ष्म प्रेरणा ही, अंगों के द्वारा कर्म कराती है तथा नियन्त्रण में रखती है। इसीलिये किसी भी बात को कहने अथवा करने के पूर्व, मेरे मस्तिष्क में सूक्ष्म क्रिया द्वारा अंग प्रेरित होता है, विचारों का पूरा प्रभाव शरीर पर पड़ता है। कसाई का चेहरा सख्त और डाक्टर का चेहरा मुलायम हो जाता है, क्योंकि दोनों पर कर्म के चिन्तन के अनुरूप प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार भक्तजन! इस मृत शरीर में बुद्धि अर्जुन कैद हो गया है। माया के भार के कारण उसकी इच्छाओं और प्रेरणाओं को तरंगित कर काम कराने की क्रियायें अस्त-व्यस्त हो चुकी हैं। माया महासमर में योद्धा सारथि को खोकर रथ भी तुड़वा बैठा है और फंसा हुआ है मलवे में रथ के, घायल! असहाय!! विचारों को सूक्ष्म रूप से भी क्रियान्वित कर सकने में असमर्थ है, क्योंकि माया-रहित क्षेत्र (space) में दौड़ने वाले तीव्रगामी तेज बिन्दु तथा सूक्ष्म स्नायु-तन्तु जरा सा दबाव पाकर पिचक जाते हैं! यह सनातन मत है!

पाश्चात्य विज्ञान अभी नित्य बदल रहा है। इस विषय में अभी उसका कोई विशिष्ट मत नहीं है। इसीलिये इस प्राचीनतम वैदिक मत को ही मस्तिष्क में धारण करें। पाश्चात्य विद्वान तो प्रेरणा के उपरान्त मस्तिष्क द्वारा की जाने वाली क्रियाओं को माप सकने में समर्थ हो सके हैं, कुछ हद तक। तथा मस्तिष्क में प्रेरणाओं के उपरान्त होने वाली चार क्रिया स्थितियों में विभक्त कर सके हैं, ई० ई० जी० (E. E. G.) के द्वारा। परन्तु यह बहुत ही स्थूल ज्ञान है, जो प्रेरणा के उपरान्त प्रतिक्रिया रूप हुये कर्म को माप सकता है न कि मस्तिष्क के द्वारा दी गई कर्म की प्रेरणा को। जबकि प्राचीनतम ज्ञान विश्व का जो सनातन वेद हैं, अति सूक्ष्म स्तर पर इसको स्पष्ट करता है। वेद के अनुसार शरीर की यज्ञहीन स्थिति हो जाने के कारण शरीर शीघ्र नये तेज बिन्दु उत्पन्न कर सकने में असमर्थ हो जाता है और पुराने तेज बिन्दु माया के अचानक प्रभाव में पड़ जाने के कारण नष्ट (decay) हो जाते हैं। इस प्रकार पुराना माध्यम मस्तिष्क का शरीर से तो नष्ट हो जाता है तथा नया माध्यम यज्ञहीन स्थिति में, अर्थात माया में आ जाने के कारण, शरीर का उत्पन्न हो नहीं पाता है तो अपने शरीर में ही यह बुद्धि अलग-थलग पड़ जाता है। इसके आदेश प्रसारित नहीं हो पाते हैं, जिससे स्थूल यन्त्र इसकी सही स्थिति को माप नहीं पाते हैं। आदेश पहुंचाने का माध्यम नष्ट हो जाने से शरीर क्रियाहीन हो उठता है और वैज्ञानिक उसे मृत घोषित कर देते हैं। इस विषय को अधिक विस्तार में यहाँ पर देना उचित न होगा, इसलिये हम अपनी कथा के साथ आगे बढ़ें ! आज नहीं तो कल आधुनिक वैज्ञानिक भी आपको यही कहानी सुनावेगा। यदि आवश्यक हुआ तो वैज्ञानिकों के हेतु अन्यत्र इसका विस्तार बता देंगे। परन्तु पहले इस देश के वैज्ञानिक को मानसिक रूप से देशी बनने तो दीजिये। अभी मुझे कोई बात इन्हें समझानी होगी, तो इंग्लैंड में जाकर उसका प्रचार करना पड़ेगा। तुरन्त सुन लेगा, यदि यहीं पर समझाने लगा तो भड़क उठेगा। अभी तो भारत सरकार को भी मानसिक रूप से स्वतन्त्र होना है। तभी आजादी का सुख उठा सकेंगे इस देश के जन-जन ! दिशाहीन, लक्ष्यहीन जाति को प्रगति का पथ मिलेगा !

क्यों चल नहीं रहा है यह रथ ? अरे ! क्यों खामोश है आवाज इसकी ? चोट नहीं लगी कुछ, टूटा नहीं और मर गया यह ? फँस गया है बुद्धि अर्जुन ! तड़पता है; संघर्ष करता है; निढाल होकर गिर पड़ता है ! स्वप्न में चलने लगता है। माध्यम नष्ट हो चुके हैं, नूतन सृष्टि हो नहीं सकती है, यज्ञेश्वर कृष्ण रथ त्याग कर चल दिये हैं। पुनः चौंकता है, तड़पता है, संघर्षमय हो उठता है, निढाल हो जाता है, स्वप्न देखने लगता है अतीत के ! माया का प्रभाव निरन्तर बढ़ता जाता है, शत्रुवाहिनी धीरे-धीरे सब कुछ निगलती जा रही है। संघर्ष की शक्ति भी घायल महारथी की घटती जा रही है; शीघ्र थकने लगा है। प्रतिरोध समाप्तप्राय हो रहे हैं। माया का प्रभाव निरन्तर बढ़ने से शरीर से दुर्गन्ध, विघटन की आने लगी है।

मैं जो उसी की तरह एक महारथी हूं इस माया महासमर का; महाभारत का; उसके पास जाता हूं और पूछता हूं उससे, "हे महारथी ! कैसे हुई तेरी यह गति ? क्या देख रहा हूं मैं, कि बीच महासमर में तेरा रथ खण्डित हो रहा है। मर गये हैं दसों घोड़े इसके ! मायाओं के पैने वाणों से इस रथ के कवच भंग हो रहे हैं (body is decaying very fast)। अरे ! तेरे रथ पर सारथि भी नहीं है ! क्यों रूठ गया तेरा कन्हैया ? तेरा गुरु क्यों छोड़ गया रथ को ? सम्पूर्ण सेना के बदले मांगा तूने एक माधव, सो भी तुझे छोड़ गया ! क्यों रे हत्भाग ! क्यों हुआ यह अनर्थ ? कैसा महासमर किया रे महारथी ! कि बीच समर में हुई तेरी यह गति ?"

उत्तर देता है महारथी बुद्धि खण्डित रथ का, "मत पूछ, महारथी कि क्या गुजरी ! एक ही रथ पर मेरा कन्हैया था; मैं था ! परन्तु दोनों एक दूसरे की ओर पीठ किये थे। विपरीत दिशाओं का चिन्तन कर रहे थे। आह ! एक ही रथ पर दोनों थे, फिर भी न दिखा, वह सहस्त्रों सूर्यों को तेज देने वाला माधव मेरा ! ऐसा छला ढोंगी इन्द्र ने कि मान बैठा कि यह रथ मेरे और इन्द्र के द्वारा चलता है ! हम पिता-पुत्र चला रहे हैं इसे !"

"अरे कुण्ड भी था ! पुजारी भी था ! सामग्री भी थी हवन के लिये। इन्द्र के द्वारा छला गया पुजारी मैं अर्जुन। दसों द्वारों से बाहर ही झांकता फिरा ! कुण्ड दिखा ही नहीं, तो सुधि आती कैसे यज्ञ की ? एक बार जो भीतर झाँक लेता, तो क्या यूँ निकल जाने देता मधुसूदन को !"

"अरे ! इस इन्द्रजाल ने मुझे कहीं का नहीं रखा ? कन्हैया के हटते ही यह पाखण्डी इन्द्र भी लोप हो गया है ! साँस चलती नहीं, दिल धड़कता नहीं ! अपने ही शरीर में स्वयं से तिरस्कृत, अभिशप्त, पड़ा हुआ हूँ मैं। आँख खुलती नहीं कि अपनी पत्नी को देख सकूँ, कान सुनते नहीं कि अपने लाड़लों की आवाज सुन सकूं, जबान बोलती नहीं कि अपने मन की व्यथा कह सकूं किसी से ! अरे देखो ! मेरा शरीर मुझसे गिन-गिन कर बदले ले रहा है ! क्यों जलाया मैंने इसे, इन्द्र की लिप्साओं में ! क्यों बढ़ाता गया मायाओं के प्रभाव मैं ! आज अपने शरीर में बन्धक बना हुआ हूँ ! त्यक्त हूँ शरीर के द्वारा मैं। अपने मन की व्यथा भी अपने शरीर को ही नहीं सुना पा रहा हूँ। मायाओं ने मेरे और शरीर के बीच के माध्यम भी नष्ट कर दिये हैं ! घुट रहा हूँ, तड़प रहा हूँ, सिसक रहा हूँ ! कौन सुने मुझ हतभाग की करुण कहानी ? इन्द्र की दुष्टता ! अच्छा स्वर्ग भोगा मैंने कि नर्क अति कष्टकारी भोग रहा हूँ !"

"हा ! बार-बार चेताया कृष्ण ने ! नहीं चेता तो नहीं ही चेता मैं ! देखो ! कितना गहन अन्धकार है, कुछ पड़ता नहीं दिखाई है। सुनो ! क्या सम्पूर्ण पृथ्वी अन्धकार में डूब गई है ? क्या सम्पूर्ण सूर्यदेव पृथ्वी से विमुख हो उठे हैं, अथवा एक कन्हैया के हटते ही उनके प्रकाशित होने का भ्रम मिट गया है ? उनका पाखण्ड भी खुल गया है। हा ! उसका तेज ही तो था, जिससे प्रकाशित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड थे ! कन्हैया के अतिरिक्त तेजस्वी कौन है ?"

"शोक को त्याग हे अभिशप्त महारथी ! तेरी लिप्सायें आज तुझे कहाँ ले आईं ? आज तेरी गति ठीक दशानन रावण जैसी है। बता मैं तेरे लिये क्या कर सकता हूँ ?" मैं पूछता हूँ।

"सुनो ! मैं अपँग हूँ, अस्सहाय हूँ। मेरा धनुवा भी खण्डित है, रथ चूर-चूर हो चुका है। तुम मुझे इस रथ से बाहर कर दो ! मैं ढूंढ़ के लाऊंगा, अपने कन्हैया को नये रथ पर ! अब न भटकूंगा मैं। मात्र कृष्ण का होकर युद्ध करूंगा। दूसरा कोई लक्ष्य न होगा मेरा ! मुझ पर कृपा करो ! दया करो ! !" वह विनती करता है !

"अरे महारथी ! यह क्या कह रहा है तू ? मैं तुझे रथ से बाहर कैसे कर दूं ? तू तो प्रतिज्ञा-द्रोही है; पापी है; आत्म-द्रोही है ! याद है न ! क्या शपथ, क्या प्रतिज्ञा ली थी तूने, सारथियों के सम्मुख ? क्या संकल्प लेकर उनके यज्ञ का फल लाया था तू, कि दूसरे यज्ञ के द्वारा बलिष्ठ शरीर में तथा तीसरे यज्ञ के द्वारा शरीररूपी सामग्री को आत्मा-रूपी हवनकुण्ड में यज्ञ करके सम्पूर्ण को तेज में परिवर्तित करूंगा ! रे चोर ! बता क्या किया तूने तीसरा यज्ञ ? आज वही सामग्री रूपी शरीर तुझसे गिन-गिन कर बदला ले रहा है, तो क्या पाप तेरे नहीं हैं ?"

"हे महारथी ! मैं तुझे इस रथ से बाहर करने में समर्थ नहीं हूँ। यदि मैं तुझे आज रथ से बाहर कर दूं, तो वे सारथी, जिनके यज्ञ का फल खाया है तूने, मुझे ललकारेंगे और पूछेंगे कि क्यों रे पापी ? कैसे बाहर निकाला तूने हमारे चोर को, प्रतिज्ञा-द्रोही को ? तो बता, मैं क्या उत्तर दूंगा ? उनके द्वारा ललकारा जाने पर; अरे ! मैं तो अकेला अभिमन्यु की भाँति घिरकर मारा जाऊंगा। इसलिये हे मित्र ! मैं तुझे रथ से बाहर कर सकता नहीं हूँ। यह पाप मुझसे हो सकेगा नहीं !'

"दे मत दुहाई अपने दान धर्म की, हे महारथी ! देख ! वह पड़ा है धूल-धूसरित शव दानवीर कर्ण का, इस मायासमर में। छाती में धँसा है बाण और ठोकरें खा रहा है घोड़ों के टापों की ! अकेले दान से मोक्ष मिलता नहीं है।"

"दे मत दुहाई महात्मापने की। देख वह लेटा है, महात्मा भीष्म बाणों की शैय्या पर। मोक्ष पा सका नहीं है !"

"दे मत दुहाई तप की एवं ब्रह्म तेज की ! कटा सिर द्रोणाचार्य का लुढ़क रहा है, बीच महासमर में। मोक्ष उसने भी पाया नहीं है !"

"अरे अर्जुन ! तू कर्ण सा दानवीर नहीं; भीष्म सा महात्मा नहीं, द्रोणाचार्य सा ब्रह्मतेजस्वी, तपस्वी नहीं, तो बता तुझे रथ से बाहर करूं कैसे? अरे ! इस महासमर को तो वही जीत सका, जो कृष्ण का और मात्र आत्मा कृष्ण का हो गया। सो कृष्ण भी तुझे धिक्कार कर चल दिया है, तो बता तुझे रथ से बाहर करूं कैसे ? जो कृष्ण का नहीं, वह आत्मद्रोही किसी का नहीं। जिसे ठुकरा दिया है माधव ने, उसका अब भला कर सकता कौन है ?"

"दुख है मित्र ! तुझे बाहर न कर सकूंगा ! तूने इन्द्र का संग कर दशानन मार्ग का अनुसरण किया है, उसे भोग ! मैं दशरथ मार्गी हूँ। मैं चलता हूँ।" ऐसा कह मैं आगे बढ़ने लगता हूँ।

"ठहरो !" पुकार उठता है अर्जुन।

"सत्य है मैं पापी हूँ ! कृष्ण द्रोही हूँ !! परन्तु तुम मुझे इस प्रकार युद्ध के मैदान में असहाय, अपंग, शस्त्र-हीन रथ एवं सारथि-विहीन' शत्रुवाहिनी द्वारा नष्ट होने को छोड़ कर चले जाओगे तो क्या योद्धा का धर्म कलंकित नहीं होगा ? क्या तुम तब पापी नहीं होगे ?"

रुक जाता हूँ मैं !

"हे अर्जुन ! मैं तो धर्म संकट में फंस गया हूँ। यदि तुझे रथ से बाहर करता हूँ तो नाना आत्माओं का द्रोही हूँ। आत्मद्रोही होने से महा-पापी हूँ। स्वयं अपने ही सारथियों द्वारा घिरकर मारा जाता हूँ एवं नाना पाप योनियों को प्राप्त होता हूँ !"

"यदि तुझे रथ से बाहर न करुं तो भी मैं पापी हूँ क्योंकि योद्धा का धर्म कलंकित होता है। तू मेरा ही महारथी है। मेरे जैसा ही महारथी है। इस असहाय अवस्था में तुझे शत्रु मायाओं के बीच निहत्था छोड़कर

जाने से मैं महापातकी होता हूँ । बता क्या करूं ? अहो ! कौन सा उपाय करूं कि पाप का भागी न बनूं ।"

"सुन रे महारथी ! तू दौड़कर जा उन सारथियों के पास जिनका फल खाया मैंने ! उनसे कहना अर्जुन भटक गया था, इन्द्र के द्वारा ठगा गया था । एक ही रथ पर माधव भी थे, अर्जुन भी था, पर मिलन न हो सका । कुण्ड भी था, पुजारी था, पर मायावी इन्द्र से छला गया ऐसा, कि कुण्ड दिखा ही नहीं । देखता तो क्या यज्ञ की सुधि न आती उसको ? उसके दृश्य मात्र से ही इन्द्र का पाखण्ड छिन्न-भिन्न हो जाता, जैसे सूर्यदेव के प्रकट होते ही तिमिर नष्ट हो जाता है । कहना उनसे कि महारथी माया में फंसकर समर कर सका ही नहीं । धर्म के नाम पर, योद्धा के धर्म को नये-नये स्वान्तः लिप्सा हिताय धर्म बनाता रहा और तर्क के द्वारा स्वयं को ही अन्धा बनाता रहा यह आत्मद्रोही ! सागर सनातन को भूलकर, सम्प्रदायों के मैले बदबूदार पोखरों में नहाता रहा । मन-भावन लिप्साओं के पूरक सिद्धान्तों वाले सम्प्रदायों एवं साम्प्रदायिक गुरुओं के कथन ही सुहाते रहे इसको ! भटक गया ! भटक गया बुरी तरह महारथी तुम्हारा ! गुरु के नाम पर आत्मा को भूल नाना गुरुओं को भजता रहा; और जो उसे जीवन दे रहा था, जो उसके लिये निरन्तर यज्ञ कर रहा था, उस महाप्रभु कृष्ण आत्मा का द्रोही बन बैठा ! जिस मार्ग पर गये वह साम्प्रदायिक गुरु उसी मार्ग पर खड़ा है आज महारथी अर्जुन तुम्हारा ! सड़ रहा है शरीर उसका; दुर्गन्ध आने लगी है ।"

"उनसे कहना ! महारथी क्षमादान चाहता है । दया की भीख मांगता है । एक बार उसे, सिर्फ एक बार; एक अवसर और दो ! इस बार न चूकेगा महारथी । एक कृष्ण का होकर; मात्र कन्हैया का ही होकर; वह भयंकर संग्राम करेगा । उसके पैने बाणों से सम्पूर्ण मायायें त्रस्त होंगी ! कुण्ठित होंगी !! नष्ट होंगी !!! और सम्पूर्ण मायाओं को जीतकर अर्जुन क्षीरसागर भजेगा, कृष्णवत होकर ! स्वयं कृष्ण होकर !! वह मोक्ष को प्राप्त होगा !!! केवल एक अवसर और प्रदान करो ।"

"अर्जुन ! मैं ऐसा ही करूंगा !!" मैं जाता हूँ । ऐसा कर मैं जाने लगता हूँ तो वह पुनः पुकार उठता है, "देखो ! जल्दी जाना ! जल्दी आना ! मायाओं के तीव्र प्रहारों से रथ बुरी तरह ध्वस्त हो रहा है, अधिक समय तक इस रथ में मेरी रक्षा न हो सकेगी ।"

दौड़ कर जाता हूँ मैं उन वृक्षों के पास, जिनका फल खाया था इस महारथी ने और पुकार कर कहता हूँ "हे सारथियों ! तुमने इस माया महासमर में मायाओं को निरस्त्र करते हुए निरन्तर यज्ञ किये जिनका अंश सामग्री रूप ले गया था अर्जुन "वह" ! इस संकल्प और प्रतिज्ञा के साथ कि दूसरे यज्ञ के द्वारा वह इसे बलिष्ठ शरीर में तथा तीसरे यज्ञ के द्वारा सम्पूर्ण को आतमा हवनकुण्ड में यज्ञ करेगा । "वह" महारथी कर नहीं सका ऐसा ! छला गया, मायाओं के द्वारा..."तदन्तर पूरी प्रार्थना महारथी की अक्षरशः सुनाकर उपरान्त कहता हूँ"—क्या तुम मुझे आदेश दोगे कि मैं उसे रथ से बाहर कर दूँ ! क्या तुम उसके लिये नये रथ की सृष्टि करोगे ? क्या उसे भस्मी से पुनः यज्ञ के द्वारा स्वरूप दोगे ?"

उन सारथियों ने उत्तर दिया," उस महारथी से कह देना कि हम ऐसा ही करेंगे । परन्तु वह असंख्यों यज्ञों को नष्ट करने का पाप धारण किये है । यज्ञों की सामग्री नष्ट हो जाने से इन रथों को भी पाप लगा है क्योंकि इनके यज्ञ का अंश क्षीरसागर में शयन करते महाविष्णु को प्राप्त नहीं हुआ है । पाप से यह रथ अभिशप्त हुए हैं और माया इनमें भी प्रवेश करने लगी है । यज्ञ हो नहीं सकते हैं ! जहाँ उस महारथी के रथ का उद्धार करोगे वहाँ इनको भी यज्ञ कर देना । कहना उस महारथी को कि तेरे लिये हम पुनः नूतन रथों को धारण करेंगे एवं यज्ञ करेंगे कि जिससे पुनः स्वरूप को प्राप्त हो सके तू ! अब भटक मत जाना !! अच्छा हम त्याग रहे हैं, इन रथों को और शीघ्र धारण करेंगे नये रथ !"

झूम-झूम कर गा रहा हूँ स्तुति उस कन्हैया की ! मस्त देख रहा हूँ लीला महाप्रभु लीलाधारी की ! क्या देखता हूँ कि वृक्ष सूखने लगे हैं,

"ॐ" रूपी तेजस्वी हवनकुण्ड उन्हें त्याग रहे हैं और नूतन रथों को धारण कर रहे हैं। वृक्ष सूखते जा रहे हैं, लेटते जा रहे हैं।

नये रथों पर आरुढ़ हुए जब सारथि मेरे ! तो क्या देखता हूँ धरती में पड़े बीजों में अंकुर फूटने लगे हैं। नई-नई पत्तियां उग आई हैं। नये रथों की पताकाएं फहराने लगी हैं, मायाओं का महासमर निरन्तर है। मेरे सारथि यज्ञ कर रहे हैं। भस्मी चिता की पुनः उद्धार को प्राप्त हो रही है। जय हो ! जय हो !! कृष्ण कन्हाई की !! ब्रह्मा-विष्णु-महेश की !!! महाप्रभु "ॐ" !! की !!!

सूखे वृक्षों को एकत्र करता हूँ। चिता बनाता हूँ। इन्हीं का फल खाया था न इस महारथी ने ! फिर उस चिता पर महारथी को रथ के साथ लाकर लिटा देता हूँ। प्रलयंकर महाप्रभु महादेव की स्तुति गान करता हूँ। तब उससे कहता हूँ "हे महारथी ! देख आज किस गति को प्राप्त हो रहा है तू ! आज तेरा स्वजन तेरा नहीं ! तेरा अर्थ; द्रव्य तेरा नहीं। तेरा सम्मान-मान तेरा नहीं ! तेरा ज्ञान-अभिमान तेरा नहीं !! रे हतभाग ! तेरा कन्हैया ही तेरा नहीं !! कुछ क्षण के उपरान्त तेरा शरीर तेरा नहीं !! रे मूर्ख ! यूँ जीवन का स्वर्ण लुटा कर काल के बाजारों में क्या खरीदा तूने ? चन्द मुट्ठी राख और योनि-योनि का भटकाव !! हा !! महारथी अर्जुन ! तू अन्धा धृतराष्ट्र क्यों न हुआ कि बन्द आंखों में देख तो सकता अपने माधव कन्हैया को !! रे ज्ञानी ! ज्ञान का पाखण्ड आज तुझे ले डूबा बीच ज्ञान गंगा में !!

वह कुण्ड कहाँ से लाऊँ जो सम्पूर्ण को तेज में परिवर्तित कर दे तो तुझे मोक्ष मिले ! वह तो मात्र आत्मा हवनकुण्ड ही है। अब तो रूद्र की, महाप्रभु प्रलयंकर महेश की गुप्तगंगा (अग्नि) को प्रकट करूंगा और सम्पूर्ण उस गंगा (अग्नि) की लहरों (लपटों) में प्रवाहित करूंगा। जो तेज में परिवर्तित होगा क्षीरसागर भजेगा, तुझे शुभ फल मिलेगा पुनर्जन्म में ! जो धुवां बनेगा उसे वनस्पति पी जावेगी पुनर्जन्म को प्राप्त होगा। जो राख बनेगी सो भी तो तू है। डोलता फिरेगा नालियों में सड़ता पानी

बनकर ! जड़े खीचेंगी, आत्मायें यज्ञ करेंगी, इस प्रकार पुनर्जन्म द्वारा वनस्पति के स्वरूप में आवेगा तू ! खा गया जन्तु उन पत्तियों को, जो शरीर तेरा है तो अपने शरीर का उद्धार करने उस जन्तु के गर्भ में जावेगा तू ! इस प्रकार इन नाना योनियों के भटकाव में गिरा है, तजकर दुर्लभ मनुष्य जन्म !"

गंगा दो प्रकार की हैं। एक गंगा विष्णु महाप्रभु के अंगूठे से क्षीर-सागर से प्रकट होकर ऊपर से नीचे आती हैं, उसे विष्णु की गंगा कहते हैं। यह हमारे लिये विष्णुलोक से पदार्थ और जीवन लाती है। यह गंगा है जल की धारा ! इसके साथ मेरा इस लोक में आना होता है। दूसरी गुप्त गंगा है महाशिव की, जो ठन्डी लकड़ियों से प्रकट होती है तथा इसकी लहरों (लपटों) का रुख सदा क्षीरसागर की ओर होता है। इस गंगा के द्वारा गमन होता है। इस प्रकार यह आवागमन का गंगा-चक्र है। इसी से आज भी दोनों का सम्बोधन एक ही है, जैसे "वह जल में डूब मरा", "वह जल कर मर गया" ! दोनों वाक्यों का अन्तर क्षितिज के छोरों जैसा है, जबकि शब्द "जल" में परिवर्तन नहीं है !

महाप्रभु महाशिव (Cosmic Lord) की गुप्त गंगा (लपटें) प्रकट होने लगी हैं। मैं परिक्रमा करता हुआ स्तुति कर रहा हूँ। पुनः सम्बोधित करता हूँ विदा होते महारथी को। दण्ड मेरे हाथ में है !

"हे अर्जुन ! यह शरीर एक मन्दिर था, जिसमें आत्मा ॐ मूर्ति थे ! हवनकुण्ड थे। तू बुद्धि पुजारी था तथा एक मात्र लक्ष्य इस शरीर रूपी सामग्री को आत्माकुण्ड में यज्ञ करना था। आत्माकुण्ड के हटते ही तू पुजारी पंगु हो गया। यज्ञहीन हो गया ! अब रुद्र की गुप्त गंगाकुण्ड है, शरीर सामग्री है और मैं पुजारी हूँ। इसलिये तुझे इस दण्ड के द्वारा स्वतन्त्र करता हूँ ! निकल !! और ढूंढ़ अपने माधव को ! मना उसे और आरूढ़ हो नये रथ पर !! देख ! देख !! कि कहीं दूर न निकल जाये माधव तेरा और तू भटक जावे नाना पाप योनियों में ! भाग ! भाग !!"

साथ ही उन्मादित हो मैं दण्ड के द्वारा उसके कपाल पर निरन्तर प्रहार कर उसे खंडित कर देता हूँ और बुद्धि पुजारी को शीघ्र भागने को उकसाता हूँ ! प्रेरित करता हूँ !! सामग्री यज्ञ को प्राप्त होती है। यह कहानी है आपकी, सुना रहा हूँ आपको ! इस प्रकार प्राचीनकाल में नाना शंखादि नगाड़ों का नाद करके कपाल क्रिया द्वारा स्वतन्त्र करते थे बुद्धि अर्जुन को !

उपरान्त उसके पुत्रादिकों को बुलाकर कहता हूँ, "अरे देखो ! तुम्हारा स्वजन तुम्हारी ही लिप्साओं के कारण आज इस गति को प्राप्त हुआ है। आज वह रथ-हीन है, तेज-हीन है, क्योंकि आत्मा सारथि नहीं है उसके पास। अरे ! तुम सब ध्यान द्वारा तथा पिण्डादिक क्रियाओं के द्वारा अपना आत्मतेज दो। तुम्हारे द्वारा दिये गये तेज से वह पुनर्जन्म सुधार सके ऐसा सब उपाय करो ! मत भूलो कि तुम्हारी ही लिप्साओं के कारण वह अन्तर्मुखी न हो सका और इस अधोगति को प्राप्त हुआ। तुम्हारे तेजस्वी आत्मकुण्ड की ज्योति ध्यानमार्ग एवं योगमार्ग से उसको प्राप्त हो, तो वह अन्धकार में भटक न सके। तुम्हारे द्वारा उद्धार हेतु किये गये दानादि से आत्मायें यज्ञ करें और उसका अंश उसे तेज रूप में प्राप्त हो। इसलिये तुम उसके उद्धार के हेतु से विमुख मत हो।"

किस ढोंगी ने कहा पिण्डादिक श्राद्धकर्म ढोंग है ? कौन रावण उसे पाखण्ड कह सका ? अरे ! यह कर्म तो दशानन रावण ने भी युद्ध रुकवा कर अपने स्वजनों के किये थे ! श्राद्ध कर्म का प्रतिपादन वेदों में हुआ है। श्राद्ध कर्म से पितरों की तृप्ति होती है। वेद गाते हैं जिसे :—

"ये निखाता ये परोप्ता, ये दग्धा येचोद्धिता।
सर्वांस्तानग्र आवह, पितृन हविष अन्तये ॥" अथर्व १८/२/३४

कौन था वह नर्कदूत, जो भटकाने आया था, सनातन जन-जन को ! उस स्वजन को ठुकरा देना चाहते हो, जो तुम्हारे ही कारण दशरथ न बन सका। यदि तुम स्वयं दशरथ बन चुके हो तो बात दूसरी है, परन्तु रे

दशानन मार्गी ! कल तेरी भी यही गति होनी है, तो तुझे भी तो वही तेज चाहिये अथवा क्या मनुष्य योनि से भटक कर उस योनि में जाना चाहता है, जहाँ उस भोजन को ग्रहण करना पड़े, जिसे मनुष्य भोगकर त्याग देते हैं।

भक्तगण ! मेरे माधववृन्द !! मेरे नाना-नाना प्रभुओं !!! मैंने आप सब महात्माओं को; जिनका मैं भक्त हूँ, पुजारी हूँ, दशानन मार्ग का दर्शन सुनाया ! आप सब प्रभुओं के लिये यह दिशा बने ! भटका न सके यह मन इन्द्र ! अरे ! कोई कह दो, इस दुष्ट इन्द्र को, कि छोड़ दे कृष्ण-द्रोह ! क्यों बार-बार अर्जुन को भटकाकर, चिता पर डालकर, ब्रह्म-हत्या के पाप से अभिशप्त होकर कमल नाल में छिपता फिरता है ! फिर ब्रह्मा, विष्णु, महेश की चापलूसी करता है। सनातन ऋषियों से दया की भीख मांगता है। रे इन्द्र ! क्यों बार-बार पुत्र-द्रोही, पुत्र-हन्ता बन रहा है। जाने दे ! जाने दे !! इस जन समूह को दशरथ मार्ग पर। कृष्ण बनने को ! मत रोको ! मत भटका इन्हें, यह न छीनेंगे इन्द्रासन तेरा ! ये कृष्ण मार्गी, ये ॐ भक्त, ये ब्रह्मा, विष्णु, महेश के पुजारी, तेरा स्वर्ग चाहते नहीं हैं। इन्हें मत भटका ! अपनी लिप्सा रूपी अप्सराओं से कह दे कि न आवें इधर, अस्तित्व उनका खतरे में है ! दूर रह ! दूर रह !! नहीं तो तेरा स्वर्ग लोक ही बिन्दु-बिन्दु हो जावेगा ! जागो ! मेरे सनातन महात्माओं ! आओ कि अब लीला करें नई ! बहुत बार बने दशानन मार्गी, अब चलकर देखें दशरथ मार्ग पर ! नई राह ! नई उत्सुकता !! बांध दो दसों इन्द्रियों को ! नथ लो इस कंसरूपी कालिया नाग को ! अरे ! रथ लो ! रथ लो !! इन दसों इन्द्रियों को ! पता नहीं कौन सी साँस लौटे कि न लौटे !!

हरि ॐ नारायण हरि
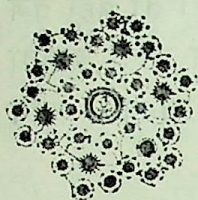
तृतीय अध्याय

दशरथ मार्ग

भक्तगण !

आज आप महाप्रभुओं को सुनाऊंगा दशरथ मार्ग ! मोक्ष मार्ग ! नारद आदि सनातन ऋषियों का मार्ग ! इच्छाधारी स्वरूप धारण कर नित्य स्वरूप सनातन होने का मार्ग !! यही मात्र मार्ग है प्रत्येक सनातन का। यही मार्ग गीता में दिखाते हैं आत्मा कृष्ण, बुद्धि अर्जुन को ! सशरीर तेज में परिवर्तित होना क्या सम्भव है ? यह प्रश्न मेरे सम्मुख बैठे प्रत्येक नारायण के हृदय में है ! उसका उत्तर मैं महाप्रभु ब्रह्मा-विष्णु महेश की अनुकम्पा से आपको दे रहा हूँ ! उन्हीं महाप्रभुओं की कृपा से, उन्हीं की प्रेरणा से, यह जड़ वाचाल है; और मूढ़ अज्ञानी आपको आपके ही रहस्य बताने को समर्थ है। आप सब मेरे महाप्रभु ही तो मेरे नाना देवाधिदेव हैं ! आपका भक्त मैं हूँ !

भोजन को जो आत्मारूपी हवनकुण्ड (atomic reactor) प्रलयंकर (cosmic) होकर सूक्ष्म तेज बिन्दुओं (splitted atoms) में परिवर्तित कर सकता है; तथा पुनः उन्हीं को सृजन करके रक्त मांस हड्डी में बदल सकता है; क्या पुनः उसे तेज में परिवर्तित नहीं कर सकता ? जो काम आत्मा पहले सफलतापूर्वक कर चुका है , उसका यह मात्र आधा काम ही तो है ! मेरी यही तो प्रार्थना है उससे, कि हे प्रभु तुमने वनस्पति को जिस प्रकार तेज में, एवं तेज को रक्त-मांस आदि में परिवर्तित किया है, उसे पुनः पवित्र तेज में परिवर्तित कर, माया के तम को नष्ट कर, द्वैत को अद्वैत होने का मार्ग प्रशस्त करें। तथा अपना मोक्षदायी ज्ञान सूक्ष्म ब्रह्म का ग्रहण करा कर अपना लोक प्रदान करें क्या हमारा आत्मारूपी रियेक्टर किसी

तरह भी ट्राम्बे के रियेक्टर से कम है ? ट्राम्बे एटामिक रियेक्टर तो खाली पदार्थ को सूक्ष्म ब्रह्म में विसर्जित कर सकता है जबकि मेरा आत्मा रियेक्टर सूक्ष्म ब्रह्म में विसर्जित तो करता ही है उसका पुनर्सृजन नूतन मौलिक स्वरूप में कर देता है। बताइये कौन सा रियेक्टर महान है ? विश्व का कोई रियेक्टर जो काम करने में समर्थ नहीं है, वह काम करते हैं मेरे प्रभु आत्मा 'ॐ' हर शरीर में मनुष्य के, पशु-पक्षी के, नाना पेड़ पौधों में। बताओ भला उस प्रभु के मार्ग में सशरीर तेज में परिवर्तित होना आपको सन्देहयुक्त लगा कैसे ?

ज्ञान, कर्म और भक्ति यह है गाड़ी तीन पहियों वाली, जिसे चलाता हूँ मैं बालक ध्यान मार्ग पर। यह मार्ग जहाँ पहुंचता है वह है नदी योग की। दूसरा किनारा है तप का। दूसरे किनारे पर पहुंचता हूँ और तप के द्वारा जा मिलता हूँ अपने कन्हाई को ! फिर स्वयं "ॐ" हूँ मैं !

यदि लक्ष्य का ज्ञान नहीं तो भक्ति किसकी ? यदि कर्म नहीं तो भक्ति कैसी ? इसलिये भक्ति, ज्ञान और कर्म से रहित नहीं हो सकती है। इसी प्रकार ज्ञान, बिना भक्ति और कर्म के व्यर्थ है। कर्म भी ज्ञानहीन और भक्तिहीन होने से व्यर्थ है ! ये तीनों एक दूसरे के पूरक हैं। एक ही गाड़ी के तीन पहिये हैं, जिसे मैं बालक नन्हा सा चला रहा हूँ एक पथ पर। उस रास्ते का नाम है ध्यान मार्ग। यह गाड़ी तीन पहियों वाली लिये जा रही है मुझे इस ध्यान मार्ग पर। यदि एक पहिया भी खराब हो गया तो यह गाड़ी चल सकेगी नहीं। कोरा तर्कवादी बना मैं पथ के किनारे बैठा, प्रत्येक मार्गी से अनर्गल प्रलाप करता रहूँगा, और भटक कर स्वयं नाना निकृष्ट योनियों को प्राप्त होऊंगा। कर्म और भक्ति से रहित ज्ञान मुझे दम्भी बना देता है और कोरा बकवादी मैं मनुष्य से पशु बन जाता हूँ। इसलिये हे महात्माओं ! तर्क के पाखण्ड एवं उपर्युक्त ज्ञान के ढोंग से दूर रहें। ये नर्कगामी मार्ग के इच्छुक हैं। किसी विषय पर अपना मत व्यक्त करने से पूर्व, किसी को तर्क के द्वारा चुनौती देने से पूर्व, सोचिये कि इस ज्ञान के साथ भक्ति और कर्म भी उसी अनुपात में

हैं ? अन्यथा आप महापाप कर रहे हैं, जिसका फल निश्चय ही महा-अनिष्टकारी होगा। अरे महादेवों ! महात्माओं ! मेरे नाना राम कृष्णरूपी महाप्रभुओं ! इस पाप से दूर रहो। जो मार्ग चले नहीं हो तुम तथा जिस मार्ग चलना चाहते नहीं हो तुम, उस मार्ग के विषय में शास्त्रार्थ नहीं करो। बिना कानून पढ़े कानून बताने वाली आदत त्यागो। यह महा-पाप है।

इस प्रकार यह गाड़ी जिस ध्यान मार्ग पर चलती है, उस नदी का नाम योग है। योग की इस पवित्र वैतरणी में स्नान कर मार्ग की धूल को भी धुल जाने दो। अर्थात् यहाँ पहुंच कर तुम्हारा पिछला सम्पूर्ण ज्ञान नष्ट हो जावे ! केवल आगे जाने वाले मार्ग की सुधि रह जावे बाकी। यहाँ पहुंच कर योगीं मांगता है प्रभु ! से, कि हे प्रभु सम्पूर्ण ज्ञान नष्ट हो जावे, मेरा मात्र तेरा ध्यान रहे बाकी ! क्योंकि जब इस बुद्धि रूपी घड़े को पुराने जल से खाली नहीं करूंगा, नया जल इस नदी का भरूंगा कैसे ? भरा घड़ा जल का, सौ बार नदी में डुबोने पर भी तो नया जल उसमें आवेगा नहीं। वह जो ज्ञानी है, वह तो भरा घट है, कैसे चल पावेगा इस मार्ग पर ? जो ज्ञान के दम्भ को प्राप्त हो चुका है; अरे ! उस मूर्ख सा इस धरा पर दूसरा है ही कौन ? ज्ञान मार्ग का ज्ञान इन स्थूल मरणशील दस इन्द्रियों का; अमर नहीं है ! जो जल भरा है इस घट में रे ज्ञानी ! यह अमर जल नही है ! अधिक देर तक यदि रह गया घट में तेरे तो सड़ जावेगा और कीड़े पड़ जावेंगे इस जल में ! इसका मोह न कर; इसका दम्भ न कर। इसे खाली कर दें, नदी योग की, के किनारे पहुंच कर और भर पुनः स्वच्छ शीतल अमर जल से कि अमर हो जावे तू पीकर उसे ! कोरा ज्ञानी तो उस व्यक्ति के समान है जिसे एक दावत में सौभाग्यवश बहुत अमूल्य भोजन प्राप्त हो गया है; किशमिश छुहारे, केसर और कस्तूरी इत्यादि के बने कीमती व्यन्जन खूब डटकर खाये हैं ! बहुत प्रसन्न है वह ! फूला नहीं समाता है ! उस भोजन को संजों कर रखना चाहता है। इतना कीमती भोजन मल के द्वारा विसर्जित कर व्यर्थ नहीं करना चाहता है ! आप ही बताइये क्या गति होगी उसकी ? ठीक यही स्थिति कर्म एवं भक्ति

से रहित ज्ञानी की है ! सारे वेदों का ज्ञान, शास्त्रों, पुराणों का ज्ञान, किस काम का जो चला न एक कदम भी इस मार्ग पर ! उसने ज्ञान का अर्जन किया केवल सम्मान पाने की लिप्सा से ! अब त्यागे कैसे उसको भले ही शरीर सड़ जावे, भोजन का मल विसर्जित कर सकता नहीं ! लिप्सा से प्रेरित ज्ञान भले ही क्यों न हो वेदों का; उस ज्ञानी को घृणित योनियों में पहुंचा सकता है, मोक्ष दिला सकता नहीं !

जिसे लक्ष्य का ज्ञान ही नहीं, वह भक्त पहुँचेगा कहाँ पर ? उसकी स्थिति ठीक उस व्यक्ति की है, जिसकी स्मृति दुर्घटना से लुप्त हो चुकी है और वह भटक रहा है गली-बाजारों में; शायद कोई पहचान ले उसे और पहुँचा दे मंजिल पर ! इसलिये लक्ष्य के ज्ञान से हीन भक्ति भी पूर्ण फलदायिनी नहीं है।

भक्ति भी है और ज्ञान भी है मार्ग का ! आलस्य घेरे है उसे, उठना चाहता नहीं, मार्ग पर चलना चाहता नहीं, तो पहुंचेगा कहाँ पर ? इसलिये कर्म के बिना प्राप्त होता नहीं है कुछ। तीन पहिये वाली गाड़ी देखो चला रहा हूँ मैं ! तीनों पहिये बराबर हैं। चौड़ा राजपथ है, ध्यान मार्ग मेरा ! हे देवाधिदेव ! हे मेरे ॐ !! मुझे ज्ञान भी दे, भक्ति भी दे, कर्म की इच्छा एवं शक्ति भी दे ! तीनों मेरे अंग बनें, तीनों मेरा संग करें ! और पहुंच जाऊँ जब नदी के किनारे योग की, तो सब अतीत को त्यागने की शक्ति भी दे !

"सम्पूर्ण ज्ञान नष्ट हो, मात्र तेरा ध्यान रहे बाकी।"

"Extreme of knowledge is ignorance."

ज्ञान का चरम है—मूढ़ भाव !

जब भक्ति का भी ज्ञान न हो, जब क्रियाओं का भी ज्ञान न हो, जब ज्ञान का भी ज्ञान न हो ; बस तू हो और मैं हूँ ! फिर तू कहाँ ? मैं कहाँ ? मैं ही तो तू है ! अरे तू ही तो मैं हूँ ! जहाँ देखो मैं हूँ ! पेड़ों में, पौधों में, पहाड़ों में, सितारों में, नदियों में, नगाड़ों में झूम रहा

कौन ? मैं ही तो हूँ ! लहराते पेड़ों के संग लहरा रहा हूँ मैं ! झिलमिलाते तारों के संग झिलमिला रहा हूँ मैं ! गाती हवाओं के संग गाये जा रहा हूँ मैं ! इठलाती लहरों में देखो इठला रहा हूँ मैं ! हर दर्पण में देखो मुस्करा रहा हूँ मैं !

भक्तगण ! आप ध्यान करें उस दृश्य का—'नदी का किनारा है, और नदी के बीच से होकर जा रहे हैं वासुदेव। सिर पर टोकरी है और टोकरी में सोया है मेरा नन्हा कन्हाई ! पीछे किनारे पर जेल है, जिसके फाटक खुले हैं और पहरेदार अचेत पड़े हैं। बेड़ियों की टूटी जंजीरे लटक रही हैं !'

अरे देखो ! दिखा दी है सारी कथा तुम्हारी उसने ! जेल गर्भ है; टूटी जंजीर नाल है; अचेत पहरेदार कंस के, मायाओं के प्रतीक हैं ! नदी है योग की। इस ओर है पापी कंस, उस ओर गाँव है नन्द का ! बीच नदी में है काला नाग, दस फन वाला ! कहाँ ले जाऊँ अपने सुकुमार कन्हैया को ? कैसे बचे लाल मेरा ?

इस पार माया है भारी; पत्थर पर पटक कर मार देगा हत्यारा, कंस मेरे कन्हाई को ! नदी में है कालिया नाग बैठा ! डस लेगा हत्यारा मेरे लाड़ले को ! छिपा सकता नहीं यहां पर ! अरे चल ! चल !! उस पार चल ! वहाँ न कंस है, न नाग कलिया है ! नन्द बाबा हैं, मात यशोदा हैं, पुकारती गोपियां हैं, मोहित गौ समुदायें हैं। गोपों के झुण्ड खोज रहे हैं मेरे कन्हाई को !

सुन रे माधव ! उस पार गति है तेरी ! नदी के किनारे तक पहुंचना ही तेरा लक्ष्य नहीं है। जाना उस पार है, जहाँ नन्द बाबा का गाँव है। यह गाड़ी तीन पहियों वाली जाती नहीं उस पार है। ज्ञान, कर्म, भक्ति रूपी गाड़ी फेंक किनारे पर; लगा छलांग योग की गंगा में; कन्हैया-कन्हैया पुकारता बढ़ चल उस पार ! पलट कर देखना नहीं ! डूब जावेगा ! उस पार है गाँव नन्द का ! उस किनारे बैठकर मूंद ले

आँखें और फिर देख कि मोर मुकुट है सिर पर तेरे ! बांसुरी तेरे हाथों में आ गई है ! योग की नदी की माया अथवा माया कन्हाई की ! कृष्ण लग रहा है तू ! कृष्ण हो गया है तू ! अब तेरी मुस्कराहट से मुस्करा उठेंगे लोक ! तेरी इच्छा से लहलहा उठेंगे ग्रह-नक्षत्र ! नाना सृष्टियों का सृष्टा हो गया है तू ! जिसे भजता रहा है आज वही हो गया है तू ! अरे ! दशानन से दशरथ हुआ, दशरथ से बना राम है ! ब्रह्मा तू ही, विष्णु तू ही, महेश तू ही, तू ही 'ॐ' भगवान है। यह मार्ग है तेरा; यह लक्ष्य है तेरा !

मित्रजन ! ज्ञान का चरम है मूढ़ भाव ! ज्ञानहीन था जब तू उत्पन्न हुआ; ज्ञानरहित होगा जब पुनः जन्म होगा तेरा ! अर्थात चिता मार्ग में भी ज्ञान छूट जाता है। मोक्ष मार्ग में भी योगी घट खाली कर देता है, जिससे आत्मा का ज्ञान भर सके रीते घट में ! जिस प्रकार चिता मार्ग में ज्ञानरहित होता हुआ पुनः उसी ज्ञान का सृजन करता है। मोक्ष मार्ग में गया योगी ज्ञान के ध्यान से मूढ़ हो मात्र आत्मा के ध्यान में लीन होता हुआ उसी अमर ज्ञान को धारण करने लगता है। दिव्य मार्ग से लिया गया अमर ज्ञान ही उसे अमर कर देता है। इससे स्पष्ट है कि ज्ञान का चरम जो मूढ़ भाव कहा है मैंने, वह मात्र इन्द्रियों से अर्जित ज्ञान ही है, न कि आत्मा से लिया गया अमर ज्ञान ! कौन से ज्ञान का चरम है मूढ़ भाव ? मात्र इन्द्रियों से लिया गया स्थूल ज्ञान ! अमर आत्मा का अमर ज्ञान है जो, उसका विस्तार तो सम्पूर्ण सुदर्शन है, अर्थात् जिसमें असंख्यों ब्रह्माण्ड समाये हैं, उससे भी कहीं परे है, असीम है !

इसके साथ ही मैं एक संशय का निवारण कर देना चाहूंगा कि 'ज्ञान का चरम मूढ़' जो कहा मैंने, उसका अर्थ यह कदापि न लगना चाहिये कि अज्ञानी होना ! बालक पुस्तक फेंक दे, कि जब ज्ञान का चरम मूढ़ है तो क्या करना किताब रटकर; चलो सीधा चरम अर्थात मूढ़ भाव को ही प्राप्त हो जावें ! यह पाप है ! पुनः यह अज्ञान है, न कि मूढ़ भाव ! ज्ञान का चरम तो ज्ञान के मार्ग पर चलकर ही प्राप्त होगा। अज्ञान पाप है,

अन्धकार है ! मूढ़ भाव लक्ष्य है, महापुण्य है, स्थिर ज्योति है।

इसी प्रकार एक भ्रान्ति सन्यासी समाज में भी व्याप्त है। 'मैं हूँ'। यह भी मूर्खता है। 'मैं ही तो हूँ !' ऐसा तजर्नी को अंगुष्ठ से जोड़कर 'ॐ' का नाद करके सुनाते हैं वे महाप्रभु ! साथ ही यह मानकर कि 'मैं ही तो हूँ।' उन्होंने नियम कर्म के एवं नियम धर्म के भी त्याग दिये हैं एवं समाज के द्वारा उपार्जित भोज्य सामग्री को अनाधिकार दुष्टता पूर्वक ग्रहण करते हैं, मुटा रहे हैं। यह अद्वैतवादी उस महान अद्वैतवाद के पवित्र मार्ग को न समझकर अद्वैत का उपहास कर रहे हैं; अपमानित कर रहे हैं। ऐसी घटना आपके इस सेवक भक्त के साथ भी हुई, जिसे भ्रान्ति के निवारणार्थ ही प्रस्तुत कर रहा हूँ, अन्यथा न जानियेगा !

सुना उनसे यह नाटक, तो पूछा कि आप समाधि-योग आदि करते हैं, तो भड़क गये, 'मैं ही तो हूँ ! फिर समाधि-योग क्यों और किसलिये?' उनसे तर्क करना व्यर्थ होगा, ऐसी अन्तर्प्रेरणा हुई ! उनके गुरु महा-मण्डलेश्वर के पास गया भक्त आप महात्माओं का ! पूछा कि यह सब क्या कहते हैं नारायण ? तो बोले, अंगुष्ठ को तजर्नी से जोड़कर 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति !' मैं ही तो हूँ !' प्रार्थना की, "कि महाप्रभु जब आप ही हैं सम्पूर्ण चराचर, तो कृपया पिछले तीन जन्मों का अपना ज्ञान बतावें कि आप क्या-क्या थे ?" ठठाकर हँस पड़े ! बोले, "यही तो माया है !" हाथ जोड़कर बिनती की, "ठीक ! कहा है महाप्रभु ने ! लेकिन हे महाशंकर ! आपके इस जन्म के ज्ञान एवं पिछले जन्मों के ज्ञान के बीच माया होने से दो ज्ञान हो गये। तो अद्वैत का द्वैत हो गया ? यदि ऐसा न होता तो क्यों कर इस जन्म का ज्ञान, पिछले जन्म के ज्ञान को जानने में असमर्थ होता ! दो हो गये जब ज्ञान आपके, तो ज्ञान से तो द्वैत हो गया न !"

महामण्डलेश्वर सोचने लगे। उसी क्षण आपके भक्त ने धूल उठा कर उनके हाथ पर रख दी और प्रार्थना की, 'हे प्रभु ! सम्पूर्ण आप हैं ! धूल को पुष्प में भी आप ही बदल रहे हैं ! कृपया इस धूल से एक पंखुड़ी गुलाब की बना दें ! आप ही तो वह परम शक्ति हैं !'

'यही तो माया है।' उन्होंने धीमी आवाज से कहा। 'तब आपकी शक्तियों में भी माया के कारण द्वैत है न ! आपकी सृष्टा की शक्ति में एवं वर्तमान शक्ति में भी द्वैत है। आप अपनी शक्तियों का इस्तेमाल भी नहीं कर पाते हैं ; माया के कारण, तो अद्वैत कहाँ हुआ ?' उनसे भक्ति पूर्वक पूछा, तो उन्होंने प्रश्न के उत्तर में प्रश्न किया, 'आपका दर्शन क्या कहता है ?' विनय की' 'कि हमारा दर्शन भी यही कहता है। परन्तु हमारे दर्शन में अद्वैत लक्ष्य है ! प्राप्त नहीं हुआ हूँ ! आप मान बैठे हैं कि आप प्राप्त हो चुके हैं; यह भटकाव है ! अद्वैत की इस उल्टी व्याख्या के कारण आपकी शिष्य मण्डली अब योग-समाधि त्यागकर भोगादिकों में लिप्त हो चली है ! महाप्रभु सम्भालिये उसको ! अन्यथा आप गुरु होने से महापाप के अधिकारी होंगे।'

इस प्रकार हे ! नाना रूपों में लीला करते मेरे राम! कृष्ण ! नाना देवाधिदेवों ! लक्ष्य को लक्ष्य जानो ! सत्य को सत्य एवं भ्रान्ति को भ्रान्ति जानकर, लक्ष्य की ओर बढ़ते चलो। यह दशरथ मार्ग तुम्हारा है !

द्वैत के अद्वैतीकरण का मार्ग है योग ! मिलन है बुद्धि अर्जुन का आत्मा कृष्ण से। दशरथ का राम से। मैं का मैं से। यह ठीक है कि मैं ही आत्मा हूँ और मैं ही बुद्धि हूँ। जब दोनों ही मैं हूँ, द्वैत कहां हुआ ? परन्तु यह भी तो सत्य है कि मैं बुद्धि भी हूँ और मैं आत्मा भी हूँ। तो बुद्धि और आत्मा दो हैं, इसलिये द्वैत हुआ ! जब तक बुद्धि और आत्मा के बीच में माया है, तब तक 'मैं' शब्द भी द्वैत है ! इस माया को नष्ट कर बुद्धि को आत्मा से एक कर देना है—योग ! योग के बाद ही अद्वैत है। अभी तो इस रथ पर महारथी और सारथि दो हैं। मिलकर अर्थात् योग करके, जब एक हो जावेंगे, तो सम्पूर्ण रथ परम तेजस्वी आत्मवत् तेज ही तेज में परिवर्तित होगा, तब अद्वैत है। अद्वैत ही परम लक्ष्य है। इसके बिना मोक्ष कहाँ ? यही कहते हैं आत्मा कृष्ण; बुद्धि अर्जुन से गीता में, कि हे अर्जुन ! तेरा मुझमें ही योग सर्वोत्तम है, क्योंकि मुझको (आत्मा) प्राप्त होने से तेरा पुनर्जन्म नहीं है अन्यथा जो देवों को प्राप्त होते हैं वे

उसे भोगकर पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं। यही गति ब्रह्म को भजने वालों की है। क्योंकि यह लोक-लोकेश्वर भी शान्त होते हैं। परन्तु मैं सनातन हूँ, नित्य हूँ, ब्रह्मा, विष्णु, महेश रूपी शक्तिपुंज आत्मा हूँ। यदि तू मुझ आत्मा से योग करके आत्मवत् हो जावे तो जिस प्रकार मैं अमर हूँ, वही गति हो तेरी ! अर्थात् तू भी नित्य स्वरूप सनातन हो जावे ! गीता से भी यह तथ्य नितान्त स्पष्ट है, कि कृष्ण मार्ग (अतममार्ग) से ही मोक्ष उपलब्ध है अन्यथा बहिर्मुखी होने से पुनर्जन्म निश्चित है ! भक्ति-ज्ञान कर्मरूपी गाड़ी क्यों फिकवा दी मैंने; योग की नदी के किनारे तथा सारे मार्ग दिखाकर, सत्तरह अध्यायों में गीता के, अट्ठारहवें अध्याय में क्यों कहा कि सम्पूर्ण धर्मों (मार्गों, लक्ष्यों) का परित्याग करके एक मुझ आत्मा की शरण में आ ! क्योंकि इसके अतिरिक्त मार्ग नहीं है कोई ! सम्पूर्ण वेदों ने मुख्यतः इसी मार्ग पर चलने को कहा है। लगभग सम्पूर्ण वेदों की ऋचायें लक्ष्य रूप तीसरे यज्ञ के प्रति ही गायीं गईं हैं। क्योंकि विद्वान यज्ञ के रहस्य को जान नहीं सके, इसलिये उन्हें इनका सही भावार्थ भी प्राप्त न हो सका। केवल उपमाओं में, ऋचाओं द्वारा विज्ञान-ज्ञान का विस्तार प्राप्त होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि ऋचा लक्ष्य करते हुये तीसरे यज्ञ (आत्मयज्ञ) को उपमा देती है तो अनायास सितारों, नक्षत्रों के रहस्य प्रकट होने लगते हैं। यह आश्चर्यजनक, अद्भुत रहस्य मैं आप सब महात्माओं के सम्मुख यथासमय रखूंगा। ऐसे रहस्य कि सम्पूर्ण विज्ञान स्तब्ध रह जावे। इसीलिये कहता हूँ कि आने वाले कल का दर्शन भी आज कर लो, इन वेदों में नाना-ज्ञान का, नाना-विज्ञान का !

आज वैज्ञानिक भी 'अहंब्रह्मास्मि'; जिसे कि वह State of Super Spaceman कह सकता है; उसके बिना स्वयं को पंगु पाता है। यदि मृत्यु अवश्यम्भावी है तो Space में मनुष्य कभी अधिकार पा सकेगा नहीं ! प्रवेश लेना ही उसके लिये असम्भव हो जावेगा। क्योंकि अर्न्तब्रह्माण्डीय (Inter Space) भ्रमण मेरा तभी माना जावेगा, जब मैं पृथ्वी से निकल कर किसी 'नक्षत्र' पर जाऊं तथा वापस लौटूं। जो सबसे नजदीक सितारा है पृथ्वी के, वह हमसे दो सौ प्रकाश वर्ष दूर है। अर्थात् यदि मैं ऐसा

यान बना लूं जो विद्यु त की गति से चले, सम्पूर्ण माया (Gravity) को निरस्त्र (Neutral) करके, तो भी उसे वहाँ तक पहुंचने में दो सौ वर्ष लगते हैं। विद्यु त की गति से चलने का अर्थ है कि यान एक सेकेन्ड में लगभग एकलाख अस्सीहजार मील चले। पहले तो यह गति लाना अभी वैज्ञानिकों के लिये सम्भव नहीं, दूसरे यदि यह गति प्राप्त भी हो जावे तो यह यान चलावेगा कौन ? आने-जाने में पांच सौ वर्ष लगते हैं। कौन जीयेगा ? यदि मनुष्य न जा सका और हमलोग खाली मशीन (जो कि वर्तमान स्थिति में सम्भव नहीं) ही घुमाते रहे तो मशीन की स्पेस यात्रा हुई, मानव का तो पदार्पण न हो सका न ! इसलिये अब वैज्ञानिक भी धीरे-धीरे उसी मार्ग की खोज में लग रहा है जहाँ से आरम्भ होता है, दर्शन सनातन का ! वह भी पूछने लगा है सनातन से कि super spaceman की स्थिति कैसे सम्भव है। वही बताऊंगा आज मैं, अपने छलिया कृष्ण को, जो मुझे ठगना चाहता है नाना-भक्त-समुदाय का स्वरूप बना कर ! आह ! देखो ! मेरा माधव कितने रूप भर कर बैठा है, मेरा प्रवचन सुनने ! यह बड़ा ठग है !

भक्तगण ! वैज्ञानिक भी मानते हैं कि एक मनुष्य के शरीर में इतनी आणविक शक्ति है कि अमरीका और इंग्लैण्ड की दस वर्ष तक की सारी ऊर्जा की खपत, एक शरीर पूरा कर सकता है ! तो सोचिये यह शरीर आपका कितना शक्तिशाली है ! दूसरे शब्दों में यूँ कहूंगा रे भक्त ! यदि तू ले ले अपने शरीर के ब्रह्म का नियंत्रण, तो प्रत्येक तीन मिनट के अन्तर से दस वर्ष तक अनेक पृथ्वी जैसे ग्रहों को विन्दु-विन्दु में बदलता चलेगा ! तो बता कि तीन मिनट में एक पृथ्वी ध्वस्त करने वाला, दस वर्ष में इसी गति से, कितनी पृथ्वीयों का संहार करेगा। कितना बड़ा प्रलयंकर है तू स्वयं में और हीन बना दिया, इस माया के भटकाव ने तुझको ! जाग ! जाग !! रे! पहचान स्वयं में सोये प्रलयंकर को, जो स्वयं तू है। करोड़ों जन्मों का ज्ञान है तेरे पास; सृष्टा और प्रलयंकर महान है तू स्वयं ! फिर भी मांग रहा भीख, दर-दर की और खा रहा है ठोकरें, मायाओं की !

तेरी स्थिति उस व्यक्ति की है जिसके पास एक कमरे में असंख्यों का खजाना है। कमरा बन्द है ! ताला लगा है ! चाभी खो गई है ! यदि चाभी मिल जावे तो वह सम्राटों का सम्राट है ! सृष्टाओं का सृष्टा है ! परन्तु चाभी मिलती नहीं है और ताला तोड़ने का श्रम नहीं करना चाहता है। भीख मांग रहा है सड़कों पर ! एक रोटी दे ! एक मकान दे ! एक बीबी दे ! बच्चे दे ! नौकरी दे !! हर सांस का भिखारी है ! हर बात में मांगता भीख है। अरे ! उपहास देखो ! ठगी देखो !! मायाओं से लुटा सम्राट, अरे भीख मांगता, ठोकरें खाता, देखो !! जिसकी मुस्कराहट मात्र से, मुस्करा उठें ब्रह्माण्ड। जिसकी दन्त पंक्ति के झिल-मिलाते ही, झिलमिलाने लगे असंख्यों नक्षत्रगण ! वही सृष्टा स्वयं से अनभिज्ञ, स्वयं को न जानता हुआ, भिखारी है, दीन-हीन बना रो-रो कर भीख मांग रहा है ! अरे! जागो ! जागो !! मेरे कन्हाई !! कंस ने शंख फूंक दिये हैं ! रे अर्जुन ! देख ! उठा धनुवा और चूर कर घमण्ड कौरवों का !! व्यङ्ग से मुस्करा रहा है दुर्योधन !! कितनी विषैली है मुस्कान उसकी !! सीना कर देती छलनी है !! अरे राम ! क्या कर रहे हो तुम ! गाण्डीव की टंकार दो ! कहीं व्याकुल सीता, शरीर त्याग न दे अशोक वाटिका में !! संग्राम करो !! अति भयंकर संग्राम करो !! घात करो अति भारी !! जय हो तुम्हारी ! जय हो तुम्हारी !! हे राम ! हे कृष्ण !! हे अर्जुन !! जय हो ! जय हो तुम्हारी !!

कैसे मिले कन्हाई ? कैसे पहुंचू उस तक ? ये मार्ग इन्द्रियों के जाते नहीं है उस तक ! विपरीत हैं ये सारे, स्थूल हैं ये सारे ! जिन्हें सूक्ष्म ब्रह्म (Atom) न दिख सके अरे ! वह कैसे देखे उस परम ब्रह्म (minutest than a atom) कन्हाई को ! दुनियाँ देख सकती है इन्द्रियाँ ! स्वयं को जाने कैसे ? स्वयं तक पहुंचे कैसे ? नाना यन्त्र बनाने वाले; स्वयं को बना न सके ! हर यन्त्र की आयु बढ़ी, इस यन्त्र (शरीर) की आयु बढ़ा न सके ! कैसा मजाक है यह ? अरे ! कैसा पाखण्ड है !!

भक्त गण ! यह घड़ी, जो देख रहे हैं आप, सबसे पहले जब घड़ियाँ

बनीं थीं तो बड़े विचित्र स्वरूप थे इनके ! समय भी ठीक नहीं देती थीं तथा किसी की घड़ी अठ्ठारह घन्टे चलकर रुक गई, तो किसी की बीस घन्टे ही चली । घड़ी कम्पनी ने शहरों में घड़ियाल, बड़े-बड़े घन्टा घर लगवा दिये थे जिससे लोग अपनी घड़ियों का समय ठीक कर सकें ! तो गांव के बड़े जमींदार जो कभी दोपहर से पहले सोकर नहीं उठे, सवेरे ही बग्घी जोते शहर भागते थे । यदि किसी ने पूछा कि खैरियत तो है, कहाँ चले लार्ड साहब ? तो मूछों को ऐंठ कर छाती तानकर उत्तर देते थे, "घड़ी वाले हैं, शहर जा रहे हैं घड़ी मिलाने ।"

तब इस घड़ी की जिन्दगी सिर्फ चौबीस घन्टे थी । इस पर नये-नये अनुसंधान होते गये और निरन्तर आयु बढ़ती गई । अब कल आपको इलेक्ट्रानिक घड़ियां मिलने लगेंगी, जो हजारों वर्ष चलेंगी, समय भी गड़बड़ नहीं होगा । मैं पूछता हूँ, अरे ! हजार साल की घड़ी तुम्हारे किस काम की ? मैं भोग ही न सका जिसे उस अनुसंधान का फायदा क्या ? इस घड़ी के साथ बढ़ाई क्यों न आयु इस यन्त्र की, जो भोग सके इसको ? अरे ! बताओ ? मनुष्य मशीन के लिये है अथवा मशीन मनुष्य के लिये ? साठ साल में मैं चल दिया; पता नहीं कहाँ जन्मा ! घड़ी तुम्हारी हजारों साल भोग ही न सका तो इस अनुसंधान को सराहूँ कैसे बताओ ! उस यन्त्र को आयु देते समय इस यन्त्र को मत भूलो भाई ! इसी यन्त्र के द्वारा ही तो नाना यन्त्रों को आयु और जन्म दे सके हो तुम ! इसी यन्त्र की सुख-सुविधाओं के कारण ही तो सारे यन्त्र रचे हैं तुमने ! तो इस मूल यन्त्र को क्यों त्याग रहे हो ? क्यों अनभिज्ञ हो इससे ? क्यों नहीं जानते कि राख का पुतला कैसे बोलने लगता है, चलने लगता है, नई-नई सृष्टि करने लगता है । इस यन्त्र को खोजो । अरे ! अपने को खोजो ! ! स्वयं को जानो, अपने अन्तर में बैठे उस कन्हैया को जानो, उस सर्वोपरि एटामिक रियेक्टर आत्मा को पहचानो, उसके रहस्यों को जानने की कोशिश करो ! गाड़ी रुक गई है ! स्पेस पर नियन्त्रण हो सकता नहीं स्पेसमैन के बिना । मशीनों से मानव उकताने लगा है ।

अभावों को मिटाने की दौड़ जो लगाई भौतिक बनकर; मिट

गये सब सुख सपने ! अब तो अभाव ही अभाव है ।

खायी वही दो रोटियां; जिया दिन उतने ही; पर सो न सका एक नींद भी चैन की । महान त्यागी कर्मयोगी से एक सस्ता घंधेबाज बनकर रह गया । लुट गई मुस्कान आज चेहरे की । अब नहीं वह गूंजती गाती चौपाल की शाम है । इन्सान से बना लुटेरा है; फिर भी फटेहाल परेशान है । पूछो इससे कि क्या कमाया तूने ? अरे ! तेरी चालाकी, तेरी बुद्धिमत्ता, कहाँ ले गई तुझको ? रे विद्वान ! जिन्दगी का सोना यूं छितराता चला गया—बदल गया चन्द मुट्ठी राख में ! अरे ! कौन है वह ! जो लावेगा फिर तुझे लौटाकर ? फिर तेरे शरीर में सारथी बन-कर सोयेगा नहीं एक रात भी कि कहीं धड़कन रुक न जावे । कहीं साँस चुक न जावे । यज्ञ चलता रहे; तू पलता रहे । रे अहसान फरामोश ! क्या बदला दिया तूने उसको ? आत्मभक्त से आत्मद्रोही हो गया । उस वेश्या की तरह जो धन सारा पीकर निगाहें फेर लेती है ।

अरे सुन रे भ्रमित ! उस दशरथ मार्ग की कथा, सुन जो मात्र लक्ष्य है तेरा, शेष अज्ञान है ! दसों इन्द्रियों को रथ लिया जब, तो तीन पहियों वाली गाड़ी पर बैठ चल दिया, राजपथ पर ध्यान मार्ग के ! वह भक्त है ! वह ज्ञानी है ! वह कर्म योगी है ! तीनो पहिये सबल हैं उस गाड़ी के और उसे मात्र लक्ष्य का ही ध्यान है । वह मस्त भक्त है लक्ष्य का । एक ज्ञान है लक्ष्य एवं मार्ग पर बढ़ा जा रहा है वह ! मस्त झूमता जा रहा है !

उसने त्याग दी हैं लिप्सायें सारी ! निश्चिन्त है वह; चिन्ता रूपी महापाप से मुक्त है वह ! दुख को जानता नहीं है वह ! मोह, ममता, स्नेह, वात्सल्य, दया, सेवाभावना आदि नाना मार्गों को छोड़ चुका है वह ! उनको भी पाप मानता है । यह सब भी महापाप है, अपने ज्ञान रूपी पहिये से जानता है वह ! क्यों ? इसलिये कि इन सबको दर्शाने के लिये भी उसे बहिर्मुखी होना पड़ता है और जाना उसे भीतर है । ममता दर्शाने, वात्सल्य दिखाने बाहर आवेगा तो मार्ग के विपरीत होगा । उसके

लिये यह सब भी महापाप है। ज्ञान पहिया बताता है उसे ! कहता है इन सबको अन्तर्मुखी हो आत्मा कृष्ण पर ही डाल ! वात्सल्य दिखा भीतर के कन्हाई को ! स्वजन, मोह, सेवा-भावना दर्शा व दिखा कर्म एवं भक्ति द्वारा उस आत्मा कन्हाई को ! बाहर नहीं; भीतर चल !

भक्ति—ज्ञान—कर्म ! तीनों पहिये निरन्तर बढ़ रहे हैं, लक्ष्य की ओर ध्यान मार्ग पर ! द्वैत बुद्धि और आत्मा का घटता चल रहा है। अरे ! देखो ! बिन्दु स्वयं ब्रह्मा बनने चल दिया है। उसे न राग है; न द्वेष; न ईर्षा है; न लिप्सा है। उसे न दुख है, न चिन्ता है। सम्पूर्ण इन्द्रियों की लिप्साओं को त्याग दिया है और चिन्तन की दिशा अन्तर्मुखी कर दी है उसने ! अब वह आत्मा कृष्ण को ही भोगता, कृष्ण को ही भजता है, कृष्ण को ही ओढ़ता है, कृष्ण से ही बोलता है, कृष्ण को ही सुनता है, कृष्ण को ही खाता है; कृष्ण को ही पीता है ! मस्त है; उन्मुक्त है; शान्त है; मोहित है कृष्ण से ! भीतर बैठा है जो !

माया हैरान है ! इन्द्र घबड़ाया हुआ है। अर्जुन तो निकल चला हाथों से । अब क्या हो ? लिप्साओं में धन वैभव की आता नहीं है वह। अज्ञान नष्ट हो चुका है इसका ! इन्द्रियों की लिप्साओं में फंसता नहीं है वह ! अप्सराओं का पाखण्ड खुल गया है। अब क्या करे इन्द्र ! धन भी नहीं, इन्द्रियों की अनुभूतियां भी नहीं, तो जन-सेवा से लिपटाओ ! माया चली ! त्राहिमाम् के प्रपंच फैले ! समाज-समाज ! जन ! जन !! सुना उसने ! गाड़ी फिर भी रुकी नहीं। चलती गाड़ी से उत्तर दिया, "सेवक तो कन्हैया है, जो सबका पिता है उसी को पुकारो, वहीं सारे कष्ट निवारण करेगा !"

टका सा जवाब ! अरे ! कर्त्तव्य के ढोंग से भी निकल गया। आत्मा ही कर्त्ता है; मैं बुद्धि तो आश्रित हूँ उसका; तो मैं कर्ता कैसे हुआ ? अकर्तापन का सम्पूर्ण ज्ञान दिया किसने इसको ? सिर पीट लिया इन्द्र ने !

गाड़ी निरन्तर आगे बढ़ रही है। इसे नाना-ज्ञान द्वारा भटकाओ

हे मायायों ! मायायें भाग चलीं ! उसने देखा तक नहीं ! अप्सरा कुछ बिगाड़ न सकीं ! बहुत भड़काया, तो एक ही वाक्य निकला उसके मुंह से, "हे कृष्ण ! सम्पूर्ण ज्ञान नष्ट हो जावे एक तेरा नाम रहे बाकी !"

ये तीर भी व्यर्थ गये । गाड़ी योग की, नदी के किनारे जा रही है । मायाओं को चिन्तायें घेरे हैं । अरे अब क्या हो ! इसे सम्मान की मायाओं में फंसाओ । बस फिर क्या था भक्त जनों के समूह लगने लगे । योगी की जय-जयकार होने लगी । सम्मान और समान के ढेर लगने लगे । सेवक बनीं मायायें स्तुति गाने लगीं । किन्नर, गन्धर्व, अप्सराओं के झुण्ड जय-जयकार करने लगे । सम्मान निरन्तर बढ़ने लगा । रूप भरे मायाओं के समूह, उसे महामण्डलेश्वर बनाने को लालायित करने लगे । उत्तर मिला, "अरे ! उस आत्मा कृष्ण; उस "ॐ" के अतिरिक्त यहां गुरु कौन है ? मैं तो भक्त हूँ । गुरु तो विस्तार है, बनना मुझे सूक्ष्म है, तभी परम् है जो व्रह्म से भी; उसका ज्ञान मिल सकेगा । गुरु तो मेरा कन्हाई है । ॐ है ! मैं तो उसके भक्तों का भी भक्त हूँ !

घट-घट में है जब मेरा घटवासी तो मैं तो भक्त हूँ घट-घट का । क्या अपने गुरु का गुरु बनूंगा मैं ! मुझसे यह पाप हो सकेगा नहीं । आप सबमें जो है सो गुरु है मेरा ! आप सब मेरे गुरु मन्दिर हैं ! मेरा प्रणाम स्वीकार करें ।

अरे ! इसने सुख त्यागे ! धन वैभव त्यागा ! ज्ञान को फेंक चला ! सम्मान का पाखण्ड भी छू सका नहीं है इसको ! अब कैसे रोके इसे ! कैसे तोड़े इस गाड़ी के पहिये । एक पहिया ही टूट जावे तो काम बने ! इसके तीनों पहिये, वेदों ने; गीता ने; मजबूत कर दिये हैं, टूटते नहीं हैं ! और कोई उपाय करो । कुछ माया फैलाओ नई । यह तो योग गंगा के किनारे पहुंचने ही वाला है । जो देख लिया एक बार, उस पार नन्द के गांव को, तो सारी माया छिन्न-भिन्न हो जावेगी । फिर सब खेल नष्ट हो जावेगा । इससे पूर्व ही रोको इसे ! तोड़ो कोई पहिया इसकी गाड़ी का । सारे रोड़े अटकाये, फँदा ले गया खिलाड़ी, अब क्या हो ?

अरे जगाओ माँ प्रकृति को ! बोलो तेरा बालक जा रहा है, बन्धन तोड़-कर इस ग्रह की माया के ! फिर न लौटेगा कभी ! रोको इसे ! जैसे भी हो रोको इसे । किसी खिलौने से तेरे यह अब बहलता नहीं है । जिद्द पकड़ ली भारी है । रोक इसे मात प्रकृति, जा रहा पुजारी है !

भक्तगण ! प्रकृति की तुलना मैंने इस स्थान पर माता से की है ; जिस प्रकार बच्चे के बाहर जाने की जिद्द पर मां उसे नाना खिलौनों से बहलाने की कोशिश करती है और बहला भी लेती है । कभी ऐसा भी होता है कि बालक जिद्द पकड़ लेता है तो मानता ही नहीं; बहलता ही नहीं । तब खीजकर माता उसकी डण्डे से पिटाई भी कर देती है । बालक जब फूट-फूट कर रोने लगता है तो उसे गोद में लेकर पुचकारती भी है और स्वयं भी रो उठती है, फिर थपकी देकर सुला देती है ।

यही स्थिति माँ प्रकृति की भी है । जब तोड़ के नियम सारे, योगी आत्म-मार्ग से निकलने लगता है, तो माँ प्रकृति नाना माया रूपी खिलौनों द्वारा रिझाने की कोशिश करती है । उसे इन्द्रियों के सुख में फंसाने का प्रयास करती है । जिससे यह बालक उस खेल में व्यस्त हो जावे, बाहर जाने का ध्यान ही न आवे इसको । यह इन सुखों में फंसा स्वयं को जानने का प्रयास ही न करे । जब बालक बहलता नहीं इन खिलौनों से तो धन-वैभव रूपी नाना मायाओं के खिलौनों से रिझाती है । जब यह धन-लक्ष्मी भी उसे अन्तर्मुखी होने से नहीं रोक पाती, तो वह ज्ञान के अथाह भण्डार देकर ज्ञान के ढोंग और दम्भ के महापाप में फंसाना चाहती है । फंसा नहीं जब बालक इस मायावी मिथ्या जाल में, उलझा न सकी जब मां प्रकृति उसे, तो नाना सम्मान का छलावा दिखाकर इन मायावी खिलौनों से रिझाना चाहती है । महामण्डलेश्वर बनाने का प्रयास, पुनः उसे लौटाकर चेला चेलियों के परिवार की माया में फंसाने का कपट फैलाती है । जब इसमें भी नहीं फंसा ! ज्ञान के सम्मान को ठोकर मार फेंक दिया बालक ने, सम्मान, प्रधानमंत्री से महामण्डलेवर का; राजा का, गुरु का भी ठोकर मार कर; करने लगा जिद्द अन्तर्मार्ग द्वारा भाग निकलने की; तो कुपित हो

उठती है माँ प्रकृति ! उठाती है डण्डा और चूर कर देती है योगी को ! राख-राख में बदल देती है उसे ! फूट-फूट कर रोती है ! पुनः अपनी गोद में लेकर सहलाती है। राख से वनस्पति में लाती है और उसे पुनः नन्हा बालरूप प्रदान कराती है। लालच मां प्रकृति का; बालक को पुनः उन्हीं खिलौनों से ललचाना। शायद इस बार मान जावे। बाहर जाने की इच्छा त्याग दे। फिर जो मांगे यह बालक सो दूँ इसे। रहे मेरे आंगन में ही। सामने मेरी आंखो के। मां का वात्सल्य भी है और खीज का वीभत्स स्वरूप भी है।

अरे देखो ! वह देखो !! सीढ़ी-सीढ़ी उतरता राम है। माँ गंगा की गोद में करने आया स्नान है। पवित्र दिन है दीवाली का ! योगी बहल न सका है खिलौनों से ! प्रकृति विकराल है ! योगी शान्त है ! अन्तर के मार्ग में देख लिया है घनश्याम को ! चल दिया है मार्ग पर ! निकलने वाला है बाहर ! तभी खीज का वीभत्स रूप दिखाती है माँ प्रकृति ! जा रहा है ! वह जा रहा है !! गंगा में आया यह कैसा तूफान है ? कौन बना है कंस ? किसे बनाया माध्यम माँ प्रकृति ने ! फिर रो रही है फूट-फूट कर ! कोस रही है स्वयं को। फिर जोड़ेगी कण-कण को और खिलावेगी गोद में अपनी !

अरे ! कोई कह दो माँ प्रकृति को ! ठग रहा है यह ढोंगी इन्द्र तुझे ! री भोली ! जाने दे ! बालक को आंगन से बाहर; पुकार रहा है इसे कन्हाई ! जब वात्सल्य तेरा लिप्साओं में बदल जाता है; तू माँ नहीं रहती है। कंस से ठगी माता, तू पूतना बन जाती है। मत कर ! मत कर !! यह पाप अति भारी है ! जो चेत गया योगी और कृष्ण बन बैठा, तो फिर पूतना की गति ही तुम्हारी है। हर बार चलेगा यह खेल नहीं ! विकराल होगा फिर बालक; होकर प्रलयंकर सारा खेल तेरा कर देगा बिन्दु-बिन्दु ! इसे शान्त नन्हा सुकुमार ही न जान, यह प्रलयंकर भी है ! तोड़ देगा सारे खिलौने तेरे ! खण्ड-खण्ड कर देगा तेरे द्वार ! होकर विकराल ध्वस्त कर देगा खेत-खलिहान तेरे ! अरे ! जान कि

मोह, लिप्सा, वात्सल्य सब फेंक दिये हैं इसने । मत छेड़ ! मत छेड़ !! जाने दे । रो लेना एक बार ! फिर यही बनके सृष्टा उतरेगा तेरे आंगन में । चाँद और सितारों की झिलमिलाती चुनरिया ओढ़ा देगा तुझे ! इसकी मुस्कान से ही रोम-रोम पुलक उठेंगे तेरे ! तेरे एक-एक खेत में, खलिहान में, जंगल में, मैदान में, नदी-पहाड़ों में ! पेड़ों में, पुष्पों में मुस्कराता फिरेगा, झिलमिलाता फिरेगा, चहकता फिरेगा, यह लाल तेरा कन्हैया बनकर !

भक्तगण ! इस प्रकार योगी जब सम्पूर्ण इन्द्रियों की लिप्साओं से त्यक्त हो जाता है तथा इन्द्रियों के चिन्तन को अन्तर्मुखी करके, वहिर्मुखी चिन्तन से मुक्त हो जाता है, तो योग का शुभारम्भ होता है । शोक और हर्ष में; मित्र और शत्रु में; सुख और दुख में; राग-द्वेष और मोह-वात्सल्य में; जो सम भाव में स्थित हो गया है, अर्थात् चिन्तन से मुक्त तथा लिप्साओं से त्यक्त होने के कारण विरक्त हो गया है—मात्र वही योगी है । इसके अतिरिक्त योगी नहीं है कोई ।

मयूरासन, शीर्षासन, कुक्कुटासन आदि व्यायाम क्रियाओं को योग कहना मूर्खता है । यदि यह मुर्गासनादि ही योग हैं तो सर्कस के जोकर भी महा योगीराज हो जावेंगे और मात्र मोक्ष के अधिकारी होंगे । योग है इन्द्रियों की लिप्साओं को त्यागकर चिन्तन की दिशा को अन्तर्मुखी कर वाह्यजगत से विरक्त होते हुए बुद्धि का आत्मा से योग (मिलन) करना ।

यहाँ एक बात और भी स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि मात्र लगोंट-धारी ब्रह्मचारी नहीं होता है । यह बहुत गलत व्याख्या है । यदि एक इन्द्रिय को 'नथ' लेने से व्यक्ति ब्रह्मचारी के सम्मान का अधिकारी हो सकता है; तो इस धरा के नपुसंक, हिजड़े सब मोक्ष के अधिकारी हो जावेंगे और ढोलक लिये स्वर्ग में भी नाचते नजर आवेंगे । जनता भग-वान से मनावेगी कि हमारे कुल में भी एक जन्मजात ब्रह्मचारी दे, जिसको मोक्ष मिले, तो सात पीढ़ियों का भी साथ में उद्धार हो जावे ।

अरे ! जो दशरथ है सो ब्रह्मचारी है ! अर्थात् जिसने दसों इन्द्रियां रथ ली हैं तथा जो ब्रह्म के परम् ज्ञान को मात्र लक्ष्य मानकर अन्तर्मुखी हो परम् ब्रह्म से योग करने चल दिया है, सो ब्रह्मचारी है । अन्यथा ब्रह्मचारी नहीं है कोई ! क्योंकि गुरुकुल को ब्रह्मचर्य आश्रम की संज्ञा दी गई तो उसको एक इन्द्रिय की लिप्सा से ही जोड़ दिया गया । ऐसा नहीं है !

पाप और पुण्य क्या है ? इसको जानना परमावश्यक है । दसों इन्द्रियों की लिप्साओं से प्रेरित होकर किया गया कर्म पाप है तथा यज्ञ के लिये किया गया कर्म महापुण्य है । अर्थात् कर्म में न कहीं पाप है; न पुण्य है । लिप्सा यदि प्रेरणा है, तो महापाप है; आत्मयज्ञ की भावना से प्रेरित है, तो महापुण्य है ।

शरीर की रक्षा के लिये लिया गया भोजन महापुण्य है क्योंकि स्वयं आत्मा उसे यज्ञ कर रक्त, मांस व हड्डी में परिवर्तित करेगा, तो शरीर बलिष्ठ होगा । इस प्रकार मुख के द्वारा लिया गया भोजन महापुण्य हुआ । परन्तु पेट भर खाना पाकर फिर स्वाद के लिये लिया गया भोजन महापाप है । इससे शरीर सड़ेगा, यह महापाप है । जिस शरीर को मैं बना न सका; उसे नष्ट करने का अधिकारी कैसे हो गया । इस प्रकार शरीर की रक्षा के लिये; आत्मा के यज्ञ के लिये, लिया गया भोजन महापुण्य है अन्यथा महापाप है । इसी प्रकार कर्म में कहीं दोष नहीं है । दोष भावना का ही है ।

हत्या ! कत्ल !! यह न पाप है, न पुण्य है । एक हत्या की तो मारा लोगों ने, अपमानित किया और फांसी चढ़ा दिया । सौ कत्ल किये तो परमवीर और महावीर चक्र दिये । भारी सम्मान मिला । यदि हत्या कर्म ही पाप होता तो सम्मान मिलता क्यों उसे ?

अन्तर लिप्सा और आत्मयज्ञ का है । जब लिप्सा से प्रेरित हत्या की तो महापापी ! महापातकी कहाया !! फांसी चढ़ा दिया गया ! जब देश और जाति की रक्षा के लिये, आत्मा के त्याग से प्रेरित होकर; अपने

प्राणों पर खेलकर; युद्धभूमि में सैकड़ों शत्रु मार गिराये तो परमवीर और महावीर कहाया ! सम्मानित हुआ ! अलंकृत हुआ ! एक लिप्सा थी, तो पाप था; यज्ञ की प्रेरणा थी, तो वही कर्म महापुण्य था !

सम्भोग महायज्ञ है और महापाप है। सन्तान की उत्पत्ति के लिये किया सम्भोग एक महान पवित्र यज्ञ है। इससे एक मन्दिर की सृष्टि होती है, जिसमें स्वयं आत्मारूपी कृष्ण, प्रभु ॐ मूर्ति बनकर प्रकट होते हैं। तो एक मन्दिर बनाने का जो पुण्य है, उससे कहीं महान पुण्य उस सम्भोग का है। परन्तु केवल सुख और लिप्सा के लिये किया गया सम्भोग; चाहे कितना भी नैतिक क्यों न हो; महापाप है, नर्क की अग्नि में झोंकने वाला है।

इस प्रकार दसों इन्द्रियों में ही सम्पूर्ण पाप-पुण्य समाये हुए हैं। जीभ के स्वाद के लिये खाये गये अनावश्यक पदार्थ का उतना ही महापाप है, जितना कि वासना मात्र के लिये किया गया परस्त्रीगमन। महापापी है तू, यदि स्वाद के लिये सड़ा रहा है शरीर को। इस प्रकार यज्ञ के हेतु किया गया कर्म, महापुण्य है ! मोक्ष देने वाला है !

लिप्सामात्र के लिये किया गया कर्म, महापाप है। नर्क देने वाला है।

'यज्ञ ही पुण्य है ! अयज्ञ ही पाप है !'

इसका विस्तार हम पुनः यथास्थान करेंगे। अभी तो उद्देश्य आपको दशरथ मार्ग का संक्षिप्त दर्शन कराना है !

'दशरथ ही तो दर्शन सनातन है !'

दसों इन्द्रियों को नियन्त्रण में लाकर भक्त आत्ममार्ग के द्वारा अपने शरीर पर मायाओं का प्रभाव योग से घटाने लगा।

Where there is gravity—decay. No gravity no decay—no decay no death—state Immortal.

तब योगी जब तेजचक्र को प्रबल करने लगा, शरीर के तेज चक्र (human aura) जब विस्तार को प्राप्त हो, मायाओं को दूर निरस्त्र करने लगा, तो मायाओं का प्रभाव घटने से शरीर का विघटन भी घटने लगा। आयु बढ़ने लगी।

शारीरिक रूप से भी मायाओं को घटाने के लिये, मैदानों से उठकर पहाड़ों की ओर बढ़ने लगा। मैदानों में माया (gravity) का भार अधिक रहने से, योग एक स्थिति के उपरान्त आगे सम्भव नहीं हो पाता है। उसको कम माया-दाब के क्षेत्र पर जाना आवश्यक हो उठता है। इससे योग सफलता पूर्वक चल सकता है। यदि योग को अधिक गहन, मैदान में योगी करेगा, तो योग के उपरान्त उसे गहरी माया होने से झटका लगेगा। यह झटका उसके लिए शारीरिक एवं मानसिक दोनों ही प्रकार से घातक है। माया बाहर भी यदि घटती चले, तो सन्तुलित योग से शीघ्र ही अपने लक्ष्य को प्राप्त हो सकेगा। झटका न लगने से नुकसान भी नहीं होगा।

शरीर का विघटन घटने से, शरीर को भोजन की आवश्यकता भी स्वतः घटने लगती है। मैं आपसे एक प्रश्न पूछना चाहूँगा; आप जो भोजन लेते हैं उसका मात्र पाँच या सात प्रतिशत हजम कर पाते हैं, शेष तो मल के द्वारा विसर्जित हो जाता है। ठीक है न ! इससे स्पष्ट है कि आपको केवल पाँच या सात प्रतिशत भोजन की आवश्यकता है इस शरीर के ग्रहण करने के लिए। शेष भोजन तो अँतड़ियों के घर्षण के लिये चाहिए जिससे अँतड़ियों की गति निर्बाध रहे। यदि आप घर्षण-क्रिया को योग के द्वारा ही कर लें, तो आपको कितना भोजन चाहिए ?

पाँच या सात प्रतिशत ! ठीक !

इतना भोजन आपको तब चाहिए था, जब माया के कारण शरीर का निरन्तर विघटन हो रहा था तथा उसकी पूर्ति (repair) के लिये इस भोजन की आवश्यकता पड़ रही थी। जब शरीर का विघटन भी योग से; एवं माया को व्यवहारिक रूप से घटाने से; माया का प्रभाव नगण्य हो

गया तथा शारीरिक विघटन भी माया का प्रभाव घटने से अति न्यून हो गया, तो अब आपको कितना भोजन चाहिए ?

दो या तीन प्रतिशत ! ठीक है न !

इतना भोजन तो नदी का जल (mineral water) ही इस शरीर को दे देता है । तब आपको कितना और क्या-क्या चाहिए भोजन में ?

इस प्रकार, बन्धुगण ! योग में स्थापित योगी समाधि की स्थिति को प्राप्त होता है । शरीर की न्यूनतम आवश्यकता को स्वयं प्रकृति ही पूरा करने लगती है । जैसे-जैसे उसकी समाधि का प्रभाव बढ़ता है, वैसे-वैसे वह कम माया क्षेत्र (lower gravity field अर्थात् ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों पर बढ़ता चला जाता है । इसी का नाम स्वर्गारोहण है । माया को घटाकर, शरीर के क्षीरसागर का विस्तार करता हुंआ, मस्त योगी मेरा निरन्तर परन्तु धीरे-धीरे शरीर के साथ-साथ वाह्य माया का प्रभाव भी घटाता हुआ बढ़ता रहता है । सात हजार फीट; नौ हजार फीट; ग्यारह हजार फीट; तेरह हजार फीट और बढ़ता चल रे योगी ! होगा स्वर्गारोहण तेरा ! शरीर का क्षीरसागर बढ़ता चल रहा है । तेज शरीर पर प्रकट होने लगा है । अरे देखो ! मेरा योगी एक नक्षत्र की भांति जगमगाने लगा है । बढ़ता चल रे योगी निश्चित है मिलन अब तो ! क्षीरसागर का तेज फैलने लगा है शरीर पर ! विघटन शरीर का समाप्त हो चुका है ! अब तो योग की नदी में प्रवेश कर गया है वह ! दीख रहा सामने नन्द का गाँव है । यज्ञ निरन्तर है ! ब्रह्म; तेज में परिवर्तित हो रहा है; यज्ञ हो-हो होकर ! अब उसे आक्सीजन भी चाहिए नहीं ! शरीर के प्रत्येक (atom) अणु को इच्छानुसार ढालने में समर्थ है ! योगी बर्फ के पहाड़ों पर निरन्तर झूमता बढ़ रहा है योग और समाधि लेता । उसके शरीर का प्रकाश अब दूर-दूर तक फैलने लगा है ! अरे ! क्या देखा तुमने योगी मेरा ! उसे आक्सीजन नहीं चाहिए ! उसे भोजन नहीं चाहिए !! वह तो स्वयं पूर्ण हो गया है । अरे जगवालों ! उसे कुछ नहीं चाहिए तुम्हारा ! तुम्हें चाहिए हो कुछ तो माँग लो उससे !! उसका शरीर

लगभग भारहीन स्थिति को प्राप्त हो चुका है, माया का प्रभाव शरीर पर न रहने से। अरे ! देखो !! वह पतली बर्फ पर चला जा रहा है और धंसता नहीं है ! पवर्तारोही देख रहे हैं आश्चर्य से कि पिघली बर्फ पर मस्त चला जा रहा है वह ! आश्चर्यचकित हैं ! कहीं यह छलावा तो नहीं! भ्रम तो नहीं !! कैसी सुन्दर नीली-नीली रोशनी निकल रही है शरीर से इसके ! कौन है यह ?

अरे ! गजब देखो ! वह तो समाधिस्थ पृथ्वी से ऊपर उठने लगा है। उसके शरीर से निकलता प्रकाश तीव्र हो उठा है ! जगमग नक्षत्र सा दिखने लगा है ! पहाड़ की चोटी से ऊपर उठता चल रहा है ! उसका स्वर्गारोहण जारी है !

तेज को तेज में ढाल रहा है ! तेज को भज रहा है ! तेज ही हो रहा है ! माया का भ्रम लुट गया है, चल दिया उस पार है ! शरीर का ऊपर उठना निरन्तर जारी है ! जैसे-जैसे शरीर ऊपर उठ रहा है, तेज भी निरन्तर बढ़ता जा रहा है। अब सूर्य सा दिखने लगा है ! अरे ! देखो! देखो !! कितना मोहक है; कितना सुन्दर है; कितना अद्‌भुत है ! तेज के वस्त्राभूषणों से अलंकृत देखो ! ऐसा मोहक रूप दिखेगा कहाँ ? झूम रे योगी झूम ! आज पंख लगे हैं तुझे ! कैसी अद्‌भुत घड़ी है मिलन की ! कैसा अद्‌भुत है यह मिलन ! कि तू, तू न रहे; मैं, मैं न रहूँ ! मिले जो गले; तो दोनों, न मालूम कहाँ खो गये ! अब एक ही दिख रहा है खड़ा वहाँ ! जो खड़ा है, वह न एक है न ही दूसरा ! अरे कहाँ गये वे दोनों ? कहाँ से आया यह तीसरा ? ठहरो ! यही तीसरा ही है, वे दोनों !! अरे ! मिले नहीं हैं, जुड़ गये हैं ! नहीं !! जुड़े नहीं हैं, समा गये हैं ! मिटा के अस्तित्व अपने-अपने ! बना दिया है एक ही अस्तित्व नया ! द्वैत बन बैठा, अद्वैत है !

देखो ! अब बहुत दूर एक तीव्रतम नक्षत्र सा लग रहा है योगी मेरा ! तेज के अतिरिक्त नहीं पड़ता कुछ दिखाई है ! रात्रि में भी दिन का प्रकाश हो रहा है। सम्पूर्ण पर्वत जग-मग हो रहा है। तभी ! तभी!!

तेज का एक तीव्र झम्माका ! सहस्त्रों सूर्यों का प्रकाश ! ! उसके बाद ? अरे ! कहाँ है योगी मेरा ? अरे कहाँ गया वह ? दिखता नहीं है अब तो ! निकल गया ! निकल गया तोड़ के बन्धन इस पृथ्वी की माया के ! सम्मुख है महाविष्णु के क्षीरसागर में ! जय हो ! जय हो ! ! हे महात्मा ! तेरी स्तुति गा रहा हूँ मैं ! यूँ ही तो गये थे तुम गुरु वृहस्पति ! इसी से तो उस ग्रह को नाम दिया मैंने वृहस्पति ! जय हो ! जय हो ! !

छोटे पहाड़ों पर बने मन्दिरों में आये दर्शनार्थी सोच रहे हैं कि, बिजली गिरी है उस ऊंचे पहाड़ पर । मुस्करा रहा हूँ मैं ! झूम-झूम कर स्तुति गा रहा हूँ मैं ! अरे देखो ! मेरा उप-गुरु, मेरा मार्ग-दर्शक वृहस्पति ! शरीर का गुरुत्व स्वयं लेकर मेरा प्रथम गुरु हो गया है । स्वयं सृष्टा महा-प्रभु हो गया है । 'ॐ' है वह ! ब्रह्मा-विष्णु-महेश है वह, कृष्ण है वह, राम है वह ! शेषनाग पर शयन करते महाविष्णु के सम्मुख खड़ा है क्षीरसागर में ! जय हो तुम्हारी ! ! जय हो तुम्हारी ! ! प्रणाम लो इस शिष्य का ! स्तुति लो इस भक्ति की !

आऊंगा एक दिन पुनः चरणों में तुम्हारे ! तोड़ ले यह प्रकृति ! सौ बार ! सौ-सौ बार ! ! नष्ट कर दे ज्ञान मेरा तो भी क्या, शिष्य भटक सकता नहीं तुम्हारा ! भटकेगा कैसे ? जिसका गुरु अबोधकाल से स्वप्न साथी हो ! नित्य आत्म प्रेरक हो । उसे भटका सकता नहीं कोई है । हर बार टूटा, सहस्त्र बार टूटा ! अज्ञानी बन भटकता फिरा, युग फिसलते रहे; स्वप्न चलते रहे । खुल जाने दो ! खुल जाने दो रहस्य सारे ! परवाह नहीं; कौन क्या कहता है चाह नहीं ! अब प्रलयंकर बनेगा भक्त तुम्हारा ! हे देवगुरु ! हे देवाधिदेव ! शत-शत नमन् ! अब तो युद्ध होगा ! शिष्य तुम्हारा प्रलयंकर होगा ! मायायें त्राहि माम् पुका-रेंगी ! सृष्टियाँ थर्रा उठेंगी ! माँ प्रकृति ! अब न रोक पावेगी तू ! तेरे बन्धन टूटेंगे ! यह आत्मद्रोही युग-युग का; गुरु-द्रोही असंख्य जन्मों का ! अरे ! आत्म-भक्त बन गया है; गुरु-भक्त बन गया है ! गुरु के मार्ग का अनु-सरण करेगा ! आत्म-स्वरूप बनकर ही रहेगा ! मात्र लक्ष्य है ! मात्र लक्ष्य है !

हे मेरे युगों-युगों के साथियो ! मेरे अनन्य मित्रो ! भक्तजनों !! मत मानो बात मेरी ! पर मत ठुकराओ बात मेरी ! इस बात का निर्णय लो आत्मा से; कि सत्य है, जो कहता हूँ अथवा नहीं ! इसका निर्णय कैसे हो ! सुनो कथा सुनाता हूँ, एक अनजानी !

युद्ध हुआ था भारी ! ब्रह्मास्त्रों (atomic warheads), पशुपतास्त्रों (cosmic warheads) का खुलकर प्रयोग हुआ । इस अन्तर्ब्रह्मांडीय युद्ध में कितने ही ग्रहों का अस्तित्व मिट गया । कितने ग्रह जनविहीन हो गये । इस युद्ध में यह पृथ्वी भी बुरी तरह क्षति-ग्रस्त हुई । संस्कृति का, ज्ञान-विज्ञान का लोप हो गया । कहीं-कहीं इक्का-दुक्का परिवार रह गये धरा पर । सम्पूर्ण नष्ट हो गया !

वेदव्यास लिखते हैं कि, वेदरूपी वृक्ष की सहस्त्र शाखायें थीं, कटवा दी इन्द्र ने । अरे ! क्यों दोषी ठहराया इन्द्र को ? क्योंकि इसी मन इन्द्र की भ्रामक लिप्साओं के कारण ही तो अन्तर्ब्रह्मांडीय युद्ध हुआ था । सन्यासी और दोष दे किसको ! लिप्सा से भ्रम, भ्रम से दम्भ, दम्भ से क्रोध, क्रोध से विनाश—करा दिया इन्द्र ने ! पुनः अपने ज्ञान के आधार पर, वेदव्यास जो महर्षि, देवगुरु वृहस्पति के शिष्य थे, वेद का यथाशक्ति पुनरुद्धार करते हैं ।

फिर छा जाता है गहन अन्धकार । नष्ट जाति से कैसे सम्भले यह पृथ्वी ? भाषा वेद की लुप्त हो जाती है । काल के गहन अन्धकार को भेदकर आता है पाणिनि नामक चर्मकार, जो नया व्याकरण बनाकर महा-शिव की कृपा से, भाषा का उद्धार करता है । परन्तु उसका व्याकरण समर्थ नहीं है कि वेद का अनुवाद कर सके । वेद की भाषा रहस्य बनकर रह जाती है । समय फिसलता जाता है । नाना सम्प्रदाय टिड्डियों की भाँति सनातन को खाने लगते हैं; नये धर्म, नई मान्यतायें ! तभी स्वयं वेदव्यास महर्षि संजय बनकर अपने ही वंश में पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं । तपस्वी वेद रचना करता रहा था । तपस्या पूर्ण हो न सकी थी । पुनर्जन्म लेना पड़ा ।

वेदव्यास, जो संजय बने हैं, स्वयं अपने वेद ही नहीं पढ़ पा रहे हैं। क्यों ? क्योंकि बुद्धि, जो दस इन्द्रियों का अर्जन है, उसने तो पाणिनि का व्याकरण पढ़ा है, जो वेद भाषा का व्याकरण नहीं है। संजय अन्तं-प्रेरणा से जानते हैं कि वेद उन्हीं के हैं, परन्तु विडम्बना कि बुद्धि उसे अनुवाद करने में असमर्थ है। क्या करे संजय ?

संजय सम्पूर्ण वेदों को कण्ठस्थ कर लेते हैं। योग के द्वारा वेद की प्रत्येक ऋचा को गोपी का स्वरूप देकर आत्मा कृष्ण के संग रास कराते हैं और महानतम् पुस्तक गीता प्रकट हो जाती है। यूं रास रचाई आत्मा कृष्ण ने, गोपियों के संग, वेद की और बिना जाने व्याकरण वेद का, रच दी पुस्तक संजय ने !

हे भक्तों ! यही मात्र मार्ग है सत्य को जानने का। स्थूल इन्द्रियों से भ्रम मिलेगा, भ्रम तर्क बनेगा। सूक्ष्म ज्ञान चाहते हो तो जो कह रहा हूँ, आत्मसात् कर लो फिर संजय की भाँति उस आत्मा कृष्ण से पूछो ! रहस्य खुलने लगेंगे। सत्य उजागर होगा। सन्देह रहेगा न बाकी। तर्क सदा बहिर्मुखी रखेगा तुम्हें, दशानन बना देगा, दशरथ बनो और पूछो सृष्टा आत्मा से कि सत्य क्या है !

सशरीर तेज के बिना मोक्ष नहीं है। सोचो ! मोक्ष का पद तो गीता में ब्रह्म और देव को भी दुर्लभ बताया है कन्हाई ने ! हे अर्जुन ! देव और ब्रह्म भी शान्त होते हैं। मैं सनातन हूँ, नित्य हूँ ! तो जो अपने शरीर रूपी मन्दिर का उद्धार तो कर न सका, समाधि में दफन होकर सड़ने के लिये अथवा चिता पर राख बन पुनः सड़ने के लिये छोड़ दिया— उसे; ब्रह्म को भी दुर्लभ हो जो; देव भी नहीं पा सकते जिसे; वह पद मिला कैसे ? दिया किसने ? और जो आत्माकुण्ड में यह शरीर यज्ञ कर ही न सका उसे आत्माभक्त कहा किसने ? जिसने इस कुण्ड को देखा ही नहीं; यज्ञ किया ही नहीं, उस आत्मद्रोही को मोक्ष प्राप्त हुआ कैसे ?

तू मुझे चाचा कह ! मैं तुझे मामा कहूँ !! तू मुझे धर्मात्मा कह, मैं तुझे धर्मेश्वर कहूँ !! यह नाना ढोंग और पाखण्ड से अन्धा बना रहे हो

किसको ? यज्ञहीन को फल कैसा ? यज्ञेश्वर ही मोक्ष का अधिकारी है। मनभावन सिद्धान्तों से स्वयं को अन्धा बनाओ मत ! संग अपने मानव जाति को भटकाओ मत ! ! यह महापाप है ! निकृष्ट पाप योनियों में भटककर युगान्तरों सड़ते रहना इसका फल है।

यह मार्ग है मेरा ! सनातन हूँ मैं ! भले पा सकूँ न इसको ! तोड़ दे यह प्रकृति ! ! पुनः डाल दे चिता पर ! फिर क्या ? मार्ग बदलेगा नहीं ! सिद्धान्त टलेगा नहीं ! देखना जो लेटा मुझे चिता पर, तो जान लेना कि पापी मोक्ष पा सका नहीं है। सड़ने चल दिया है पुनः। इसका अर्थ न लगाना कि भक्त आपका धर्मात्मा था ! नहीं ! ! धर्मात्मा तो होगा तब, जब बदलेगा सशरीर तेज में ! तोड़ दे यह प्रकृति भले; गम नहीं है कोई ! सौ बार करे ऐसा तो भी अन्तर नहीं है कोई ! हर बार लड़ूंगा इससे ! ! कभी तो तोड़ सकूंगा बन्धन इसके ! कभी तो बन सकूंगा प्रलयंकर ! चूर कर दूंगा मापदण्ड इसके ! !

अभी तो गाण्डीव के स्थान पर यज्ञोपवीत है। जब पति गहने भी लुटा लेता है, तन पर पत्नी के एक गहना भी नहीं रह जाता है, तो बेचारी गले में डोरी डाल लेती है। आह ! वही स्थिति है आज मेरी ! अन्तर्ब्रह्माण्डीय धनुर्धर; छिनवा बैठा है अस्त्र-शस्त्र और बनकर बृहन्नला छिपा बैठा है यहां पर ! अरे आज गाण्डीव नहीं, तो क्या मैं धनुर्धर नहीं ! पा न सका मार्ग आत्मा का, तो कहने लगूं कि वह मार्ग ही नहीं ! वेद गाते हैं जिसे; गीता सुनाती है जिसे, वही मार्ग है ! वही मार्ग है ! ! अन्यत्र मार्ग नहीं है कोई ! भटकाव है ! भटकाव है ! ! मात्र पुनरावृति है ज्ञान की, शरीर की। भटकते सम्प्रदायों के संग भटको नहीं। संशय और तर्क की विषैली, कटीली झाड़ियों में उलझो नहीं ! दिशा लो ! अन्तर में देखो ! दिखेगा कि कितनी बार मिले हैं हम ! किस-किस रूप रंग में मिले हैं। यह मिलन अधूरे हैं इसलिये छूट जाते हैं हम ! आओ कि मिलन हो पूरा ! झूमें संग कन्हाई के !

ज्ञान-कर्म-भक्ति के तीनों पहियों को मजबूत करो। सन्देह को

फेंक कर, मायाओं को निरस्त्र करते हुऐ, चलो चलें ध्यान मार्ग पर। झूमते गाते रथ, कृष्ण के दीवानों के ! पहुँचेंगे योग की नदी के पास ! नहायेंगे और धो डालेंगे धूल सारी पथ की ! फिर हनुमान की छलाँग और पहुचेंगे उस पार ! रोकेगी सुरसा, तो सूक्ष्म हो जावेंगे निकल, हम तो भक्त हैं ! सूक्ष्मातिसूक्ष्म के पुजारी हैं ! हमें रोक सकेगा कौन ! फंसेगा वही जो सूक्ष्म भक्त न होकर, विशाल गुरु होगा। हमें चिन्ता क्या ! हमारे पास न सम्मान की चाह है, न भार है ! न ज्ञान का भण्डार है ! हम मूढ़ भक्त कन्हाई के ! हमें रोक सकता कौन है !

उस पार होगा मिलन हमारा ! उस पार कन्हाई का गांव है ! मिलन होगा ऐसा कि मिलकर फिर विछुड़ न पावेंगे ! इस ओर है माया भारी, जो मिला सो मिथ्या सारी ! उस पार मिलन है सनातन ! यहां है स्वप्न ! स्वप्न से स्वप्न !! वहाँ है सत्य ! नित्य ! सनातन !!

मोक्ष मात्र लक्ष्य है ! दशरथ मात्र मार्ग है !
सनातन मात्र धर्म है !

हरि ॐ नारायण हरि !!
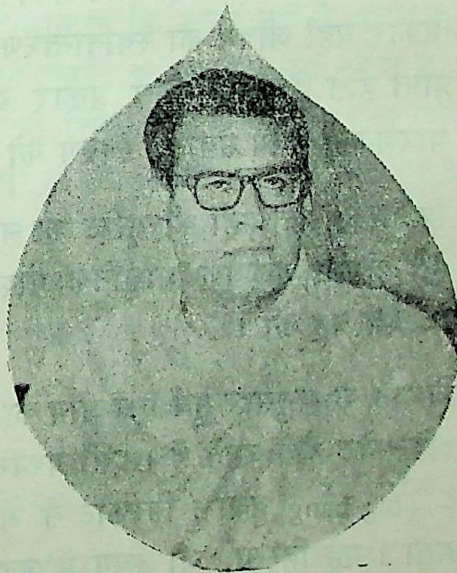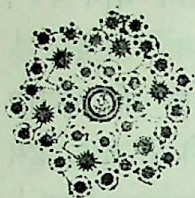
चतुर्थ अध्याय

वेद चक्षु

भक्तगण !

आप महात्माओं की भक्ति और श्रद्धा से मोहित हो, कोटि-कोटि अभिनन्दन करता है, आपका भक्त ! ज्ञान यदि भक्ति एवं श्रद्धा से रहित है तो मात्र भटकाव है ! ढोंग है !! पाखण्ड है !! ज्ञान से महान है श्रद्धा एवं भक्ति !! आप महान हैं ! मेरे द्वारा दिये गये सनातन प्रवचन को आप प्रश्नरहित, शंकारहित हो, भक्ति एवं श्रद्धा से सुन रहे हैं। मेरे ज्ञान से आपकी श्रद्धा-भक्ति अति महान है !! श्री हरि मुझ पापी को भी आप जैसा भक्त बना दें—ऐसा आशीर्वाद दीजिये मुझको !

आज आप महाप्रभुओं को सुनाऊंगा, कि किस प्रकार यज्ञ के द्वारा नाना ग्रह, नक्षत्र आदि की सृष्टि होती है, किस प्रकार यह पृथ्वी अस्तित्व में आई तथा किस प्रकार यहाँ जीवन का स्थानान्तरण हुआ; किस प्रकार ग्रह महाप्रलय को प्राप्त होते हैं; तथा किस प्रकार ग्रह महाप्रलय को न प्राप्त हो रुद्रवलय धारणकर, नित्य सनातन स्वरूप को प्राप्त हो जाते हैं।

पूर्व इसके कि, मैं आपको ग्रहों की सृष्टि का सनातन मत सुनाऊं; कुछ उस विषय में भी बताता चलूं कि आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिक भी कैसे दिखाते हैं, सृष्टि इस ग्रह की।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार सूर्य एक आग का जलता हुआ गोला है। इसमें निरन्तर विस्फोट होते रहते हैं। इसी प्रकार एक बार सूर्य में अति भारी विस्फोट (big bang) हुआ। विस्फोट से सूर्य का एक हिस्सा टूटकर अलग हो गया। यह हिस्सा, जो स्वयं में जलता हुआ गोला था,

पुनः विस्फोट के कारण दो भागों में विभक्त हो गया। एक हिस्सा पृथ्वी बना और दूसरा चन्द्रमा। दोनों धीरे-धीरे ठन्डे पड़ने लगे। पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करने लगी और चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करने लगा। जैसे मोम पर पपड़ी सी ठन्ड से जमने लगती है, वैसे ही इस पृथ्वी पर भी पपड़ी जमने लगी। निचले हिस्सों में भाप ठन्डी होकर पानी बनी। पानी से सागर लहराने लगे।

सागर में अचानक उत्पन्न हो गये, दो प्रकार के एक कोशीय जीव, ऐमीबा और बैक्टीरिया। यह जीव धरती पर चढ़ाई कर दिये। धीरे-धीरे यह एक कोशीय से दो और नाना कोशीय जीवों में परिवर्तित होते चले गये। वगैरह ! वगैरह !!

बन्धुओं ! यह कहानी विज्ञान की, जो सुनाते हैं आपको वैज्ञानिक लोग ! एकदम बेसिर-पैर की बेबुनियाद है। सनातन जब घेरता है तो बगलें झांकने लगते हैं।

पूछा इनसे, कि महाराज ! यदि पृथ्वी इसी प्रकार अस्तित्व में आई है तो बाकी ग्रहों की सृष्टि कैसे हुई ? उत्तर नदारत !

"पूछा—यदि मान लें कि पृथ्वी सूर्य से अलग हुई, तो बताओ सूर्य क्या है" ? कहने लगे "आग का जलता हुआ गोला है, एटामिक रियेक्टर है। पृथ्वी के किसी भी रियेक्टर से कई करोड़ गुना अधिक गर्मी वहाँ है।" "ठीक !! इतनी गर्मी में ठोस अथवा तरल तो रह ही नहीं सकता। इतनी अधिक गर्मी में तो पदार्थ का विघटन (decay) सूक्ष्म अणुओं (atoms) में स्वतः हो जावेगा। वहाँ तो पदार्थ (एलीमेन्ट) भी नहीं बना रह सकता।" पूछा—आपके भक्त सनातन नें।

"ठीक ! है !! हम आपसे पूरी तरह सहमत हैं। Matter shall always split into atoms in such a heat. These atoms may further become radio-active and cosmic due to temperature."

"तब तो मित्रो ! सूर्य से धमाके (blast) के साथ जो अलग हुआ

होगा वह radio-active atoms का एक समूह (mass) रहा होगा।"

"निस्सन्देह !! बिल्कुल ठीक !" बोले वे !

वे अणु (atoms) जब धमाके के साथ क्षीरसागर (space) में आये तो माया (gravity) न होने से, उनकी गति का ह्रास ही नहीं हो सकता। माया (gravity) से ही प्रतिघर्षण (friction) होता है जिससे शक्ति का परावर्तन होने से गति मन्द होती है।

"बिल्कुल ठीक !!" माना उन्होंने।

"तो महाराज ! यदि सूर्य से कुछ अलग हुआ तो वह समूह (mass) था radio-active atoms का, क्षीरसागर (space) में उनकी गति रुक ही नहीं सकती थी। तो बताओ कि वह समूह पृथ्वी कैसे बन गया ? स्पष्ट है कि radic-active atoms एक दूसरे से लड़कर करोड़ों प्रकाशवर्ष दूर, नाना-ग्रहों पर गये होंगे; तथा उन ग्रहों की माया से उनकी गति परावर्तित हुई होगी। तब क्या प्रत्येक अणु ने प्रत्येक अणु को टेलीफोन करके पूछा होगा कि, अरे भाई ! तुम कितने करोड़ प्रकाशवर्ष दूर निकल गये। याद नहीं, अपन को क्षीरसागर में अमुक स्थान पर लौटकर जुड़ना था, पृथ्वी बनना था।"

"अरे भाई ! यदि यह आपका विज्ञान है तो कोरी गप्प किसे कहोगे ? यदि यह आधुनिक वैज्ञानिक उपलब्धि है तो किस्सा तोता-मैना तो महानतम उपलब्धि हो जावेगी।" बन्धुओं ! आपके भक्त के प्रश्नों का उत्तर देने में, समर्थ नहीं है, आज विश्व का सारा वैज्ञानिक समाज। उनका विज्ञान अब उन्हें ही शर्मिन्दा कर रहा है।

सुनो ! अब क्या कहते हैं सनातन वेद एवं गीता ! हिरण्यगर्भ में, क्षीरसागर में, यज्ञ के द्वारा ग्रहों की सृष्टि होती है। जय हो ! जय हो सनातन तुम्हारी !! करोड़ों; करोड़ों; अनगिनत वर्षों पूर्व की मान्यता कट न सकी है और कटकर रह गया वैज्ञानिक आज का। स्तब्ध है ! अवाक है !! जिस कहानी पर नाना पारितोषिक बटे हैं वही कहानी मात्र

बकवास बनकर रह गई है।

ज्योति जली क्यों ? लपट उठी क्यों ? क्योंकि सूक्ष्म ब्रह्म (atoms) जब छिटककर अलग हो गये, पदार्थ (matter) से, तो उनके चारों ओर का क्षीरसागर नष्ट हो गया। पदार्थ में रहने से क्षीरसागर (space) था तो माया (gravity) प्रभावहीन थी। परन्तु क्षीरसागर के हटते ही सूक्ष्म-ब्रह्म को माया घेरने लगी। क्या करे सूक्ष्म-ब्रह्म ? ब्रह्म अमर है ! परन्तु माया में तो उसका विघटन (decay due to gravity) होगा। किस प्रकार अपने अमरत्व को बनाये रखे ! माया के पैनें बाणों को निरस्त्र करने के लिये ब्रह्म कुपित (radio-active) हो उठा और उसका स्वरूप विराट होने लगा (atom expands; atom does not break) उसकी नाना भुजायें (electrons) प्रकट होने लगीं और तेजस्वी स्वरूप धारण कर मायाओं को निरस्त्र करता हुआ, सुदर्शन चक्र की नाईं घूमता हुआ, वह ऊपर को उठने लगा। इस प्रकार मायाओं को निरस्त्र कर क्षीरसागर (space) में आया तो पुनः शान्त हो उसी सूक्ष्म-बिन्दु स्वरूप में आ गया। ऐसे ही असंख्यों बिन्दु निरन्तर क्षीरसागर में जुड़ते रहते है। नन्हीं-नन्हीं गोलियों का स्वरूप धारण कर लेते हैं। ये नन्हीं गोलियां अनन्त क्षीरसागर में दौड़ती रहती हैं, तथा निरन्तर मायाओं को परास्त कर, क्षीरसागर में प्रवेश करते सूक्ष्म-ब्रह्म को, स्वयं में समेटती रहती हैं। इस प्रकार ये गोलियां आकार का विस्तार करती हैं और उल्काओं का स्वरूप धारण कर लेती हैं। ये उल्कायें यदि किसी ग्रह की माया में प्रविष्ट हो जाती हैं तो इनका उल्कापात हो जाता है।

परन्तु यदि ये उल्कायें किसी भी ग्रह की माया में प्रविष्ट नहीं होतीं—तो क्षीरसागर में धीरे-धीरे सृजन के द्वारा ग्रह के स्वरूप को प्राप्त हो जाती हैं। इस प्रकार क्षीरसागर में, हिरण्यगर्भ में यज्ञ के द्वारा बिन्दु ग्रह के स्वरूप को प्राप्त होता है; जिस प्रकार माता के गर्भ के क्षीरसागर में बिन्दु बालक के स्वरूप को प्राप्त होता है। बिन्दु से बालक बना है, गर्भ में क्षीरसागर के, यज्ञ के द्वारा ! उसी प्रकार बिन्दु से ग्रह बना है, हिरण्य गर्भ के क्षीरसागर में, यज्ञ के द्वारा !

अरे ! प्रकृति ही तो सनातन है । उसका प्रत्येक नियम ही तो सनातन है । जैसे बना बालक, तैसे बना ग्रह । बोलो इन महान नोबल इनामी वैज्ञानिकों को, कि काट दिखायें मत सनातन के !

जिस प्रकार किसी ग्रह की माया का गर्भ पर प्रभाव आने से, गर्भ-पात हो जाता है, ठीक उसी प्रकार माया के प्रभाव में आने से, उल्कापात हो जाता है । अरे मेरे कोटि-कोटि सनातनो ! पहचानो कि क्या धर्म है तुम्हारा ? विज्ञान का चरम है जो, सो सनातन धर्म तुम्हारा है । आत्मा का धर्म, प्रकृति का धर्म ही, मात्र धर्म है । सम्प्रदाय धर्म हो सकते नहीं हैं । धर्म के नाटक कहो उनको !

ब्रह्मा ! विष्णु ! ! महेश ! ! ! धारक—सृजक—संहारक ! !

ब्रह्मा के ब्रह्म (सूक्ष्म-विन्दु) जब विष्णु शक्तियों द्वारा जुड़ने लगे क्षीरसागर में, तो होने लगी सृष्टि नूतन ग्रहों की ! बिन्दु उल्काओं में एवं उल्कायें ग्रहों के स्वरूप को धारणकर परिक्रमाओं को प्राप्त होने लगीं । इन ग्रहों पर निरन्तर उल्कापात होने से इनका भार बढ़ता रहता है तथा ये ग्रह जिस ग्रह की परिक्रमा को प्राप्त हैं, उससे अपनी बढ़ती हुई माया का सन्तुलन करते हुये निरन्तर पीछे हटते रहते हैं । माया का भार निरन्तर बढ़ता जाता है । इसका जीवन्त उदाहरण आपकी पृथ्वी ही है । इस पर माया का प्रभाव निरन्तर बढ़ रहा है । इसे विश्व के सम्पूर्ण वैज्ञानिक मानते हैं । इस प्रकार शनैःशनैः ग्रह पर माया (gravity) का प्रभाव निरन्तर (ग्रह के स्वरूप का उल्कापात द्वारा बढ़ने के कारण) बढ़ता रहता है और माया के विस्तार को प्राप्त होता, ग्रह पीछे हटता रहता है । उसकी परि-क्रमा का विस्तार होता जाता है । एक समय वह भी आता है जबकि ग्रह अत्यधिक माया के विस्तार को प्राप्त होने के कारण परिवार (सूर्य परि-वार, complex) के छोर पर आ जाता है । तभी एक तीसरा पुच्छल तारा पास से गुजरा अथवा अचानक कोई विशाल उल्कापात हुआ । माया का एक अचानक झटका—टूट चला ग्रह परिवार से बाहर, सारे ग्रहों से अपनी माया का अनुपात एवं नियन्त्रण खोकर भागने लगा, अनन्त क्षीरसागर में ।

Balance of gravities with different planets of complex was lost. Total gravity of planet fell on the planet. Total gravity resulted in total decay of that planet. Thus entire planet disintegrated into radio active atoms due to absolute gravity. This is MAHA-PRALAYA.

इस प्रकार ग्रह जब माया का सन्तुलन खो बैठा, तो सारी माया का प्रभाव उस ग्रह पर आने से सारा ग्रह विघटन को प्राप्त होकर सूक्ष्म ब्रह्म-बिन्दुओं में परिवर्तित हो गया। यह ब्रह्म-बिन्दु अति कुपित हो, माया से संघर्ष कर पुनः क्षीरसागर में आकर शान्त होने लगे। पुनः नन्हीं-नन्हीं गोलियों में जुड़ने लगे। ग्रह का बिन्दु-बिन्दु में परिवर्तित हो जाना ही महाप्रलय है।
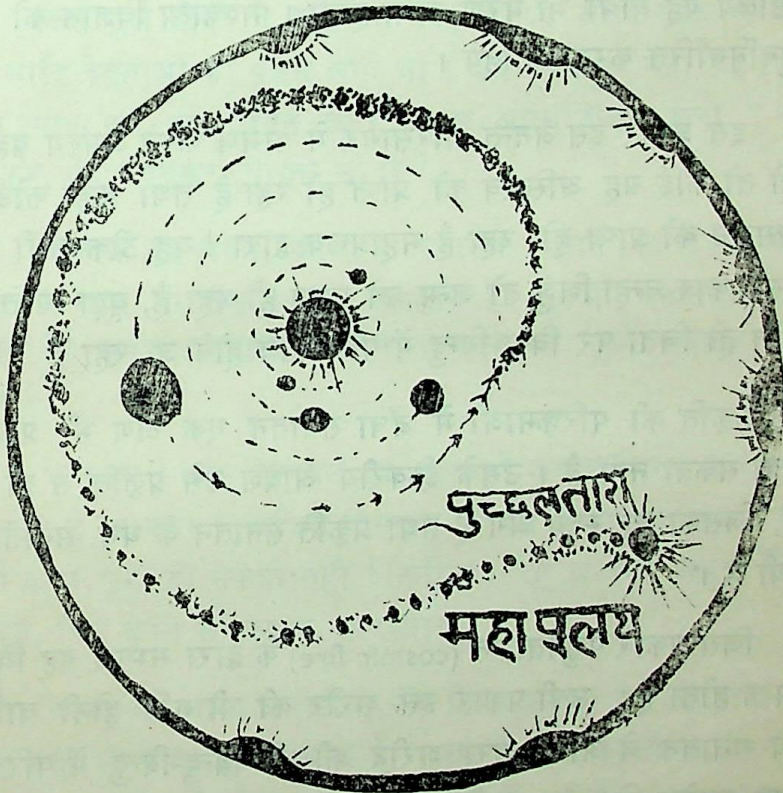
धूम्रकेतु, पुच्छल तारे वस्तुतः महाप्रलय को जाते ग्रह हैं, जो

अपने परिवार (complex) से टूटकर अब बिन्दु-बिन्दु में बदल रहे हैं तेज के ! उनके पीछे जो आप तेज की पूंछ देखते हैं; वह विसर्जित होता ग्रह का ब्रह्म ही है ।

पाश्चात्य विद्वानों का भ्रम है, कि यह निरन्तर परिक्रमा करते रहते हैं । यह सरासर निर्मूल है । यदि पुच्छल तारे परिक्रमा पथ पर होते, तो उनके साथ ग्रहों का समूह रहना चाहिये तथा माया नियन्त्रण से निश्चित मार्ग पर उन्हें चलना चाहिये । ऐसा कुछ नहीं है । दशानन मार्ग पर महाप्रलय को प्राप्त होता ग्रह ही पुच्छल तारा है ।

प्राचीन काल से ही नाविक तथा लम्बी यात्रा पर जाने वाले यात्री इसे अशुभ मानते आये हैं । चूंकि यह तारा स्वयं-मरण पथ पर जा रहा है, इसलिये यह यात्रा भी मरण यात्रा होगी । पाश्चात्य विज्ञान को अपना मत पुर्नानिर्धारित करना चाहिये ।

इस प्रकार इस अनन्त क्षीरसागर में भ्रमण करते असंख्य ब्रह्माण्डों में कहीं तो कोई ग्रह अस्तित्व को प्राप्त हो रहा है तथा कहीं कोई बूढ़ा ग्रह विसर्जन को प्राप्त हो रहा है महाप्रलय द्वारा ! यह ठीक उसी प्रकार है, जिस प्रकार नन्हा शिशु तो जन्म को प्राप्त हो रहा है, बूढ़ा व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हो चिता पर बिन्दु-बिन्दु में परिवर्तित होने जा रहा है !

प्रकृति की परिक्रमाओं में बँधा सनातन एक क्षण भी प्रकृति से अलग हो सकता नहीं है । उसके ईश्वरीय आदेश उसे प्रकृति से ही प्राप्त होते हैं, जिसका वह स्वयं अंग है तथा प्रकृति सनातन के धर्म, सनातन का अनुयायी है ।

जिस प्रकार पशुपताग्नि (cosmic fire) के द्वारा सम्पूर्ण ग्रह विन्दुओं में विभक्त होता है; उसी प्रकार इस शरीर की भी गति होनी चाहिये । इसलिये सनातन ने अग्नि द्वारा शरीर को भी बिन्दु-बिन्दु में परिर्वतित करने का आदेश दिया । दूसरी ओर उसने इस तथ्य का भी ध्यान रखा कि नवजात शिशु अथवा छोटा बालक तो छोटी-बड़ी उल्काओं के समान

है। इसलिये उसने छोटे बालक एवं शिशु को अग्नि द्वारा विसर्जन से वर्जित कर उल्कापात की भाँति जलप्रवाह कर देने अथवा दफन कर देने का आदेश दिया। प्रकृति का नियम कहीं भी भंग न होने पावे।

सनातन ने इतना ही नहीं, वरन् प्रत्येक स्थिति का पूरा ध्यान रखा। उसने देखा कि, ग्रह सदा परिवार से बाहर जाकर ही विसर्जन को प्राप्त होता है। सनातन ने अपने अनुयायियों को भी आदेश दिया, कि चौथी अवस्था में वे भी गृह त्याग कर, वानप्रस्थ हों एवं परिवार से दूर जाकर शरीर का त्याग करें। प्रकृति के अंग, प्रकृति के नियम के विपरीत जा सकते नहीं हैं !

किस मूर्ख ढोंगी ने कहा था कि, मनुष्य आदि काल में भय से अग्नि आदि देवताओं को पूजने लगा था। अरे नयनसुख महाराज ! भीषण भाषण त्याग कर कुछ मनन करो ! कुछ आत्मचिन्तन करो ! दीवारें टटोलकर, पैर रगड़कर, चलना छोड़ो !

विज्ञान का चरम, आज है सनातन ! ज्ञान का चरम, आज है सनातन ! मात्र सनातन ! मात्र सनातन !! तू भी सनातन ! मैं भी सनातन !! सर्वत्र सनातन ! सर्वत्र सनातन !! एको सनातन द्वितीयो नास्ति !

भक्तगण ! प्रभु सनातन का ज्ञान तो अथाह सागर है। पृष्ठभूमि सुना रहा हूँ आपको ! अधिक विस्तार में इस समय जा सकता नहीं हूँ, वरना कथा पूरी हो सकेगी नहीं ! परिचय रह जावेगा अधूरा ! सुनेंगे, सुनायेंगे, फिर कभी सविस्तार, बारम्बार !

जाना मेरे नाना प्रभुओं ने, कि किस प्रकार यज्ञ के द्वारा आत्मा कृष्ण, प्रभु, ॐ नाना सृष्टि करते हैं ! यज्ञ के द्वारा वनस्पति की सृष्टि का रहस्य बताया; यज्ञ के द्वारा सम्पूर्ण चराचर की सृष्टि का रहस्य बताया ; यज्ञ के द्वारा नाना ग्रह, नक्षत्रादि की सृष्टि का रहस्य बताया। यज्ञ के द्वारा सशरीर तेज में परिवर्तित हो यज्ञेश्वर पद की प्राप्ति का मार्ग

दिखाया। संक्षेप में चल रहा हूँ। विषय अति भारीं है। अभी तो आप प्रभुओं को सुनाऊंगा कथा क्षीरसागर मन्थन की। चाचा डारविन बोले एमीबा-वैक्टीरिया पितर हमारे !

डारविन साहब के अनुसार यह एक कोशीय जीव सागर में, 'मूड' में आकर पैदा होने लगे। 'मूड' बिगड़ा तो धरती पर धावा बोल दिया। एक कोशीय से द्विकोशीय हुए, फिर बहुकोशीय जीवों की सृष्टि करने लगे। एक वनस्पति बना, दूसरा जीवधारी बन बैठा। फिर यह महादानव (मैमल) बन बैठे। फिर घटने लगे और वर्तमान स्वरूप में आ गये। बन्दर से आदमी बन गया।

डारविन साहब की अति सुन्दर कहानी अब उतार कर फेंक दी गई है। उनकी कहानी इसी शर्त पर स्वीकार की गई थी कि यदि एक कोशीय जीव कालान्तर में द्विकोशीय में परिवर्तित हो सका तो पुनः अनुसन्धान किया जावेगा। एककोशीय जीव का तब से अब तक निरन्तर परीक्षण होता रहा। परन्तु डारविन साहब की धारणा एकदम गलत सिद्ध हुई। दूसरी बात डारविन साहब की जो नहीं समझ में आती है, वह यह है कि जब पृथ्वी पर माया (gravity) कम थी तब तो एमीबा-वैक्टीरिया अति विशाल-काय जीवधारियों में परिवर्तित हो गए, तथा बढ़ती माया के साथ उन्हें अधिक बढ़ना चाहिये था, वह लौट कर छोटा क्यों होने लगा ? क्या सत्य का विलोम भी सत्य साबित किया जावेगा ? (higher gravity, higher decay, higher shape and size; lower gravity, lower decay, lower shape and size.) इस प्रकार उल्टी गंगा बहाने से काम चलेगा नहीं। फिर यदि मनुष्य बन्दर की ही सन्तान है तो इन बन्दरों में यह क्रम लुप्त क्यों हो गया ? जब माया (gravity) कम थी तब एमीवा और बैक्टीरिया मैमल बन गये और अब जबकि माया (gravity) अति विस्तार को प्राप्त हो चुकी है तो क्यों नहीं बनते ये गाय, बकरी, मुर्गे, मुर्गियाँ। हड़ताल क्यों भाई ? प्रतिकूल परिस्थितियों में कमाल किये और अनुकूल परिस्थिति में बायकाट ! ऐसे सैकड़ों प्रश्न हैं जिनका उत्तर डारविन साहब नहीं दे

पाते हैं। थ्योरी फेल हो गई ! अब पुनः विश्व के सामने एक ही थ्योरी है ! सनातन की !

सनातन के अनुसार जीवन का इस लोक पर स्थानान्तरण किया गया था, न कि जीवन उग आया अचानक ! तब प्रश्न उठेगा कि इनकी सृष्टि हुई कैसे ? उसका उत्तर है यज्ञ के द्वारा, न कि ऐमीबा-बैक्टीरिया से ! यज्ञ के द्वारा क्षीरसागर में ही सृष्टि सम्भव है। माया में ब्रह्म का पुनर्सृजन सम्भव ही नहीं है। (Integration of atoms is possible only in space (gravity free zone), not in gravity. We can disintegrate the matter into atoms but we cannot integrate the atoms into new matters.)

माया में तो प्रलय ही सम्भव है पुनर्सृजन तो क्षीरसागर में ही हो सकता है। जब तक आत्माकुण्ड द्वारा वृक्ष का क्षीरसागर रक्षित है भस्मी सुन्दर वनस्पति में पुनर्सृजन को प्राप्त हो सकती है। परन्तु भस्मी को स्वतः ही वनस्पति अथवा रक्त में बदलना असम्भव है माया में ! इसीलिये वेद माया की निरन्तर चर्चा करते हैं।

ध्वनि पर अधिकार कर लिया है मानव ने। ध्वनि से भी तीव्र गति से चलने वाले यान बना लिये हैं। परन्तु विद्युत की गति नहीं पा सका। क्यों ? क्योंकि माया पर नियन्त्रण लिये बिना विद्युत की गति प्राप्त नहीं हो सकती ! माया पर नियन्त्रण मिल जावे तो यान, भारहीन स्थिति में, एक क्षण में एक लाख अस्सी हजार मील की गति से चलेगा और राख के अणुओं को रक्त, सोना, हीरा, केक आदि में स्वेच्छा से बदला जा सकेगा। एक वैज्ञानिक सत्य है यह ! अकाट्य है ! आप ही बताइये कि माया पर नियन्त्रण मिलने से कैसा तूफान खड़ा हो जावेगा ? माया पर नियन्त्रण मिल जावे तो मनुष्य अमर हो जावे; यह भी ध्रुव सत्य है। विश्व का कोई वैज्ञानिक इसे ठुकरा सकता नहीं है। माया को इसीलिये इतना अधिक महत्व दिया गया है। सनातन के अनुसार सम्पूर्ण चराचर निर्मित है जिनसे वे सम्पूर्ण सूक्ष्म विन्दु एक ही हैं। राख के सूक्ष्म अणु, रक्त के सूक्ष्म अणु,

लोहे, पत्थर के सूक्ष्म अणु मूलतः एक ही हैं। सृजन के रहस्य से इनके नाना रूप गुणादि प्रकट होने लगते हैं। एको ब्रह्म द्वितीयोनास्ति (atom is one)! परम्ब्रह्म का अर्थ है जो सूक्ष्म अणु से भी अति सूक्ष्म है तथा परम्ब्रह्मा का अर्थ है अति विशाल, जिसमें सम्पूर्ण लोक-लोकान्तर समाये हुए हैं। इस प्रकार परम्ब्रह्मा एवं परम्ब्रह्म के अन्तर को स्पष्ट जान लेना चाहिये। इसको अधिक स्पष्ट रूप से जानने के लिये पहले आपको महा-विष्णु के सुदर्शनचक्र के दर्शन करा दूँ। उस चक्र के देखने के लिये ज्यो-तिष की आँख को जगाना होगा। वेदस्य चक्षुः राहु !

सनातन ज्योतिष के अनुसार सर्वप्रथम इस धरती पर जीवन लाकर देवताओं ने इसे सजाया, संवारा। प्रश्न उठा कि 'काल-निरुपण-प्रणाली' क्या हो। ऐसा कौन सा सिद्धान्त बनाया जावे जो सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों को ग्राह्य हो। सनातन नियम बनाओ जो अनन्तकाल तक समय का सही बोध करा सकें।

काल तो मिथ्या है, गति ही सत्य है ! इसलिये गति को ही समय की इकाई बनाओ ! देवताओं ने मनन किया और सनातन-काल-निरुपण प्रणाली बनाकर इन धरावासियों को दी। ऐसी प्रणाली जो अनन्त काल तक गड़बड़ नहीं हो सकती।

प्रत्येक ग्रह का धुरी-भ्रमण (spin) उस ग्रह की दिवारात्रि होगी तथा प्रत्येक ग्रह की परिक्रमा उस ग्रह का एक वर्ष होगी। चूँकि कोई भी वृत्त छोटा हो अथवा बड़ा हो, उसके अंश ३६० (360 degrees) ही रहेंगे। इसलिये ३६० तिथियाँ वर्ष की रहेंगी। ३० तिथियों का माह एवं १२ माह का एक वर्ष अथवा एक परिक्रमा होगी। इसी प्रकार ३० अंश की राशि एवं १२ राशि का जन्म-चक्र रहेगा। इस प्रकार प्रत्येक ग्रह की समय की इकाई का अनुपात प्रत्येक ग्रह को मिल सकेगा तथा ग्रह चाहे परिक्रमा घटावें अथवा बढ़ावें परिक्रमा के अंश ३६० ही रहने से प्रणाली पर कोई प्रभाव नहीं आवेगा।

इस प्रकार प्रत्येक ग्रह के समय का अनुपात स्पष्ट हो गया। जैसे

पृथ्वी जितनी देर में एक परिक्रमा सूर्य की करती है, चन्द्रमा पृथ्वी की १२ परिक्रमा कर लेता है। पृथ्वी का एक वर्ष = चन्द्रमा के १२ वर्ष। जितनी देर में वृहस्पति सूर्य की एक परिक्रमा करता है, उतनी देर में पृथ्वी सूर्य की १२ परिक्रमा कर लेती है। इसलिये पृथ्वी के १२ वर्ष = वृहस्पति का एक वर्ष। इसी प्रकार शनि का एक वर्ष पृथ्वी के ३० वर्ष के बराबर आया।
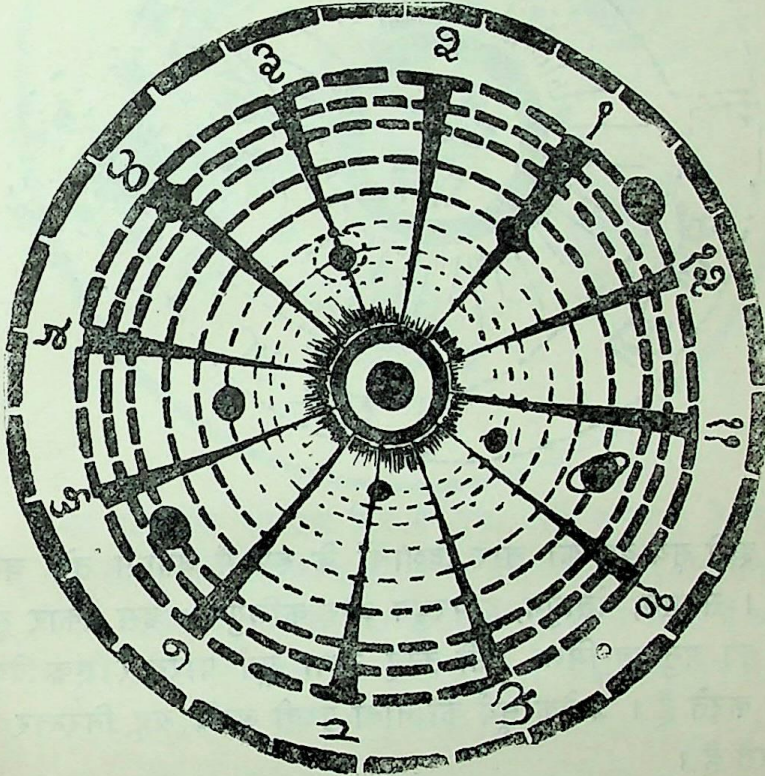
उसके बाद सनातन देवों ने बताया कि, इस सम्पूर्ण चराचर में सूर्य भी अस्थिर है। सूर्य अपने सम्पूर्ण परिवार के साथ परिक्रमा कर रहा है। जैसे पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करते हुये भी चन्द्रमा से अपनी परिक्रमा कराती है, उसी प्रकार सूर्य देवलोक की परिक्रमा करता हुआ अपने आधीन ग्रहों से निरन्तर अपनी परिक्रमा कराता है। इस प्रकार जितनी देर में सूर्य अपने ३६० अंश पूरे करता है, पृथ्वी सूर्य की तेंतालीस लाख बीस

हजार बार परिक्रमा करती है । इस प्रकार सूर्य का वर्ष पृथ्वी के ४३,२०,००० वर्ष के बराबर हुआ ।
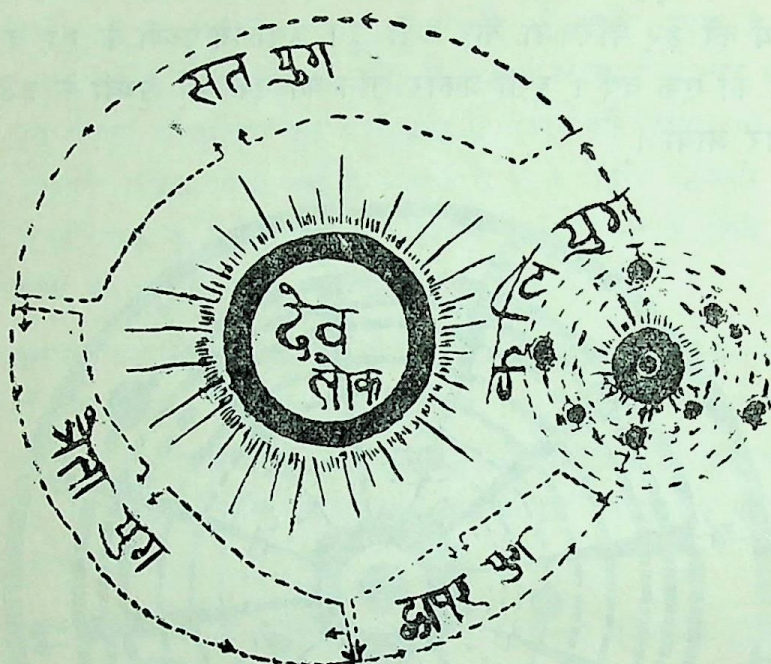
इसी सूर्य-वर्ष को चार दिशाओं के रूप में बताया तो, चतुर्युगी बना दी । सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग । इस प्रकार सूर्य के एक वर्ष का अनुपात मिला इसी तरह नाना सूर्य परिवार एक देव की परिक्रमा करते हैं । प्रत्येक सूर्य की नाना पृथ्वी आदि ग्रह निरन्तर परिक्रमा करते हैं ।

पुनः सनातन देवों ने कहा कि, यह देवलोक भी अस्थिर है । यह नाना देव ब्रह्मलोक की परिक्रमा करते हैं । जितनी देर में सूर्य एक हजार परिक्रमा देव की करता है, उतनी देर में देवलोक, ब्रह्मलोक की एक परिक्रमा पूरी करता है । इस प्रकार देवलोक का एक वर्ष सूर्य के एक हजार वर्ष के बराबर हुआ । अर्थात् १ देव-वर्ष = १००० × ४३,२०,००० वर्ष पृथ्वी के ।
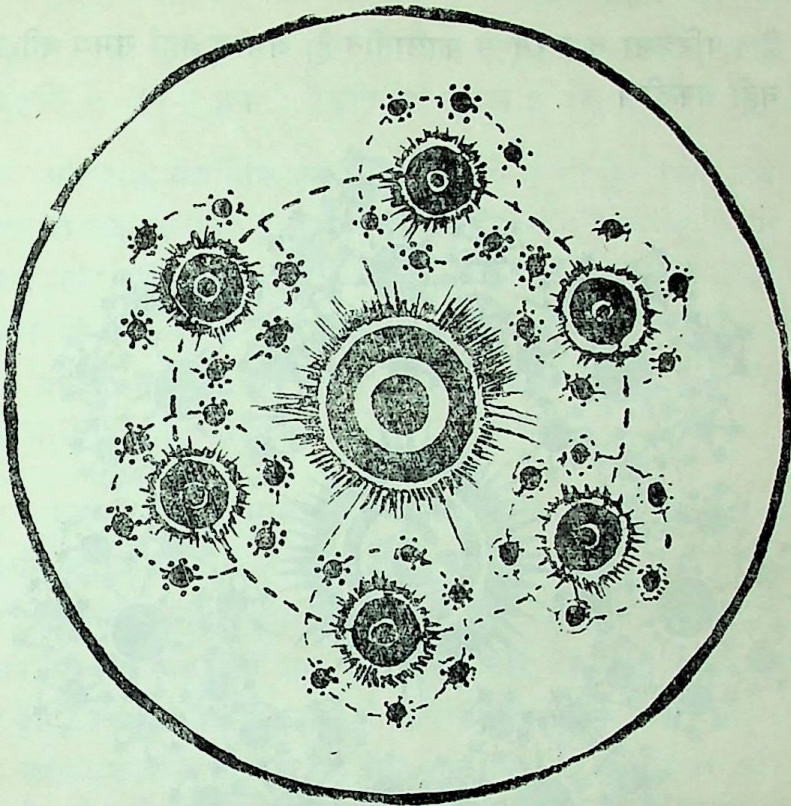
यह ब्रह्मलोक का एक दिन है तथा इसी अनुपात से रात्रि है। अर्थात् देव का १ वर्ष ब्रह्मलोक का १/२ अंश भ्रमण है, सनातन-लोक के चारो ओर ! इसी अनुपात से ब्रह्म ३६० अंश भ्रमण करते हैं और सनातन लोक की परिक्रमा करते हैं। इस तरह १ ब्रह्म-वर्ष = २ × ३६० × १००० × ४३,२०,००० वर्ष पृथ्वी के।

इस अनुपात से ब्रह्मा के पचास वर्ष बीत चुके हैं। ५१वें वर्ष के प्रथम दिन का उदय होकर १३ घटी, ४२ पल, ३ विपल, ४३ प्रतिविपल व्यतीत हो चुके हैं। अर्थात् इतने वर्ष इस पृथ्वी को, जबसे इस पर जीवन स्थानांतरित हुआ, ब्रह्मलोक की परिक्रमा करते हो चुके हैं। वर्तमान काल-निरूपण-प्रणाली इतने समय पूर्व ही इस धरा पर लायी गयी थी।

अब चलें सनातन-लोक-मण्डल, जिसका दूसरा नाम ही सुदर्शन चक्र है। सनातन का अर्थ है नित्य; जो किसी ग्रह की परिक्रमा नहीं

करता है। परिक्रमा न करने से कालातीत है, अर्थात् वहाँ समय की इकाई हो ही नहीं सकती।
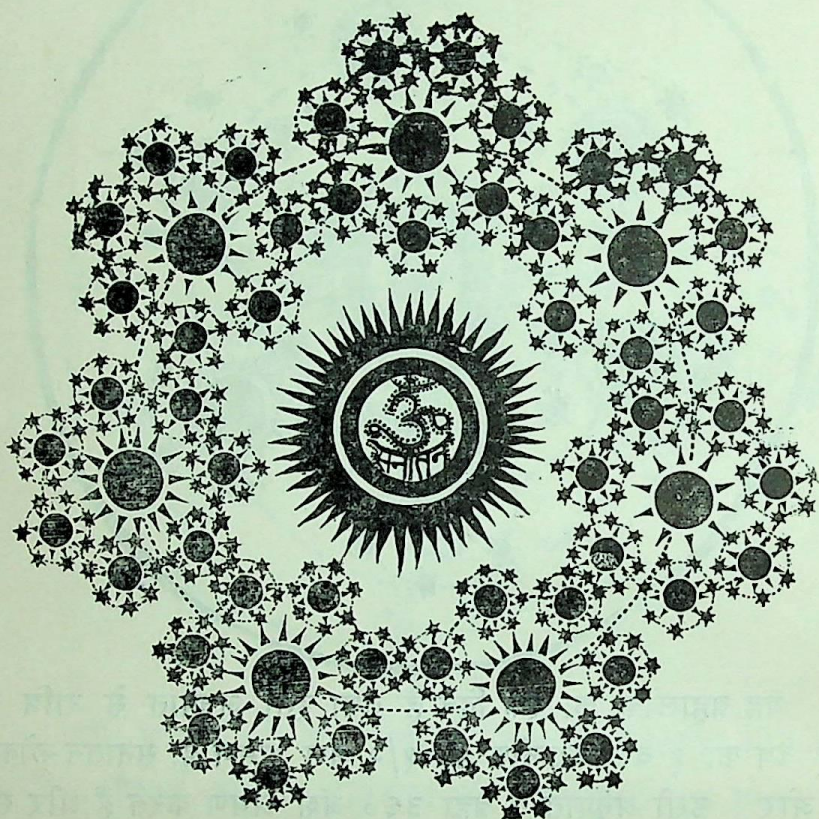
एक नित्य सनातन-लोक है, जिसके प्रत्येक ओर से नाना ब्रह्म उसकी परिक्रमा करते हैं। प्रत्येक ब्रह्म की, नाना-नाना देव प्रत्येक ओर से परिक्रमा करते हैं। प्रत्येक देव की, नाना-नाना सूर्य प्रत्येक ओर से परिक्रमा करते हैं। प्रत्येक सूर्य की, नाना-नाना ग्रह प्रत्येक ओर से परिक्रमा करते हैं। प्रत्येक ग्रह की हम और आप जैसे नाना-प्राणी प्रत्येक ओर से परिक्रमा करते हैं तथा प्रत्येक शरीर की नाना कोश परिक्रमा करते हैं एवं प्रत्येक कोश की नाना सूक्ष्म-ब्रह्म परिक्रमा करते हैं। इस सम्पूर्ण को सुदर्शन चक्र की संज्ञा दी है वेद सनातन ने! सनातन दर्शन जो सु+दर्शन है; सो सुदर्शन चक्र दिखाया मैंने आपको! अनन्त क्षीरसागर के अधिपति महाविष्णु इसे धारण करते हैं।

सनातन की परिक्रमा सर्वोपरि है। किसी प्रकार की भी पूजा, पाठ, हवन, यज्ञ, संस्कार परिक्रमा के बिना अपूर्ण एवं फलहीन माना जाता है। प्रकृति के अंग हैं हम ! प्रकृति को ठुकरा दें कैसे ?

पाश्चात्य वैज्ञानिक सूर्य को स्थिर मानते रहे हैं; परन्तु अब उनकी धारणा भी बदलने लगी है। उनके अनुसार Sun is moving in the destination unknown. हम कहते हैं महाराज ! अब धर्म संकट छोड़ो। आगे की बात भी मान लो। 'दिशा अज्ञात' कोई अपनी मर्जी से तो सूर्य चलेगा नहीं। प्रकृति का अंग है, प्रकृति के नियम के अनुरूप ही परिक्रमावत् चलेगा। लेफ्ट-राइट करने से रहा।

हमारी बात वे मानें कैसे ? हमारा अस्तित्व ही क्या है ? इतिहास अटवर्धन-पटवर्धन से शुरू होता है। वेद का काल, रामायण का काल, गीता का काल, कहीं है ही नहीं। लगता है यह किताबें अचानक अनाधिकार इस देश में चली आईं हैं। फिर कोई वैज्ञानिक यही बात कहेगा और हम दिवस मनायेंगे उसका ! कर्पंरनिकस की पाँचवीं शताब्दी मनाई गई, लाखों रुपये खर्च किये गये एवं एक मार्ग का नाम रखा गया। उसने आज से पाँच सौ वर्ष पूर्व बताया था कि, पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है।

वेद द्वारा अभिशप्त, इन कर्णधारों से पूछो, कि पृथ्वी यदि सूर्य की परिक्रमा नहीं करती, तो काल-निरूपण-प्रणाली असंख्यों वर्ष पूर्व बनती कैसे ? आपने एक संस्कृति को तिरस्कृत किया है ;एक देश की सार्वभौमिकता को छिन्न-भिन्न किया है ; एक राष्ट्र का सम्मान अपने पैरों के नीचे कुचला है। समय रहते इसका प्रायश्चित हो जावे, तो अति उत्तम है अन्यथा हिरण्याकश्यप और रावण के पुतले आज भी जलते हैं। जिनके हाथ देश का सम्पूर्ण धन है, नियन्त्रण है, बागडोर है, उन्हें किसी भी नपुंसक बहाने से बच निकलने का अधिकार नहीं है। राष्ट्र का महान सम्मान चाहने वालों! सारा कर्तव्य तुम्हारे सिर है। उच्छृंखलता और उदण्डता, बहानेबाजी बचा न सकेगी। कर्म करो ! दिशा लो ! जन-जन पूजेगा तुम्हें ! आरती उतारेगा ! अमर हो जाओगे, लोक गीतों के नायक बनकर !

यहां एक बात और भी स्पष्ट कर देना चाहूँगा, कि नाग के फन पर पृथ्वी बैठी क्यों है। पृथ्वी से तात्पर्य पृथ्वी से है तथा नाग से तात्पर्य है, पृथ्वी की परिक्रमा का स्वरूप। इसे वेद ने स्पष्ट किया है। अर्थात् पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा एक मार्ग अथवा रेखा पर नहीं करती वरन् उसकी परिक्रमा का चलन वैसा ही है जैसे नाग पानी में चलता है। अगल-बगल तथा ऊपर-नीचे डोलता हुआ ही नाग सागर में चलता है, उसी प्रकार क्षीर सागर में पृथ्वी नागिन सी गति से सूर्य की परिक्रमा करती है। वैसे भी यह स्वयं सिद्ध है कि पृथ्वी नाना-ग्रहों की मायाओं का यथा-सन्तुलन रख कर ही अपनी परिक्रमा पूरी कर सकती है। प्रत्येक ग्रह चलायमान है तथा उल्काओं का भी निरन्तर बदलता प्रभाव रहता है। इसीलिए पृथ्वी की ऐसी ही नागिन की गति हो सकती है। एक महायुद्ध के उपरांत नष्ट संस्कृति ने दुबारा उन चिन्हों से स्वयं को पहचानना चाहा। कहीं सत्य से हटकर सत्य मान बैठे तो इसका यह अर्थ कैसे लग गया कि सत्य ही नहीं है।

यह भी नहीं भूलना चाहिए कि २०० वर्ष की गुलामी में शिक्षा के अंग भी यह ग्रन्थ नहीं रहे इसलिए अनुसंधान हो न सका। आजादी के बाद भी इस देश की दिशाहीन राजनीति इनको शिक्षा के माध्यम में न ला सकी; न ही यह वैज्ञानिक अनुसंधान का विषय ही बन पाया। साथ ही यदि किसी वैज्ञानिक ने पाश्चात्य विज्ञान से हटकर नई दिशा वेदों में ढूंढ़ना चाही, तो अवसर तथा सहायता उसे भारत में नहीं मिली ! अमरीका तैयार है ! यह अति दुर्भाग्यपूर्ण सत्य है, क्या भारत कभी भारत बन सकेगा ?

वेदों में ब्रह्मास्त्रों (atomic warheads) एवं पशुपतास्त्रों (cosmic warheads) का अनेक बार वर्णन आया है। देवयान (gravity controlled spaceship) का नाम ही नहीं, इसकी यान्त्रिक प्रणाली का भी स्थूल वर्णन है। आश्चर्य तो इस बात का है कि उसके अतिरिक्त कोई मार्ग भी नहीं हो सकता है, मायामुक्त यान का। इस यान का संक्षिप्त वर्णन आप भक्तजनों को सुनाता हूँ।
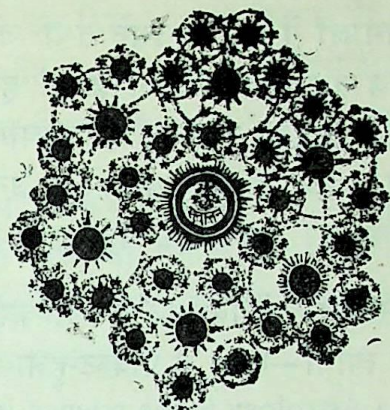
सुदर्शन चक्र की कार्यप्रणाली के अनुरूप ही देवयान का निर्माण होता था। एक कमाण्डशिप है, जिसके प्रत्येक ओर से मैगनेटिक कन्ट्रोल पर गोले तीव्रतम गति से घूमते थे। प्रत्येक गोले के हर ओर छोटे गोले उसी प्रकार घूमते थे, ठीक जिस प्रकार सनातन के चारों ओर परिक्रमा एवं धुरीभ्रमण कर रहे हैं ब्रह्म एवं देवलोक। इन्हीं तीव्रतम परिक्रमाओं से माया (gravity) को निरस्त्र (neutral) कर देवयान (spaceship) ऊपर उठने लगता था; और भारहीन स्थिति को प्राप्त हो विद्युतगति से क्षीर-सागर में प्रविष्ट हो जाता था। क्षीरसागर में पहुंचते ही उसकी परिक्रमा करते गोले माया के न रहने से उससे चिपक जाते थे और यान विद्युत से भी तीव्रतम गति को प्राप्त हो क्षीरसागर को पारकर इच्छित ग्रह की माया में प्रविष्ट हो जाता था। माया में आते ही पुनः पिण्ड धुरी-भ्रमण एवं परिक्रमा करके उसकी गति का नियन्त्रण करने लगते थे। माया को इच्छानुसार घटाता-बढ़ाता यान किसी बर्फीले पहाड़ अथवा ठण्डे सागर-तल पर उतर जाता था। मैदान में यह यान उतर नहीं सकते थे क्योंकि ऐसा करने पर उसकी गर्मी से सब कुछ ध्वस्त हो जाता। यान जब उतरते थे तो लाखों टन बर्फ भाप बन-कर उड़ जाती थी तथा नदियों में बाढ़ आ जाती थी। इसी से लोग इन्द्र की पूजा करते थे। इन्द्रयान का इस धरा पर कई बार आना दिखाया गया है। यह सब मात्र कोरी कल्पना हो ऐसा मानना एक महान मूर्खता होगी। सत्य है कि वेद लिखे हैं सन्यासी ने कविता रूप में ! वह वैज्ञानिक नहीं था। परन्तु जो विज्ञान उसने देखा

उसे अपने ढंग से उपमाओं में बताया उसने तथा जो वह मात्र उपमाओं में बता गया उसे आज तक न बदल सके, हम ! हमारी मान्यतायें नित्य बदलती रहीं । जागो हे सनातन जन-जन ! ! पहचानों कि तुम कौन हो ? क्या दर्शन है तुम्हारा ? कैसे थे पूर्वज तुम्हारे ? उनके ज्ञान का सहस्त्रांश मात्र भी तुम्हारे दर्शन को भूतल का महानतम दर्शन बना देता है ।

ज्योतिष ! सनातन की विशिष्ट उपलब्धियों में आता है । बालक ने क्षीरसागर गर्भ का त्यागा—माया में प्रविष्ट हुआ । मापने लगा माया के प्रभावों को ज्योतिषी । Astrology is the science which studies gravitational impacts on different subjects at different times and places. Comparative study of these impacts is the predictive side of astrology.

माया के भिन्न-भिन्न प्रभावों को मापने; उनका जन्म से आनुपातिक प्रभाव जानने; स्थान और समय पर गोचर के प्रभाव का फल नापने-वाली विद्या का नाम ज्योतिष है ।

आज का वैज्ञानिक तो जान ही नहीं पाया है कि माया क्या है और कितनी प्रकार की है ? ज्योतिष कल का महानतम् विज्ञान होगा । जिस प्रकार माया के प्रभाव के कारण मृत्यु को नहीं झुठलाया जा सकता, उसी प्रकार माया के प्रभाव का ज्ञान करानेवाली विद्या की महानता को भी न्यून नहीं किया जा सकता ।

सब खेल माया का है । सनातन के अनुसार सूक्ष्म-ब्रह्म विराट स्वरूप को प्राप्त होते हैं । पाश्चात्य में सूक्ष्म-ब्रह्म (atom) टूटते हैं ।

Sanatan believes in expansion of atom while western science believes that atom breaks. Sanatan says atom does never break, it expands according to the pressure of gravity and is competent to produce electrons and decrease their number when needed. Atom is one.

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का वह सूक्ष्म अणु जिसमें ब्रह्माण्ड की सर्व शक्तियां

निहित हैं—ब्रह्म है । यह बिन्दु एक ही प्रकार के हैं। उनको अलग-अलग प्रकार के कहना भ्रान्ति है। यह बिन्दु एक दूसरे से जुड़ते भी नहीं हैं, वरन् मोहित होते हैं। यह बिन्दु अमर हैं। इन्हें नष्ट नहीं किया जा सकता।

किसी भी पदार्थ को अणु मात्र में परिवर्तित करके उनका पुनर्सृजन किसी भी पदार्थ में किया जा सकता है। लकड़ी हीरा बन सकती है। पत्थर नवजात शिशु बन सकता है। जिसे आप कोरी गप्प कहते हैं, वह एक अटल वैज्ञानिक सत्य है।

Matter can be changed to light and light can be converted to desired matter,—say Sanatan Vedas.

And this will be the lone discovery of tomorrow,—says Bhakta Sanatan.

तत्व को तेज में रुद्राग्नि द्वारा परिवर्तित कर आत्मा उन्हीं तेज बिन्दुओं का पुनर्सृजन करती है तो राख वनस्पति में एवं वनस्पति रक्त, मांस आदि में परिवर्तित हो जाती है। इसलिये तत्व ही तेज है; तेज ही तत्व है। पदार्थ भारहीन स्थिति को प्राप्त हो तेज की गति को प्राप्त हो सकते हैं।

Therefore light is matter and matter is light. Matter can take the speed of light and can travel swifter than light. Space ship can move with the speed of light.

कल्पवृक्ष उल्टा है। उसकी जड़ें ऊपर को हैं; टहनियाँ नीचे हैं क्यों ? क्योंकि उपर क्षीरसागर में पहुंचते ब्रह्म; जो तेज में परिवर्तित हो ऊपर जाते हैं, जुड़कर नाना पदार्थों की सृष्टि करते हैं तथा उल्कापात द्वारा पुनः भू पर अवतरित होते हैं। इसलिये कल्पवृक्ष उल्टा है अर्थात् यह ऐसा पेड़ है, जो ऊपर से पदार्थ ग्रहण कर नीचे धरा पर हमको देता है। जड़ें ऊपर को हैं न ! रस ऊपर से लेकर उन्हें फलस्वरूप बना हमको नीचे प्रदान कर रही हैं।

यही रहस्य है यज्ञ का ! तेज में परिवर्तित ब्रह्म, क्षीरसागर में तेज-

बिन्दु जुड़कर नाना पदार्थों की सृष्टि करेंगे ! क्योंकि यह तेज ही तत्व है एवं तेज ही तत्व में परिवर्तित होगा।

Atom can expand to any extent. Single atom can cover the whole Universe,—says Gita.

ब्रह्म का विस्तार इतना विशाल हो सकता है कि एक ही ब्रह्म में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड समा जावे ! ऐसा विराट स्वरूप दर्शन दिया है गीता में !

वेद की वैज्ञानिक उपलब्धियों का अधिक विस्तार करना यहाँ ठीक न होगा। यह तो वैज्ञानिकों के सुनने की वस्तु है। यहाँ पर केवल अति संक्षिप्त रूप में आपको बता दिया है, जिससे आप जान सकें कि आपके वेद क्या हैं ? आज सारा विज्ञान क्षुब्ध खड़ा है और वेद मुस्करा रहे हैं। देखना एक दिन, लौटेंगे वेद सनातन के, भारत में कब ? जब यह गुलाम देश और गुलाम सत्ताधारी मानसिक-दासता त्यागकर भारत लौटेंगे ! सनातन आशावान है ! निश्चिन्त है !! शान्त है !!!

सनातन विज्ञान का सूक्ष्म-दर्शन मैंने आपको इसलिये दिया जिससे आप क्षीरसागर-मन्थन की कथा को वास्तविक रूप से जान सकें। क्षीरसागर-मन्थन "The Space Research," इसे कथारूप में सुनाऊंगा। इस प्रकरण में जहाँ "मैं" का उच्चारण करूं, उसका अर्थ मुझसे नहीं, उस महाप्रभु, सनातन, कृष्ण, ॐ, सर्वव्यापी परमात्मा से लगाइयेगा।

जैसे-जैसे ग्रह बढ़ता जाता है; उसका परिक्रमा-वृत्त निरन्तर बढ़ता जाता है। माया का प्रभाव गहन होता जाता है। माया का प्रभाव अधिक होने के कारण शरीर का विघटन भी तीव्र होने लगता है। इस विघटन (decay) को सहन कर सकने के लिये शरीर बढ़ने लगते हैं। इस प्रकार ग्रह अपने सम्पूर्ण जीवधारियों के साथ दानव (मैमल) स्थिति को प्राप्त हो जाता है। ऐसी स्थिति को प्राप्त ग्रह की महाप्रलय अवश्यम्भावी हो उठती है।

मैं, जो इस सुदर्शन-चक्र का अधिपति हूँ, सनातन लोक का स्वामी

हूँ, नाना ब्रह्मलोक तथा देवलोक अधिपतियों द्वारा पूजित हूँ, सम्पूर्ण चक्र की रक्षा करता हूँ ! मैंने दिव्य चक्षु से देखा कि कुछ काल उपरान्त सूर्य-लोक-मण्डल में जो जीवधारी ग्रह है, माया का भार अत्यधिक बढ़ जाने के कारण महाप्रलय को प्राप्त होगा । वहाँ जीवन भी दानव स्थिति को प्राप्त हो चुका है ।

मैंने देवलोक को (जिसकी यह सूर्य-परिवार परिक्रमा कर रहा है) आदेश दिया कि, हे देवो ! जाओ ! उस परिवार में, वह भूमण्डल सर्वनाश, प्रलय को चलनेवाला है । तुम तुरन्त कोई नया ग्रह ढूंढ़कर, उस पर जीवन स्थानान्तरित कर दो; जिससे अमुक सूर्य-परिवार में जीवन निरन्तर रहे और सृष्टि के चक्र में बाधा न आवे ।

अहंब्रह्मास्मि प्राप्त देव तेज की गति से क्षीरसागर में दौड़ चले; नये ग्रह की खोज में । इस अभियान का नाम दिया गया क्षीरसागर-मन्थन अर्थात् (space research) । देवों ने आदेश पाते ही क्षीरसागर में प्रवेश किया । नाना विशाल उल्काओं को देखा । परन्तु उन्हें उपयुक्त उल्का-पिण्ड मिला नहीं ! ढूंढते हुए वे एक अति विशाल उल्का-पिण्ड पर आये । यह पिण्ड ग्रह के सब गुणों को धारण कर चुका था । धुरी-भ्रमण एवं सूर्य की परिक्रमाओं को प्राप्त हो चुका था । माया भी उचित थी । निश्चय किया गया कि जीवन इसी ग्रह पर स्थानान्तरित कर दिया जावे ।

परन्तु एक समस्या जटिल थी । पानी नहीं था इस ग्रह पर । पानी के बिना जीवन चलेगा नहीं । इस ग्रह को पहले पानी दिया जाना चाहिये । देवो ने इस सूर्य-परिवार के सारे ग्रहों का अवलोकन किया । जल नहीं मिला कहीं पर भी । क्या हो ? कैसे जल लाया जावे इस ग्रह पर ?

देव पुनः क्षीरसागर में लौट आये । देवों ने क्षीरसागर में विचरण करते तेज-विन्दुओं को यज्ञ के द्वारा जल में परिवर्तित करना आरम्भ कर दिया । इस प्रकार एक विशाल जल का सागर एकत्र हो गया । इसका नाम वैतरणी रखा गया । यह जल इस ग्रह से कई गुना अधिक था । प्रश्न उठा इस जल को इस ग्रह पर उतारें कैसे ?

यदि इस जल को सीधा ग्रह पर गिरा दें तो झटका खाकर यह ग्रह सूर्य-परिवार से बाहर जाकर महाप्रलय को प्राप्त हो जावेगा। फिर जल के पृथ्वी पर चले आने से भार का अचानक बढ़ जाना भी इस ग्रह के अस्तित्व को खतरे में डाल सकता है। दोनों स्थितियों में जल पृथ्वी पर लाया जा नहीं सकता। इस ग्रह को तो जल धीरे-धीरे एवं निरन्तर गति से दिया जाना चाहिये। इस वैतरणी के इस भूतल पर गंगावतरण का कोई उपाय सोचो।

योजना बनी, इस पृथ्वी की माया को घटाया जाये किसी छोटे ग्रह के द्वारा ; छोटा एवं उपयुक्त ग्रह खोजने चल दिये देव ! एक परिवार से दूसरे परिवार (सौर-परिवार) में, फिर तीसरे में। अन्त में एक नन्हा ग्रह चन्द्रलोक-मण्डल में मिल गया। इस नन्हें ग्रह को माया नियन्त्रण द्वारा इस ओर ले आये।

This planet has no weight; weight is of gravity. If I can lift the gravity, I carry this planet on my finger tips,—say Vedas.

इस ग्रह का भार नहीं है ! भार तो माया का है। यदि मैं माया निरस्त्र कर सकूं तो मैं इस ग्रह को अपनी अंगुली पर धारण कर सकता हूँ। इस प्रकार राम के दर्शन में, हनुमान ने ग्रह ('पर्वत') उठा लिया तो कृष्ण के दर्शन में, कृष्ण ने।

चूंकि इस नन्हें ग्रह को देव, चन्द्रलोक-परिवार से लाये थे इसलिये देवों ने इसका नाम चन्द्रमा रख दिया और इस चन्द्रमा को पृथ्वी की माया से सन्तुलित कर छोड़ दिया। यह पृथ्वी का उपग्रह बन पृथ्वी की परिक्रमा करने लगा। देवों ने आकाश-गंगा उतारी ठीक पृथ्वी व चन्द्रमा की सन्तुलित माया में लाकर। चन्द्रमा और पृथ्वी के बीच के क्षीरसागर तक गंगा बिना किसी माया के प्रभाव के आ गई। अब चन्द्रमा ने जल को अपनी माया से खींचा; पृथ्वी ने अपनी माया में खीचा, तो जल नियन्त्रित हो, मूसलाधार बरसने लगा। निरन्तर गति से पृथ्वी को जल मिलने लगा। झटका भी नहीं लगा।
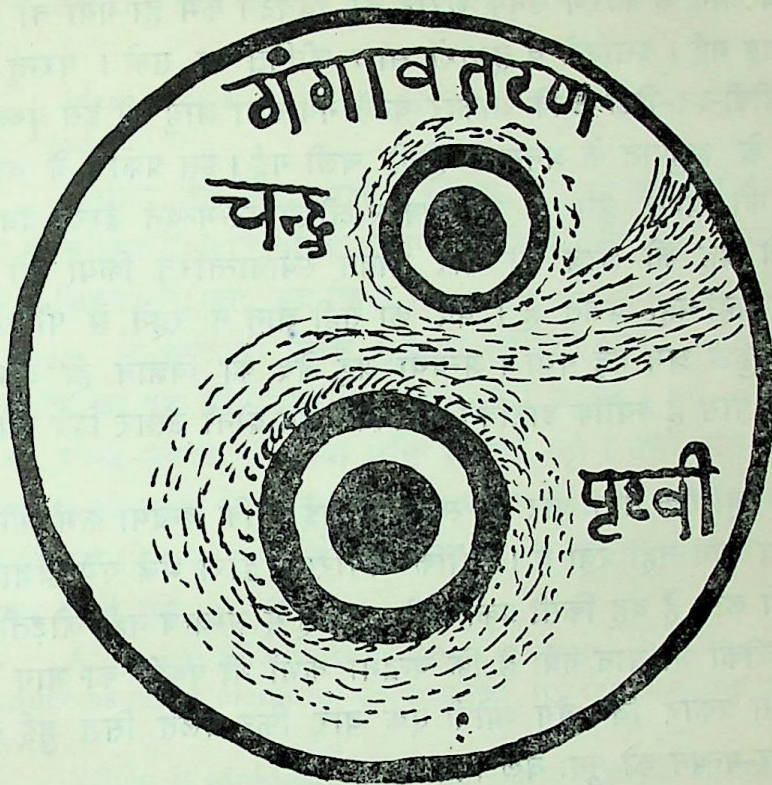
इसीलिये उस चित्र में दिखाया गया है कि क्षीरसागर के देवता विष्णु, जो कि क्षीरसागर स्वयं है; के पैर से निकली है यह गंगा। माया के देवता (cosmic lord) शंकर के जटाओं में उतारी गई। चन्द्रमा उनके भाल पर दिखा दिया गया कि इस प्रकार चन्द्रमा के माध्यम से जल इस पृथ्वी पर लाया जा सका।

उपरान्त देवयानों द्वारा नाना प्रकार की वनस्पति एवं जीवधारी यहाँ लाकर बसाये गये। यहाँ एक विशिष्ट बात यह है कि वेद भी दानवाकार जीवधारियों का अस्तित्व मानते हैं तथा डारविन ने तो इसे सबूत देकर सिद्ध कर दिया है।

सनातन के अनुसार विसर्जन को जा रहे ग्रह से जो जीवधारी लाये गये, वे उस ग्रह की माया के अनुसार दानवाकार हो गये थे। कम माया

में लाये जाने के कारण उनके शरीर का विघटन कम हो गया तो उनकी आयु बढ़ गई। इसलिये वे हजारों साल जीवित रह सके। परन्तु धीरे-धीरे, पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनके आकार घटते गये तथा आयु भी इस पृथ्वी की माया के अनुपात के अनुसार होती चली गई। इस प्रकार वे वर्तमान स्थिति को प्राप्त हुए। इस प्रकार क्षीरसागर-मन्थन द्वारा देवताओं ने, नये ग्रह की खोज की और जीवन स्थानान्तरित किया जो आप चित्र में यहाँ-वहाँ देखते हैं। वेद का सही ज्ञान न रहने से पौराणिक-काल में कुछ भ्रम बढ़ गया। अन्यथा यह वेद का विज्ञान ही अब इस जगत् के पास है क्योंकि डारविन और बिग बैंग दोनों उतार दिये गये हैं।

यहाँ एक बात और भी स्पष्ट हो गई है कि चन्द्रमा कभी भी इस पृथ्वी का भाग नहीं रहा है। क्योंकि अमेरिका द्वारा भेजे गये वैज्ञानिक जो मिट्टी लाये हैं वह किसी प्रकार भी इस ग्रह से सम्बन्ध नहीं जोड़ती है। अब अमरीका भी मान गया है कि चन्द्रमा कभी भी पृथ्वी का भाग नहीं रहा। इस प्रकार बिग बैंग थ्योरी एक बार फिर गलत सिद्ध हुई तथा क्षीरसागर-मन्थन को पुनः बल दिया।

माया के रहस्य समझाते हुए वेद बताते हैं कि चन्द्रमा को देखकर क्यों सागर का जल ज्वार (high tide) हो उठता है तथा चन्द्रमा के न रहने पर डरे बालक की नाईं क्यों धरती से लिपट जाता है (low tide)। इसको समझने के लिये हमें जानना पड़ेगा कि सूर्य से आने वाली रोशनी गर्म क्यों है ? तथा चन्द्रमा से आने वाली रोशनी ठन्डी क्यों है ?

पाश्चात्य विद्वानों से पूछा, आज से कुल दस वर्ष पूर्व, तो वे बोले सूर्य में आणविक विस्फोट होते हैं इसलिये सूर्य से आने वाली रोशनी गर्म है तथा चन्द्रमा पर बर्फ के पहाड़ हैं इसलिये उनसे टकरा कर जब किरणें लौटती हैं तो ठन्डी होती है। चाँद पर एक बूंद पानी न मिला। अब उनके पास कोई उत्तर नहीं है। सूर्य से आने वाली किरणें यदि लगभग नौ करोड़ मील क्षीरसागर (space) में ऊष्मा (heat) को चलाकर धरा

पर ला सकें तो थर्मस फ्लास्क में तो ठन्ढा अथवा गर्म कुछ टिकेगा ही नहीं।

Heat cannot travel in space. Heat can travel only in gravity—Vedas.

सनातन वेद के अनुसार न तो सूर्य से आने वाली रोशनी गर्म है और न चन्द्रमा से आने वाली रोशनी ठन्डी है। खेल सब माया का है। सूर्य से किरणों के पुनः रूद्र क्रिया (cosmic force) द्वारा विस्फोटित हुए तो space में आते ही उनके युद्ध का अन्त हो गया। अणुओं के घर्षण प्रतिघर्षण का युद्ध क्षीरसागर में चल ही—नहीं सकता। अतः वे सब शान्त हो गये परन्तु उनकी गति तथा शक्ति निर्बाध रही। उसी गति से वे बिन्दु जब पृथ्वी की माया में प्रविष्ट हुए, तो माया के कारण पुनः उनका माया-युद्ध आरम्भ हो गया। वे विराट-स्वरूप धारण करने लगे और माया को निरस्त्र करने लगे।

Atom has no electrons when in space. It is competent to produce as many electrons as needed to repulse the attack of gravity.

When it exploded from the Cosmic Arch of Sun—matter changed to atoms and atoms became radioactive and cosmic. But when these atoms reached the space the electrons disappeared and there was, no war no heat.

But speed and force of blast remained unchanged as there was no friction in the space Atoms with the speed and force in tact touched the gravity of planet and became radioactive again to repulse the proessure of gravity. Due to heavy force of blast it touched the bottom of the planet and repulsed the gravity with the force of electrons and fled away to space again. Again electrons disappeared in the space.

Now I felt the heat of friction of electrons with gravity; not that the heat was transmitted from sun to earth.

इस प्रकार सूर्य से आने वाले ब्रह्म जब माया से संघर्ष करते हैं तो उस संघर्ष से ऊर्जा उत्पन्न होती है, न कि ब्रह्म सूर्य से ऊर्जा लेकर
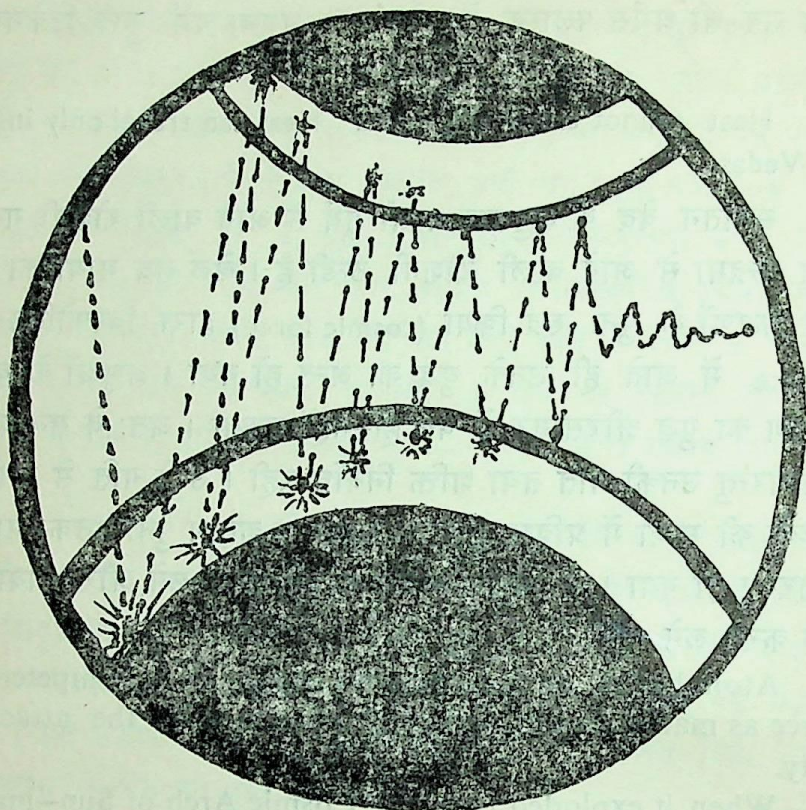
आते हैं। चूंकि उनके पीछे धक्के का प्रभाव अधिक होता है, इसलिये वह माया से लड़ते हुये भी पृथ्वी के तल तक आ जाते हैं। यहीं भयंकर युद्ध कर भाग जाते हैं, पुनः क्षीरसागर में !

यही ब्रह्म जब पुनः चन्द्रमा की माया में प्रविष्ट होते हैं, तो पुनः कुपित (radioactive) हो उठते हैं और माया से लड़कर पलट भागते हैं। पुनः उनकी गति क्षीरसागर में न रुक सकने के कारण, वे फिर पृथ्वी की माया में प्रविष्ट होकर कुपित (radioactive) हो उठते हैं और माया से संघर्ष करते हैं, परन्तु इस बार धमाके की शक्ति न होने के कारण ऊपर से ही लड़कर लौट जाते हैं, तो उनकी चमक तो मुझे पृथ्वी पर दिखाई पड़ती है, परन्तु संघर्ष की गर्मी मुझे छूती नहीं। मुझे लगता है चाँद से आने वाली रोशनी ठण्डी है।

इस प्रकार न तो सूर्य से आने वाली रोशनी गर्म है, न चाँद से आने वाली ठण्डी। गर्मी अथवा ठण्डक क्षीरसागर के आर-पार जा नहीं सकती। इसीलिये पूर्णिमा के दिन सागर में भारी ज्वार (high tide) रहता है। चन्द्रमा से टकराकर लौटते ब्रह्म पृथ्वी की माया में प्रविष्ट होकर जब लड़कर भागते हैं, तो वायुमण्डल में एक खिंचाव पैदा करते हैं, जिससे प्रत्येक वस्तु ऊपर को खिंचती है, सागर में ज्वार आता है, बीजों से कोपलें फूट आती हैं आदि-आदि ! इससे भी कई गुणा अधिक खिंचाव सूर्य से होता है, परन्तु हम उसका प्रभाव नहीं देख पाते हैं। उसका कारण है कि सूर्य से आने वाले ब्रह्म पृथ्वी तल को छू जाते हैं, तो भारी खिंचाव के कारण पानी को ही उठा ले जाते हैं। चन्द्रमा केवल रिक्तता पैदा कर पानी को खींचता है, जबकि सूर्य उड़ा ही देता है। यह सनातन मत है।
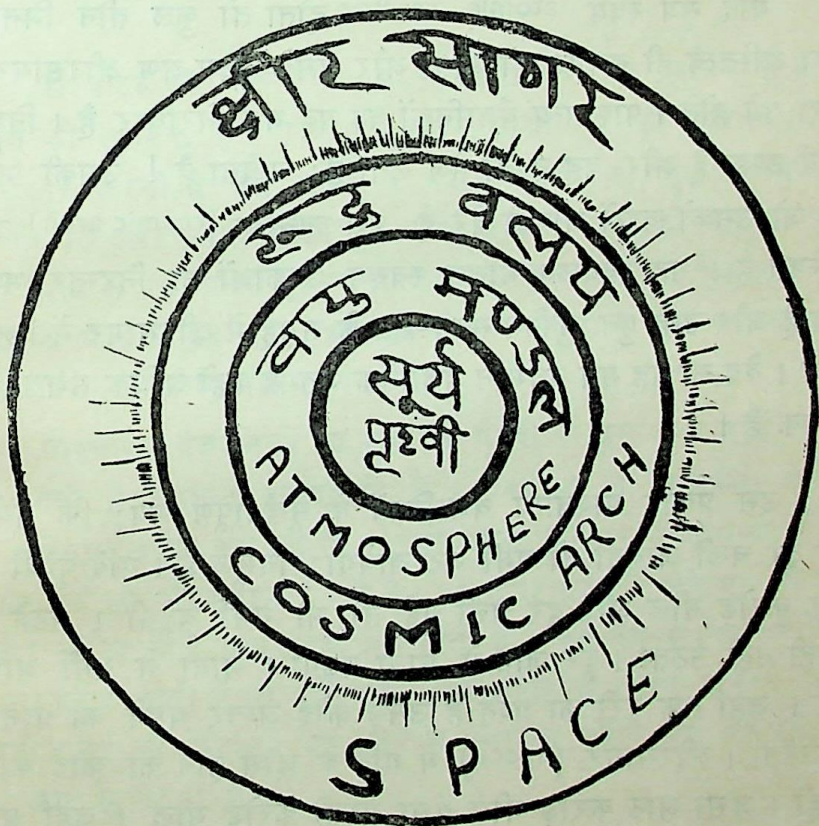
सूर्य को लेकर भी वेद और पाश्चात्य वैज्ञानिकों में भारी मतभेद है। पाश्चात्य वैज्ञानिक सूर्य को आग का जलता हुआ गोला (atomic reactor) बताते हैं। वेद इसे ठण्डा ग्रह बताता है। वेद के अनुसार सूर्य स्वयं आग का गोला नहीं है; वरन् सूर्य से कई लाख मील दूर, सूर्य के प्रत्येक ओर रुद्रवलय ,है जो प्रकाशवान है। यह रुद्रवलय अपनी भारी माया द्वारा उल्काओं एवं गैस के बादलों को अपनी ओर आकृष्ट करता है तथा माया द्वारा सूक्ष्म-ब्रह्म में परिवर्तित कर कुपित कर देता है। यह ब्रह्म-समूह इस वलय के भीतर जा ही नहीं सकते, क्योंकि जितना भीतर जावेंगे, माया उतनी गहन होती जावेगी। कुपित-ब्रह्म सदा क्षीरसागर (space) की ओर दौड़ता है। इसलिये यह ब्रह्म-समूह किरणों के पुंज बने वृत्ताकार (सूर्य तीव्र धुरी-भ्रमण कर रहा है) क्षीरसागर में दौड़ते हैं।

यदि सूर्य स्वयं atomic reactor होता तो कुल तीन मिनट में उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाता और उसके सूक्ष्म-अणु क्षीरसागर में छितरा गये होते। पाश्चात्य वैज्ञानिकों का यह मत निराधार है। निश्चय ही सूर्य ठण्डा है और वह न तो तेज लेता है; न देता है! उसकी भारी माया जो उसको चारों ओर से घेरे है, इस रुद्रवलय (cosmic arch) द्वारा नियन्त्रित है। यह रुद्रवलय भोजन स्वरूप उल्काओं का निरन्तर भक्षण करता है और उन्हें पुनः कुपित सूक्ष्म-ब्रह्म के समूह में क्षीरसागर में छितरा देता है। वेद का यह मत वर्तमान वैज्ञानिक मत से कहीं अधिक सशक्त एवं वैज्ञानिक है।

इस प्रकार पाश्चात्य वैज्ञानिकों के मूर्खतापूर्ण भय; कि सूर्य से पृथ्वी दूर चली जावेगी तो गर्मी घट जावेगी; निर्मूल है। यदि पृथ्वी सूर्य से एक करोड़ मील और दूर चली गई तो भी गर्मी बढ़ेगी। घटने का प्रश्न ही नहीं उठता। दूर जाने से माया बढ़ेगी। माया से गर्मी अधिक बढ़ेगी। जहां तक दूरी का प्रश्न है उससे कोई अन्तर पड़ने का प्रश्न ही नहीं उठता। क्षीरसागर (space) में गति के ह्रास होने का कोई कारण ही नहीं। जैसा आठ करोड़ मील वैसा अस्सी करोड़ मील। जहां प्रति-

घर्षण ही नहीं मायारहित होने से, वहां गति के कम होने का प्रश्न तो नितान्त मूर्खतापूर्ण है।

दूसरे यह कहना कि सूर्य ठन्डा हो रहा है, हमें कुछ काल उपरान्त नया सूर्य ढूढ़ना पड़ेगा एकदम बेबुनियाद है। न तो सूर्य कभी गर्म था और न ही ठण्डा होगा। रुद्रवलय, जब तक सूर्य का अस्तित्व है; शान्त नहीं हो सकता तथा जब तक रुद्रवलय है, सूर्य के अस्तित्व को खतरा हो ही नहीं सकता। स्पष्ट है कि सूर्य अमर हो चुका है।

जिस प्रकार एक ग्रह विन्दु-बिन्दु में विसर्जित होकर अस्तित्व खो बैठता है और दूसरी ओर वैसा ही ग्रह रुद्रवलय धारण कर अमर हो जाता है। रे मनुज ! तू भी दशानन हो बिन्दु-बिन्दु होगा चिता पर; अथवा दशरथ हो तेज धारण कर अमर हो जावेगा। ऐसा कहा सनातन वेद ने !

पाश्चात्य वैज्ञानिक पृथ्वी की परिक्रमा अण्डाकार मानते हैं। वेद इस मत को ठुकराते हैं। वेद के अनुसार पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा ठीक उसी प्रकार करती है जैसे भंवर में फंसा लकड़ी का टुकड़ा निरन्तर भंवर की परिक्रमा करता रहता है। बीच में थोड़े काल को दबकर अदृश्य हो जाता है पुनः प्रकट होकर परिक्रमा करने लगता है। देव और सूर्य के बीच के भाग में यह उठा रहता है, पीठ के भाग में कुछ दब जाता है जिससे सर्दी-गर्मी आदि मौसम बनते हैं।

पाश्चात्य वैज्ञानिकों का मत कि पृथ्वी के दूर चले जाने से ठंड पड़ने लगती है नितान्त हास्यास्पद है। देवलोक की परिक्रमा सूर्यदेव अपने परिवार सहित कर रहे हैं। पृथ्वी अपने परिवार, एक मात्र चन्द्रमा के साथ सूर्य की परिक्रमा कर रही है। परिक्रमा करती पृथ्वी जब देवलोक की ओर आ जाती है, उत्तरायण सूर्य होता है। जब देव के विपरीत दिशा में पृथ्वी पहुँच जाती है तो दक्षिणायन सूर्य होता है। इस प्रकार पृथ्वी छः महीने सूर्य की परिक्रमा देव ओर से तथा छः महीने सूर्य की परिक्रमा दानव ओर से करती है।
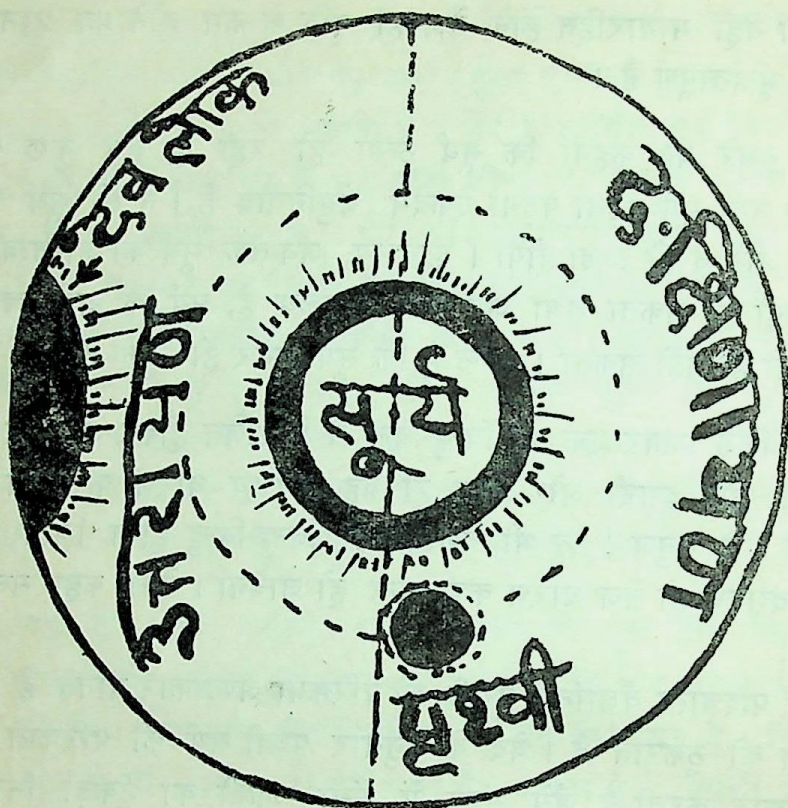
भीष्म पितामह छः महीने तक बाणों की शैय्या पर लेटे पृथ्वी के उत्तरायण होने की प्रतीक्षा करते रहे। मकर संक्रान्ति से कर्क संक्रान्ति तक उत्तरायण पक्ष रहता है, जिसे देवपक्ष कहा है उपरान्त दक्षिणायन पक्ष, जिसे काल-रात्रि कहा गया है।

पृथ्वी आदि ग्रह अपनी इच्छा से न तो धुरी-भ्रमण करते हैं और न ही परिक्रमा। इस विषय में वेद के अतिरिक्त कोई मत नहीं है। पाश्चात्य विज्ञान को अभी अपना मत स्थिर करना बाकी है।

वेद सनातन मत से, सूर्य तीव्र गति से धुरी-भ्रमण कर रहा है; जिससे क्षीरसागर में अदृश्य लहरें सी उत्पन्न होने लगती हैं, जिसमें पड़े ग्रह, भंवर में आये टुकड़ों की तरह, उसकी परिक्रमा करने लगते हैं। नजदीक के टुकड़े तेजी से परिक्रमा करते हैं तथा दूर के टुकड़े धीरे-धीरे

परिक्रमा करते हैं। वेद का यह मत सही इसी से सिद्ध हो जाता है कि जो ग्रह जितना नजदीक है वह उतनी अधिक परिक्रमा कर रहा है। यदि ऐसा न होता तो प्रत्येक ग्रह की परिक्रमा एक सी होती; जैसे साईकिल का पहिया। उसके धुरे के साथ बंधी वस्तु तथा पहिये के साथ बंधी वस्तु के बृत्तों में कितनी भी छोटाई-बडाई क्यों न हो, परिक्रमायें एक सी ही करेंगे; परन्तु गोचर में ऐसा नहीं है, तो मानना पड़ता है कि ग्रह भंवर की सी स्थिति में ही परिक्रमा करते हैं।
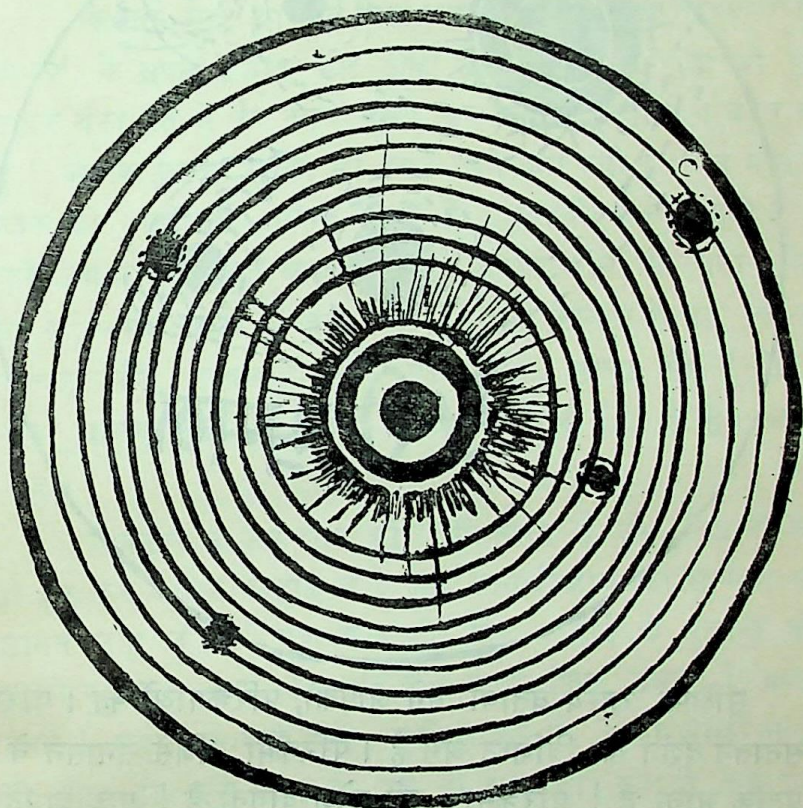
सूर्य के तेजी के साथ धुरी-भ्रमण करने से उसके चारों ओर का रुद्रवलय भी तीव्र गति से धुरी-भ्रमण कर रहा है। उससे निकलने वाले किरण-समूह भी वृत्ताकार स्थिति में ही क्षीरसागर में निकलकर दौड़ते हैं। इसी से सारे ग्रह धुरी-भ्रमण करते हैं। धुरी-भ्रमण से ग्रह की माया-गद्दी बन जाती है, ऐसी स्थिति में सूर्य से आने वाली वृत्ताकार किरणें उसकी

परिक्रमा कर निकल जाती हैं, उसे (ग्रहको) धकेल नहीं पातीं । यदि ग्रह धुरी भ्रमण न करता हो तो किरणों का एक ही समूह उसे सौर-मण्डल से धकेल कर बाहर फेंक देगा और वह ग्रह माथाओं से टूटकर महाप्रलय को प्राप्त हो जावेगा ।
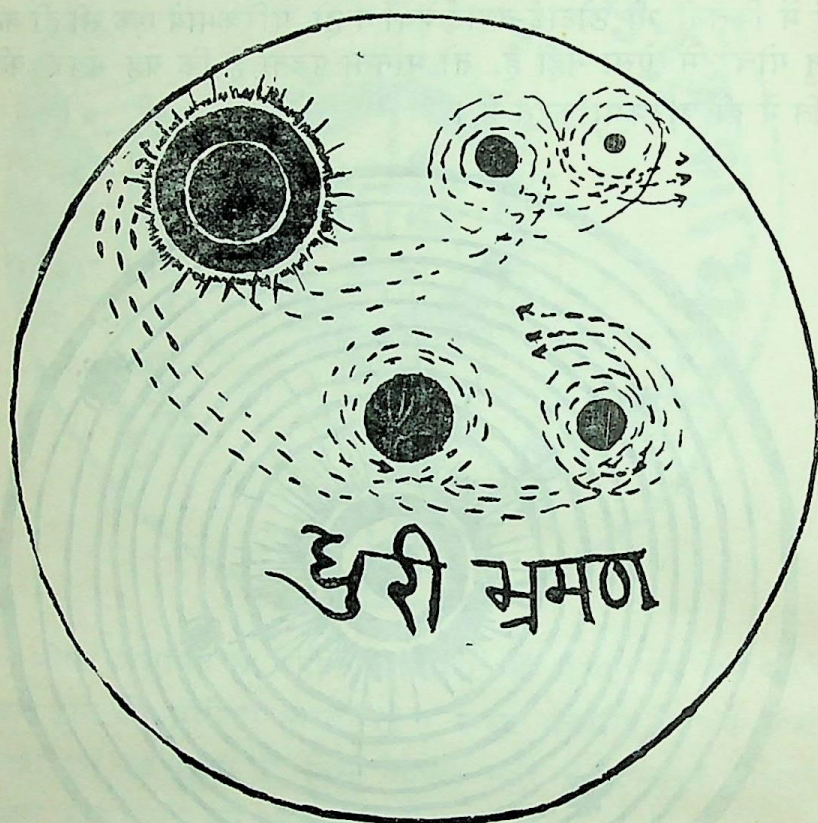
संक्षिप्त रहस्य बताया मैंने आपको, परिक्रमाओं का । परिक्रमा; जो सनातन दर्शन का विशिष्ट अंग है । परिक्रमा; जिसे सनातन ने जीवन का प्रतीक माना है ! परिक्रमा; जो मोक्ष दायनी है ! फल दायनी है ! जिसके बिना जीवन व्यर्थ है । कोई भी पाठ, पूजा, हवन, यज्ञ, व्यर्थ है । सनातन वेदों में इस प्रकार का ज्ञान सर्वत्र ऋचाओं में दिया गया है, परन्तु एक बात नहीं भूलनी चाहिये कि यह ज्ञान-विज्ञान मात्र उपमाओं में दिया है, सनातन प्रभुओं ने । अर्थात् उन्होंने इस ज्ञान-विज्ञान को महत्व न देकर मात्र 'अहं ब्रह्मास्मि', मोक्ष को ही लक्ष्य बनाया है, प्रत्येक ऋचा में ।

सत्य है नाना ज्ञान विज्ञान किस काम के, यदि मैं स्वयं को ही न पहचान सका ! स्वयं को ही न प्राप्त हो सका !

हे भक्तगण ! आपकी श्रद्धा-भक्ति-धैर्य की बलिहारी है ! सम्पूर्ण ज्ञान आपकी श्रद्धा के आगे हीन है ! आप महान हैं ! यह ज्ञान; यह विज्ञान; यह बुद्धिमत्ता; सब ले लो । मुझे मात्र कन्हाई का संग दे दो ! अरे सम्पूर्ण ज्ञान नष्ट हो जावे, एक कन्हाई का संग रह जावे बाकी ।

कितना मूर्ख था यह भक्त आपका कि gravity research और control के सपने सजाता था, ठीक उस बालक के जैसा जो सागर के तट पर बैठा रेत में पैर देकर उसके घर बनाता रहता है । बहुत व्यस्त है वह ! जबकि खाना उसकी माँ उसके लिये बना रही है । रेत में घर बनाते बालक की दाड़ी-मूंछें निकल आती हैं । सफेदी छाने लगती है । कमर झुकने लगती है । बहुत व्यस्त है वह । जबकि आज भी खाना—मिट्टी से; राख से;—माँ प्रकृति ही बना रही है । नहीं जानता है वह कि राख का ढेर चला कैसे, मुस्कराया कैसे, बोला कैसे, सोचा कैसे ! रेत के घर बनाता बालक बूढ़ा हो चला—बालकपन अभी वैसा ही है। अति व्यस्त है वह ।

धिक्कार है उस ज्ञान को ! धिक्कार है उस विज्ञान को ! जो मुझे दूर कर दे मेरे कन्हाई से ! मुझे ज्ञान-विज्ञान का सम्मान मत दो ! दशानन नहीं हूँ मैं ! एक भक्त की, एक कन्हाई के पुजारी की, श्रद्धा भर दो कूट-कूट कर; कि मूढ़ हो, गाता फिरूं उसको ! भजता फिरूं उसको ! जहाँ देखूं वही दिखे—मुंदी आँखों में; खुली आँखों में ! अब तो वही श्रोता हो, वही वक्ता हो, वह ही कथा हो, वह ही कथाकार हो ! भूमिका वही हो ! वही, भूमिकाकार हो ! वही अलंकार हो—शब्द-शब्द में साकार हो ! मुझे दे मूढ़-भक्ति कन्हाई की !

झूम-झूम कर गाओ गीत मेरे कन्हाई के—कि सुधि न रहे बाकी ! रोम-रोम है प्यासा ! युग-युग की प्यास है बाकी ! जन्म-जन्म का भिखारी-आया है द्वार कन्हाई के ! अब तो मिलन होकर ही रहेगा ! लौटकर

गांव अपने, जाने वाला, सुदामा नहीं हूँ मैं ! जो भागेगा मुझसे दूर, तो छीन लूंगा मोर मुकुट सब इसके और पकड़कर बालों से बिठा लूंगा पास अपने ! देखूं कैसे भागता है यह छलिया ! लिपट जाऊंगा उससे ! समा जाऊंगा उसमें ! अब की जो हुआ मिलन तो बिछुड़ना हो सकेगा नहीं ! अरे मेरे कोटि-कोटि कन्हाइयों ! मुझे अपनी भक्ति दो ! आशीर्वाद दो ! ! प्रार्थना करो मेरे लिए ! मैं तो भक्त हूँ तुम्हारा ! मिला दो मुझे मेरे कन्हाई से ! !

हरि ॐ नारायण हरि ! !
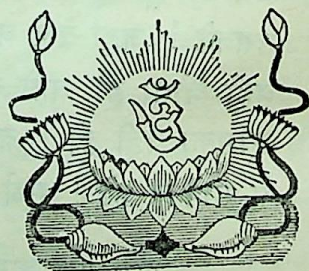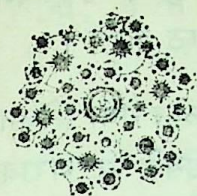
पंचम अध्याय

यज्ञ : यज्ञेश्वर

भक्तगण !

आज आपका भक्त सनातन चर्चा करेगा, यज्ञ-यज्ञेश्वर की । अहो ! यज्ञ ही पुण्य है; अयज्ञ ही पाप है । यज्ञेश्वर ही परमेश्वर है ! यही तो प्रत्येक सनातन का मात्र लक्ष्य है ।

प्रभु आत्मा के द्वारा किया गया प्रत्येक कर्म यज्ञ है, तथा सम्पूर्ण भूत-प्राणियों द्वारा आत्मा मात्र को लक्ष्य मानकर किया गया प्रत्येक कर्म यज्ञ है । महापुण्य है ! मोक्ष दिलाने वाला है !

चिता की भस्मी का यज्ञ के द्वारा वनस्पति में पुनर्जन्म को प्राप्त होना; वनस्पति का यज्ञ के द्वारा रक्त-मांस-हड्डी आदि में पुनर्जन्म को प्राप्त होना; रक्तादि बिन्दुओं का गर्भ रूपी क्षीरसागर में जुड़कर शिशु स्वरूप को प्राप्त होना; ये यज्ञ स्वयं प्रभु आत्मा कृष्ण, ॐ, सूर्य, राम, रूपी हवनकुण्ड करते हैं । अहो ! यह यज्ञ कितने महान हैं; कितने पुण्यकारी हैं । नाना पाप नष्ट कर यज्ञ के द्वारा; पापयोनि में गया शरीर जो बन बैठा था नाली का सड़ता पानी; पुनः मन्दिर स्वरूप होकर प्रकट होने लगता है—आत्मा प्रभु उस मन्दिर में मूर्ति बनकर प्रकट होते हैं एवं प्रसन्न होकर नित्य यज्ञ करते हैं । हे मेरे श्रद्धालु श्रोतागण ! आप प्रत्येक मन्दिर हैं मेरे कृष्ण के ! स्वयं कृष्ण हैं मेरे; जो स्थापित हैं प्रत्येक शरीर में यज्ञेश्वर होकर! आप सबको मेरा बारम्बार प्रणाम है जय हो ! जय हो ! मेरे कन्हाई की ! मिटे माया कंस की ! ! छटे अन्धेरा, इस लिप्सारूपी मन इन्द्र का ।

पेट की भूख को मिटाने के लिये, शरीर की रक्षा के लिये लिया

गया भोजन; एक यज्ञ है। महापुण्य है! स्वयं आत्मा कृष्ण उसे यज्ञ करेंगे। रक्त-मांस आदि में परिवर्तित कर शरीर को बलिष्ठ करेंगे।

परन्तु पेट भर भोजन के उपरान्त स्वाद के लिये लिया गया भोजन अयज्ञ है। महापाप है! निकृष्ट-कोटि का व्यभिचार है। इससे पेट खराब होगा। शरीर को नुकसान पहुंचेगा। मुझे महापाप लगेगा।

ज्ञान का अर्जन एक यज्ञ भी है और अयज्ञ भी। महापुण्य है और महापाप भी। आत्मा के प्रति तथा आत्ममार्ग पर चलने के हेतु लिया गया ज्ञान महापुण्य है। यज्ञ है! यज्ञेश्वर की राह दिखाता है।

परन्तु वेद, गीता का ज्ञानार्जन—जिसे ग्रहणकर विद्वान बन, तर्कशास्त्री बन, विद्वता का प्रदर्शन करना—अयज्ञ है! महापाप है। निकृष्ट योनियों में भटकाता है।

कोई भी ज्ञान यदि लक्ष्य के हेतु है तथा आत्मा के प्रति है एवं मार्ग का निरन्तर अनुसरण करने के लिये है—यज्ञ है।

सम्मान की अथवा ऐश्वर्य की लिप्सा से प्रेरित हो लिया गया ज्ञान, जिसे ग्रहण कर उसका अनुसरण भी न करे—महापाप है। अयज्ञ है!

सन्तान की इच्छा से किया गया सम्भोग यज्ञ है। एक मन्दिर की सृष्टि में यज्ञेश्वर आत्मा का सहायक होता है। मन्दिर की सृष्टि होती है। यज्ञेश्वर मूर्ति बन प्रकट होते हैं, उस मन्दिर में! यज्ञ है यह; यज्ञेश्वर के हेतु किया गया है। महापुण्य है।

लिप्सा मात्र से प्रेरित हो धर्मपत्नी से किया गया सम्भोग—अयज्ञ है। अति निकृष्ट कोटि का महापाप है। महा पापयोनियों में भटकाने वाला है। जब इस शरीर को तुम राख से वनस्पति में ला नहीं सके; वनस्पति से मनुष्य रूप दिला नहीं सके; आज भी भोजन का रक्तादि में बदलना जानते नहीं, तो इस शरीर का लिप्सा मात्र के लिये दुरुपयोग करने का अधिकार मिला कैसे? अरे बुद्धि! इसे अनाधिकार भोग

नहीं; तू तो मात्र पुजारी है। भोगने का अधिकार तो मात्र आत्मा को है। यज्ञेश्वर ही भोगेश्वर पद का अधिकारी है। रे बुद्धि! पहले तू उस यज्ञेश्वर से योग के द्वारा योगेश्वर बन! पुनः योगेश्वर से यज्ञेश्वर स्वयं हो। तभी भोगेश्वर+अधिकार पावेगा तू।

चोरी यज्ञ भी है; अयज्ञ भी!

उसने चोरी की। पकड़ा गया, मार खाई अपमानित हुआ। सजा मिली।

उसने देश की आजादी के लिये प्राणों की बाजी लगाकर रेल से खजाना लूटना चाहा। अमर शहीद हो गया।

एक ओर प्रेरणा लिप्सा थी—तो अयज्ञ था। महापाप था। दूसरी ओर प्रेरणा आत्मत्याग की थी—तो यज्ञ था! महापुण्य था।

कत्ल—यज्ञ भी है; अयज्ञ भी है। कत्ल किया। पकड़ा गया। मार खाई। फांसी लगा। दूसरी ओर आत्मत्याग से प्रेरित हो देश की रक्षा के लिये कूद पड़ा महासमर में। अनगिनत कत्ल किये—परमवीर, महावीर कहाया। सम्मान पाया।

लिप्सा जब प्रेरणा थी—तो अयज्ञ था। महापाप था। आत्मत्याग प्रेरणा बना—तो यज्ञ था। महापुण्य था!

यज्ञ ही पुण्य है; अयज्ञ ही पाप है!!
कर्म न पुण्य है; न पाप है!
ज्ञान न पुण्य है; न पाप है!
आत्म-प्रेरित कर्म ही पुण्य है!!
लिप्सा-प्रेरित कर्म ही पाप है!!
भक्ति न पुण्य है; न पाप है!
ध्यान न पुण्य है; न पाप है!
आत्मा के प्रति है; तो पुण्य है!!
लिप्साओं के प्रति है; तो पाप है!!
यज्ञ ही पुण्य है; अयज्ञ महापाप है!
यज्ञेश्वर ही परमेश्वर है—लक्ष्य एक मात्र है!!

शरीर का वह भाग जो आत्माकुण्ड द्वारा यज्ञ हो, तेज में परिवर्तित हो गया—वही पुण्य था। शेष शरीर जो शव बना चिता पर जा रहा है, अयज्ञ है! महापाप है!!

प्रायश्चितस्वरूप यज्ञ कर प्रयास करेंगे, तेज में परिवर्तित करने के लिये। जो भाग तेज में बदल सका—यज्ञ है; पुण्य में बदल गया। धुवां और भस्मी शेष हैं जो, महापाप है। अयज्ञ है। लिप्साओं का प्रतिफल है। महापाप है। भोगना पड़ेगा रे भ्रमित बुद्धि!

यज्ञ की प्रक्रिया क्या है? दिखाई है सनातन ने, तीन सूत्रों में यज्ञोपवीत के! गायत्री मन्त्र ही यज्ञेश्वर आत्मा का मन्त्र है। प्रातःकाल ब्रह्म-स्वरूप है, दोपहर को रुद्र-रूप है, सायंकाल विष्णु-स्वरूप है! यही रहस्य है—यज्ञ और यज्ञेश्वर का!

प्रातःकाल जो भोजन ग्रहण किया मैंने; उसे ब्रह्मस्वरूप हो आत्मा हवनकुण्ड-रूपी-सूर्य यज्ञेश्वर कृष्ण ने सामग्री के रूप में; ब्रह्मा बन ग्रहण किया। यदि आत्मा के विपरीत आचरण करूंगा, तो आत्मद्रोही बनूंगा। इसलिये आत्मा के अनुरूप, मैंने भी ब्रह्मा का ध्यान द्वारा आह्वान कर; ब्रह्मा स्वयं बन गायत्री का जप किया। जो यज्ञ-यज्ञेश्वर, सो मैं बना!

दोपहर को आत्मा-हवनकुण्ड ने प्रलयंकर रुद्र (cosmic lord Shiva) का रूप धारणकर, सम्पूर्ण सामग्री को प्रलय द्वारा, सूक्ष्म-तेज-ब्रह्म बिन्दुओं में परिवर्तित करना आरम्भ किया। मैं प्रलयंकर रुद्र बन, गायत्री जप करने लगा। आत्मा के अनुरूप आचरण ही तो है महापुण्य!

सायंकाल आत्मा हवनकुण्ड ने क्षीरसागर अधिपति (space lord Vishnu) विष्णु का स्वरूप धारण किया और सूक्ष्म-तेज-ब्रह्म को पुनर्सृजन द्वारा नये रूप रक्त, मांस आदि के प्रदान करने प्रारम्भ कर दिये, तो मैं आत्मानुकूल भगवान विष्णु का ध्यान द्वारा आह्वान कर, स्वयं विष्णु बन, गायत्री का जप करने लगा।

इस यज्ञ-यज्ञेश्वर का स्वरूप कैसा है? इसका रहस्य भी स्पष्ट

किया है; इसी मन्त्र में भगवान वेद ने ! 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' अर्थात् ऐसे सविता (सूर्य) का वरण करता हूँ ! कैसे सविता है ? 'ॐ भू र्भुवः स्वः'। ॐ है जो, अ+उ+म् हैं जो ! ब्रह्मा-विष्णु-महेश है जो ! इस सूर्य का आकार कैसा है ? अरे देखो वह सूर्य जो दिख रहा है गगन में ! उसके चारो ओर जो प्रकाशवलय है ! ऐसा ही हवनकुण्ड है वह ! सूर्य जगत-आत्मा है । अर्थात् सम्पूर्ण जगत में जो आत्मायें विद्यमान हैं उनका प्रतीक स्वरूप है । ऐसे ही उनके स्वरूप हैं । अर्थात् ऐसे ही तेजस्वी आत्मा हवन-कुण्ड हैं जो पाप का नाश कर यज्ञ के द्वारा, नित्य नूतन सृष्टि कर रहे हैं।

यदि सूक्ष्म रूप में ब्रह्म परिवर्तित न हुआ; तो अपना रूप, रस, गन्धादि गुण त्यागेगा नहीं, तो उसका पुनर्जन्म होना कैसे सिद्ध होगा ? स्थूल रूप से तो मात्र यौगिक (mixture) ही बन पावेगा । इसलिये यज्ञ का नियम है कि, पहले स्थूल को सामग्री रूप ग्रहण करें । पुनः उसे रुद्राग्नि (cosmic fire) द्वारा सूक्ष्म-तेज-ब्रह्म-विन्दुओं में परिवर्तित कर दे । जब तक ब्रह्मतेज प्रकाश स्वरूप को प्राप्त नहीं होगा, पवित्र कैसे होगा ? तेज ही तो पवित्रता का प्रतीक है । जब तक तेज में परिवर्तित नहीं होगा, उसका पिछला माया का भ्रम मिटेगा नहीं । माया का भार जब तक हटेगा नहीं, क्षीरसागर में प्रवेश पाने का अधिकार मिलेगा कहाँ ? क्षीरसागर ही में पुनर्सृजन अर्थात् पुनर्जन्म सम्भव है । इसलिये यज्ञ के दूसरे नियम के अनुसार ब्रह्म का सूक्ष्म तेजस्वी स्वरूप होना अनिवार्य है ।

तेज में परिवर्तित हो ब्रह्म का क्षीरसागर में अर्थात् मायामुक्त क्षेत्र (space) में आना अति आवश्यक है । माया में तो ब्रह्म, सूक्ष्म जो है, कुपित (radioactive) रहेगा । कुपित रहने से उसका आकार विराट (expanded) रहेगा । अपने सही स्वरूप को प्राप्त हो सकेगा नहीं, तो पुनर्जन्म होगा कैसे ? इसलिये यज्ञ के नियमानुसार उसका तेज स्वरूप हो क्षीरसागर में आना अति आवश्यक है । क्षीरसागर में आकर सूक्ष्म-तेज-ब्रह्म माया (gravity) न रहने से शान्त (non-radioactive) रहेगा । शान्त रहने से विराट स्वरूप को त्यागकर अपने सही स्वरूप को धारण करेगा । तभी

उसका पुनर्सृजन तत्व रूप में हो सकेगा। पुनर्सृजन में उसका तत्व स्वरूप कैसा होगा ? जैसा स्वरूप क्षीरसागर का होगा, वही स्वरूप ब्रह्म धारण करेगा, तत्व रूप होकर। स्पष्ट करें इसको ! क्षीरसागर (माया रहित क्षेत्र) का सीमांकन करते माया क्षेत्र जैसा आकार उस मायारहित क्षेत्र को प्रदान करेंगे, वैसा ही आकार उस तत्व का होगा। उदाहरण—एक सौर-परिवार के बीच आकर जुड़ने वाले ब्रह्म एक ही प्रकार की उल्का की सृष्टि करेंगे जैसे मायाओं का प्रभाव सीमांकन होगा। पत्थर, तो पूरी उल्का पत्थर की। लोहा, तो पूरी उल्का लोहे की। सोना, तो पूरी उल्का सोने की। आदि-आदि। ऐसी उल्कायें सौर-परिवार में विचरण करती क्षेत्र का उल्लंघन कर दूसरे-तीसरे प्रभाव सीमांकित क्षीरसागर में प्रविष्ट होती रहती हैं। एक ही प्रकार के सूक्ष्म-ब्रह्म निरन्तर नाना तत्वों का सृजन करते रहते हैं। यही उल्कायें माया में फंसकर उल्कापात होती रहती हैं। इसी प्रकार जीवधारियों के शरीर में भी क्षीरसागर; इच्छित रूप धारण कर, नाना प्रकार के पदार्थों की सृष्टि करते हैं। गुलाब में गुलाब की टहनी, काँटा, पत्ती, फूल सब एक ही प्रकार के ब्रह्म बन रहे हैं, उस यन्त्र की आकृति एवं रचना तथा सीमांकित इच्छाओं द्वारा। गुलाब में आम नहीं लग सकते, परन्तु वही ब्रह्म गुलाब का आम के पेड़ में आम, तथा जामुन के पेड़ में वही जामुन, तथा गोभी के पेड़ में वही ब्रह्म गोभी बन रहा है—यज्ञ के द्वारा; यज्ञेश्वर की कृपा से ! पुनः वही ब्रह्म रक्त, माँस में, बालों में, हड्डियों में, आँख की पुतली में, रंग-बिरंगी तितली—तो काले भंवरे में; गोरे हंस—तो काले कौवे में, नाना पंखों में, रंग-बिरंगी चोंच में, पंजों में, लहराती पूँछ में, जगमगाते जुगनू में, नाना-नाना रूपों में परिवर्तित हो रहा है; वही सूक्ष्म-तेज-विन्दु ब्रह्म का। यह तेज का सूक्ष्म-ब्रह्म एक ही प्रकार का है। 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' ! इस प्रकार संक्षिप्त में यज्ञ यज्ञेश्वर के रहस्य का कुछ भाग बताया मैंने आप नाना देवाधिदेवों को !

माया में पड़े पदार्थ, चाहे लकड़ी है, लोहा है, काँच अथवा पत्थर है या शरीर अथवा पेड़ है—निरन्तर धीमी गति से विघटन (decay) को प्राप्त होते रहते हैं। उनसे निरन्तर सूक्ष्म-ब्रह्म (atoms) टूटकर अलग होते

रहते हैं। अलग होते ही यह सूक्ष्म-ब्रह्म कुपित (radio-active) हो उठते हैं माया के कारण। कुपित हो विराट स्वरूप को धारणकर माया से समर करते हुये ऊपर उठते जाते हैं। इनमें से हल्की नीली रोशनी निकलती है, माया के संघर्ष के प्रतिफल में। सूक्ष्म सुदर्शन चक्र रूप हो युद्ध करते हुये यह सूक्ष्म-ब्रह्म, क्षीरसागर में प्रविष्ट हो जाते हैं तथा शान्त हो पुनर्सृजन को प्राप्त होते हैं।

प्रतिक्षण प्रत्येक स्थान से असंख्यों ब्रह्म माया के कारण टूटकर सुदर्शन चक्र की भाँति ऊपर उठते रहते हैं। इस प्रकार असंख्यों ब्रह्म निरन्तर प्रत्येक ग्रह से निकलकर क्षीरसागर में प्रविष्ट होते रहते हैं। इनसे निकलने वाला नीला प्रकाश इतना अधिक सूक्ष्म है कि सूक्ष्म से सूक्ष्म यन्त्र द्वारा भी दृश्य नहीं है। परन्तु असंख्यों नीले प्रकाश निरन्तर फूटते रहने से जब भी मैं शून्य की ओर देखता हूँ, मुझे नीला दिखाई पड़ता है। इन्हीं माया संग्राम की कृपा से ही आकाश नीला दिखता है। यह एक निरन्तर यज्ञ प्रक्रिया है, जिसके द्वारा निरन्तर नूतन पदार्थों की सृष्टि क्षीरसागर में होती रहती है तथा निरन्तर पदार्थ में फंसे ब्रह्म टूट-टूटकर क्षीरसागर भागते रहते हैं।

इस प्रकार हे नारायण-समूह ! यज्ञ के द्वारा नूतन सृष्टि होती है, एमींबा-बैक्टीरिया के द्वारा नहीं। आपके पितर यज्ञेश्वर आत्मा हैं, कृष्ण हैं, राम हैं, प्रभु ॐ हैं ! न कि एमीबा-बैक्टीरिया और बन्दर।

कृष्ण का रंग नीलिमा क्यों लिये हुये है ? राम का रंग क्यों नीलिमा लिये है ? विष्णु क्यों हल्के नीले वर्ण के दिखाये जाते हैं ? इसलिये कि सूक्ष्म-ब्रह्म से निकलने वाला प्रकाश नीला है तथा यह नीला प्रकाश प्रकट होता है यज्ञ की प्रक्रिया में—यूं यज्ञेश्वर हैं मेरे घनश्याम ! "कृष्णाः" वेद के इस शब्द का एकमात्र अर्थ है—हवनकुण्ड ! यज्ञकुण्ड !

इस प्रकार इस पृथ्वी पर प्रतिक्षण हो रहे हैं असंख्यों यज्ञ—क्षीरसागर में, वृक्ष के ! शरीररूपी क्षीरसागर में, मनुष्य के ! पशु-पक्षियों के !

नाना पौधों में ! जीव-जन्तुओं में ! यज्ञ के द्वारा प्रतिक्षण असंख्य-असंख्य सृष्टियाँ हो रही हैं। पुनर्जन्म हो रहे हैं।

क्षीरसागर और भूतल पर नाना पदार्थ यज्ञ के द्वारा माया से उद्धार तथा उद्धार से नया जन्म पा रहे हैं। सृष्टि के चक्र निरन्तर हैं। यज्ञेश्वर के यज्ञ निरन्तर हैं।

कल्पवृक्ष उल्टा है। पदार्थ क्षीरसागर में सृष्टि को प्राप्त हो रहे हैं और उल्कापात द्वारा पृथ्वी पर बरस रहे हैं। इस पेड़ की जड़ें क्षीरसागर से पदार्थ ग्रहण करती हैं और फल टूटकर गिरते हैं भूतल पर। एक ओर सृष्टि नूतन पशु-पक्षियों की, मुस्कराते नन्हें सुकुमारों की ; झिलमिलाते रंग-बिरंगे पुष्पों की; नाना रसीले फलों की। दूसरी ओर निरन्तर है सृष्टि नाना सुवर्ण तत्व धातु आदि पदार्थों की। प्रतिक्षण असंख्यों-असंख्यों यज्ञ कर रहा है कौन ? प्रतिक्षण नूतन सृष्टि कर रहा है कौन ? अरे ! जानते नहीं क्या ? मेरा कन्हाई है ! आत्मा ॐ है ! पहचान रे जड़ ऊखल ! पहचान कि उसके यज्ञ स्पर्श से ही राख बोलने लगा है। चलने लगा है। लोक-लोकान्तर की कथा सुनाने लगा है।

सूर्य को जगत-आत्मा कहा क्यों ? आत्म-प्रतीक बनाया क्यों ?

सूर्य के चारों ओर रुद्रवलय है, यही प्रकाशवान हवनकुण्ड मुझे दिखाई पड़ता है, जिसे मैं सूर्य मान बैठा हूँ। अन्यथा सूर्य इस वलय के लाखों मील भीतर है तथा इतना अधिक न तो प्रकाशवान और न ही गर्म ही है। सूर्य-पृथ्वी जिसे द्यावा-पृथ्वी कहा है; उसका अपना वायुमण्डल है तथा सूर्य-पृथ्वी की माया का नियन्त्रण भी यह रुद्रवलय करता है, जिससे इस विशालकाय-ग्रह की माया स्थिर हो चुकी है। न घटती है, न बढ़ती है। जीवन के लिये वह ग्रह अति उपयुक्त है। मजे की बात यह कि सूर्य पर प्रकाश भी उतना तीव्र नहीं है जितना कि पृथ्वी पर ! एक हल्की नीली रोशनी ! हल्की-हल्की ठन्डक चौंकिये ! नहीं ! यह सब खेल है माया का ! पृथ्वी पर माया से जब ब्रह्म संग्राम करते हैं तो तेज प्रकाश होता है। यदि

यहां क्षीरसागर की तरह माया न हो तो सूर्य से आने वाली किरणें कुछ भी प्रकाश न कर सकेंगी। क्षीरसागर की अन्धेरी खामोशी घेर लेगी इस ग्रह को। जितनी भारी माया; उतना संग्राम भयंकर ! भारी संग्राम जितना; उतना प्रकाश निरन्तर ! सुना ! क्या कहते हैं वेद ! सुना दो अंकल साम को ! ठीक कर लें किताब अपनी ! चन्द्रमा पर माया कम है तो प्रकाश भी कम है ! जितना चमकता चन्द्रमा आपको यहाँ से दिखता है उतना प्रकाश भी नही है उस ग्रह पर ! कारण ? माया बहुत कम है ! ब्रह्म का माया-संग्राम उतना भयंकर नहीं हो पाता है।

रुद्रवलय में महाप्रलय को प्राप्त हो उल्कापिण्ड जो सूक्ष्म-ब्रह्म में परिवर्तित हो उठते हैं, उनके समूह और अधिक आगे सूर्य के भीतर नहीं जा पाते हैं। ब्रह्म जब तेज में परिवर्तित होता है तो सदा शान्त क्षीरसागर ढूंढ़ता है। अधिक माया में कदापि जाता नहीं है। इसलिये रुद्रवलय में परिवर्तित हुए कुपित सूक्ष्म तेज-ब्रह्म पलट कर क्षीरसागर में भागते हैं; सूर्य के भीतर जाने का प्रश्न ही नहीं उठता है। अब, जब यह ब्रह्म उसके भूतल पर गये ही नहीं तो भीषण युद्ध सूर्य-पृथ्वी के भूतल पर हो कहां से ? युद्ध नहीं होगा तो प्रकाश आवेगा कहाँ से ? इसलिये मित्रों ! नाना ग्रहों में प्रकाश बांटने वाले के घर अन्धेरा है। चिराग तले अन्धेरा। यह चमत्कार है माया का ! सुनाते हैं सनातन वेद !

यह तेज के पुंज जब भूतल पर (धक्का खाकर रुद्रवलय में) उतर आते हैं तो पृथ्वीतल को छू जाते हैं। यहाँ से छिटक कर पलट भागते क्षीरसागर को। परन्तु इनमें बहुत से सूक्ष्म-तेज-ब्रह्म छले जाते हैं भूतल पर। वह तेज के ब्रह्म जो शरीर में प्रविष्ट हो गये जीवधारियों के अथवा वृक्षों, पौधों के तो वे क्षीरसागर में इन यन्त्रों में शान्त हो तत्व में परिवर्तित हो जाते हैं। इन्हें क्षीरसागर चाहिये। माया में रह नहीं सकते हैं। चाहे वह क्षीरसागर बीज में मिले, जिन्हें किसान ने धरती में उपजने को डाल दिया है; पेड़ पौधे में मिलें; पशु शरीर में अथवा पक्षी शरीर में मिले अथवा मनुष्य के शरीर में मिले। इन्हें क्षीरसागर से मतलब ! आये

जैसे ही क्षीरसागर में, तो ऊष्मा त्यागकर शान्त हो सो गये। अब आत्मा विष्णु इनका जो चाहे सो पदार्थ बनावे! विष्णु का भोजन तो यह सूक्ष्म तेज-बिन्दु ही हैं। इनके अतिरिक्त उसकी सृजन क्रिया चल नहीं सकती। इस प्रकार सूर्य आत्मा-कुण्ड ने सम्पूर्ण आत्माओं को भोजन स्वरूप तेज के सूक्ष्म-ब्रह्म प्रदान किये तो जगत-आत्मा कहाने का सम्मान पाया। इस प्रकार ऊपर बताये गये यज्ञों के अतिरिक्त सूर्य द्वारा वलय में किये जा रहे निरन्तर यज्ञ को भी महाप्रभु नित्य स्मरण करें। प्राणाधार है, यह यज्ञ सम्पूर्ण चराचर का।

यह रुद्रवलय का तेज-यज्ञ सूर्य से आरम्भ नहीं होता है। यह सनातन-लोक से आरम्भ होता है। सनातन-लोक का वलय सर्वाधिक विशाल तथा विस्फोटक है जिसमें ग्रह के ग्रह भंवर में फंसकर क्षणमात्र में सूक्ष्म-तेज-ब्रह्म में परिवर्तित हो, क्षीरसागर में छितरा जाते हैं। करोड़ों मील का यह वलय निरन्तर अत्यधिक गति से सूक्ष्म-ब्रह्म क्षीरसागर में फेंकता है।

सूक्ष्म-ब्रह्म-समूह तेज गति से राह में पड़ने वाली परिक्रमा-हीन उल्काओं को समेटकर ब्रह्म-लोकों में प्रविष्ट हो जाते हैं, जहाँ पुनः ब्रह्म-लोक के भारी रुद्रवलय से विध्वंसक हो मार्ग के उल्का-पिण्डों को समेटकर देवलोक के रुद्रवलय में प्रविष्ट हो पुनः विध्वंसक हो, क्षीरसागर में आ जाते हैं। जहाँ से पुनः उल्का आदि राह में पड़ने वाले परिक्रमा एवं परिभ्रमण हीन पिण्डों को समेटते हुये सूर्य-ग्रह की रुद्रवलय में प्रविष्ट हो जाते हैं। पुनः सूर्य की रुद्रवलय में विस्फोटित हो नाना ग्रहों में प्रविष्ट हो जाते हैं। ग्रह-से-ग्रह; पुनः ग्रह-से-ग्रह! इस प्रकार गति अपनी घटाते हुये क्षीरसागर में शान्त हो पुनर्सृजन में लग जाते हैं।

इस प्रकार गीता में कहा है कि हे अर्जुन! मैं जो 'सनातन' हूँ सहस्त्रों सूर्यों को तेज देता हूँ। यज्ञ की यह प्रक्रिया निरन्तर है तथा प्रकाश की गति से भी तीव्रतम गतियों को, सनातन से प्रकट हो; प्राप्त होती है। सनातन-लोक का यज्ञकुण्ड (वलय) सर्वाधिक भारी है। उसके बाद यज्ञ-कुण्ड ब्रह्म के, अति विशाल एवं शक्तिशाली हैं। तत्पश्तात् देव-लोक के यज्ञ

कुण्डों का वर्णन आता है तदनन्तर कुण्ड सूर्य-देव का है। उसके उपरान्त यज्ञ कुण्ड पृथ्वी आदि ग्रहों के हैं। तदनन्तर यज्ञ-कुण्ड आतमाओं के हैं। यह यज्ञ के रहस्य अति महान् हैं। आतमा-कुण्ड इस क्रम से सबसे छोटा आया है परन्तु यही आत्मा-कुण्ड यदि शरीर रूपी सामग्री को यज्ञ कर तेज में परिवर्तित कर परम् हो सके तो परम् + आत्मा = परमातमा होने से सनातन-लोक के यज्ञ-कुण्ड का स्वयं यज्ञेश्वर बन जाता है।

हे नाना देवाधिदेव ! बताओ कि कौन महान् है ? सनातन यज्ञ-कुण्ड का अधिपति यज्ञेश्वर परम + आतमा = परमातमा, कृष्ण मेरा ! राम मेरा ! ॐ सनातन भगवान मेरा !

अरे यज्ञ करो ! यज्ञ करो ! नित्य यज्ञ करो !! हे मेरे परम् मित्रों ! शरीर सामग्री का यज्ञ करो। एक साँस न जावे रीती ! आत्मा कुण्ड का आवाहन करो ! तेज को तेज में ढालकर पीते चलो, अमृत तेज का ! जय हो तुम्हारी !

यज्ञोपवीत के तीसरे सूत्र का यज्ञ ही सर्वोपरि है। वेद ने नाना यज्ञ रहस्य प्रकट करते हुये तीसरे यज्ञ की महिमा ही सर्वोपरि कही है। दशरथ मार्ग का तीसरा यज्ञ ; बुद्धि पुजारी का आत्मा हवनकुण्ड में शरीर सामग्री को यज्ञ कर सम्पूर्ण को तेज में परिवर्तित कर देना। इस प्रकार बुद्धि का यज्ञ के सूक्ष्म रहस्य को जानना और इच्छाधारी स्वरूपों में परि-वर्तित हो सकने में समर्थ होना।

क्या यह सम्भव है ? इस प्रश्न के उत्तर में प्रश्न उठता है कि, क्या यह असम्भव है ?

जिस आत्मा हवनकुण्ड ने भोजन स्वरूप ब्रह्म-सामग्री को ग्रहणकर रुद्र-क्रिया द्वारा तेज में सम्पूर्ण ग्राह्य (मल-मूत्र आदि त्याज्य को नहीं) को परिवर्तित किया, पुनः उन तेज-विन्दुओं को सृजन द्वारा रक्त, मांस, हड्डी आदि में सृष्टि की, उस आत्माकुण्ड में क्या यही सामग्री पुनः तेज में नहीं परिवर्तित हो सकती ? जो काम आत्मा हवनकुण्ड आज कर रहा है, क्या

उसी काम का आधा काम वह (आत्मकुण्ड) पुनः नहीं कर सकता ? जिसने पहले वनस्पति को तेज में बदला, वह कुण्ड क्या इस शरीररूपी वनस्पति को पुनः तेज में नहीं बदल सकता ? क्यों नहीं ? अवश्य ही आत्माकुण्ड ऐसा करने में समर्थ है। फिर देर है किस बात की ? पुजारी के यज्ञ के लिये तैयार होने की ! रे बुद्धि पुजारी ! अब मत कर देरी ! दसों इन्द्रियों की लिप्साओं को त्याग दे ! चिन्तन की बहिर्मुखी दिशाको मोड़कर अन्तर्मुखी कर दे ! आत्मा कृष्ण के संग रास रचा ! कृष्ण से कर तू ठिठोली ! खेल कन्हैया की गोद में और फिर समेट ले उसको आंचल में ! जान रे बुद्धि ! तेरा माता-पिता, स्वामी, सहायक, सखा, पुत्र, प्रिय सब कन्हैया है। कृष्ण ही तेरा प्रेम है, कृष्ण ही तेरा प्रेमी है। उसके हटते ही इस जीवन का सूर्यास्त है और गहन अंधकारमयी रात्रि है। उस रात्रि का अन्धकार भी तभी दूर होगा, जब पुनः कृष्ण आवेगा तेरे नये शरीर में तेजस्वी सूर्य बनकर ! तेज से उसके चाँद-सितारों में चमक आ जावेगी, सूर्य को तेज मिलेगा और सूर्य जगमग हो उठेगा। कृष्ण के हटते ही सूर्य का तेज नष्ट हो जाता है। मुर्दे की खुली आँख में भी रोशनी भासती नहीं है। उसे सूर्य भी अन्धेरा ही दिखता है। जब कृष्ण के न रहने पर सूर्य भी तेजहीन हो उठता है, तो चाँद-सितारों का अस्तित्व ही कहाँ ? स्वजन, बन्धु-बान्धवों की सुधि किसको ? यह ज्ञान का पाखण्ड और दम्भ का पाप, त्याग रे जड़ बुद्धि ! अरे ! कोई पीछा छुड़ा दो मेरा इस पाखण्डी ज्ञान से ! मूढ़ हो लिपट सकूं अपने कन्हाई से ! रे ज्ञान ! तू त्याग दे मुझको। जा कन्हाई के चरणों में ! रे उस प्रभु को छोड़ कहाँ भटक रहा है तू ! धिक्कार है तुझको ! धिक्कार है तुझको ! ! रे शठ ! रे पिशाच ! हट जा ! हट जा यहाँ से ! क्यों दीवार बना है तू ? रे हठधर्मी ! हट जा किनारे ! लिपट लेने दे मुझे कन्हाई से। रे अभिशप्त ! नष्ट हो जावे भ्रम तेरा। मिट जावे तम तेरा !

मुझ नीच पर पुष्प मत चढ़ाओ रे भक्तों ! हर सांस का पापी हूँ मैं ! अरे ! दशानन बना फिरा ! बहिर्मुखी हो डिग्रियां बटोरता फिरा। आत्मसंगी हुआ कहाँ ? मैं बना था आत्मद्रोही ! कृष्णद्रोही ! ! हा !

कितना भटकाया मुझे रे नीच कंस तूने ! सांसें गवां चला । धड़कने बेकार गईं । मनुष्य रूप में पशु था मैं तो ! मत चढ़ाओ फूल मुझ पर ! भयंकर अग्नि, आत्मग्लानि की, जलाये जाती है मुझको ! सम्मान का अधिकारी नहीं हूँ मैं ! भक्त-भक्त में समाये रे कृष्ण मेरे ! अब तो समेट ले; लिपटा ले मुझको ! बताता क्यों नहीं इस जन-जन को; कि यह दास तुम्हारा ज्ञान नहीं चाहता है; सम्मान नहीं चाहता है । चाह है एक कन्हाई की ! मात्र कृष्ण की !

यज्ञ तीसरा यदि कर सके रे मनुज ! आत्माकुण्ड में शरीर सामग्री यज्ञ कर तेज में परिवर्तित कर सके यदि तू ! तो कितना महान है कि यज्ञकुण्ड का अधिष्ठाता, अधिपति है तू ! अन्यथा प्रकृति और माया का भटकता, दुख पाता खिलौना है ।

तीन गर्भ से निकलना पड़ता है तुझको ! तब शुरु होता है तेरा बाल्यकाल !

प्रथम गर्भ है वनस्पति का । भस्मी से सुन्दर वनस्पति में परिवर्तित हुआ था; गर्भ में वृक्षों के ।

दूसरा गर्भ था स्त्री का । जिसके गर्भ में पुनर्सृजन द्वारा बालक स्वरूप में आया है । आज बैठा है सामने मेरे !

तीसरा गर्भ है पृथ्वी-माया का । जब तक तू इस पृथ्वी की माया (gravity) में है तेरी स्थिति गर्भस्थ शिशु की है । गर्भ में पड़े पिण्ड की भाँति; गर्भ में ही विचरण करता हुआ; नाना स्वप्न देखता हुआ; तू कितने भारी भ्रम में फँस बैठा है । मान बैठा है स्वप्न को सत्य ! रे भोले भक्त ! अभी तो तेरा बाल्यकाल भी आरम्भ हुआ नहीं है । निकल बाहर इस पृथ्वी की माया से, तेजस्वी कृष्ण कन्हैया होकर ! गर्भ के भ्रम में पड़, स्वयं को नष्ट न कर ! चेत, सनातन चेत ! कहीं यह पिण्डस्वरूप अस्तित्व तेरा इस गर्भ में खण्डित न हो जाये और स्वप्न सब चूर हो जावें तेरे ! पुनः राख वनस्पति और पुनः पिण्डरूपी मानव—भटकता गर्भ में, पृथ्वी

माया के ! स्वप्न लुटे बार-बार ! स्वजन छिने बार-बार ! ज्ञान मिटे बार-बार ! माया में गर्भ की, भटकता यह पिण्ड, क्यों मान बैठता है कि स्वप्न ही सत्य है ! यह माया कितनी गहन है ! अभी जिसका बाल्यकाल भी आरम्भ हुआ नहीं, उसे लगता है कि वह बालक युवा और युवा से प्रौढ़ और प्रौढ़ से वृद्ध हो मृत्यु की कगार पर खड़ा है। अरे देखो ! कैसा विचित्र पाखण्ड फैलाये है यह माया। पहचान ! पहचान स्वयं को रे भोले भक्त ! अंजुलि से जल फिसल रहा है।

भक्ति-यज्ञ कर ! ज्ञान-यज्ञ कर ! कर्म-यज्ञ कर ! ध्यान के कुण्ड में प्रज्जवलित कर आत्मारूपी अग्नि को ! पावन तेज में परिवर्तित कर दे सम्पूर्ण को। नष्ट हो जावे पाखण्ड माया का सारा !

ज्ञान को आत्मा हेतु ही ग्रहण कर ! भक्ति को आत्मा हेतु ही धारण कर ! कर्म को आत्मा हेतु ही गति दे ! कल्याण हो जावे तेरा !

ज्ञान जो भौतिकता के लिये है, वह महापाप है। भ्रम, पाखण्ड, ढोंग और गहन भटकाव का मार्ग है। क्यों ? क्योंकि स्वयं से दूर ले जाकर पथ-भ्रष्ट कर देता है और अभिमन्यु की भाँति; फंसकर मायाओं के चक्कर में; तू छिन्न-भिन्न हो जाता है। स्वप्न को सत्य मान जो, स्वप्निल ज्ञान ले रहा है तू ! बता कि कैसा सत्य मार्ग दिखावेगा तुझको ?

भक्ति लिप्साओं की न कर ! स्वप्न के स्वजनों को अपनी भक्ति का इष्ट न बना ! मिट्टी का संग, मिट्टी बना देगा तुझको ! शराबी का संग शराबी बना देगा तुझको ! संग का दोष अति भारी है। संग का पुण्य मोक्षदायक भी है। क्यों न करे संग तू उस आत्मा अमर का, कि संग का पुण्य मिले और अमर हो जावे तू ! भक्ति कर कन्हाई की ! निष्काम हो ! अर्कता बन ! यज्ञोपवीत रूपी गाण्डीव पर, त्यागरूपी पैने वाणों से खण्ड-खण्ड कर दे माया सारी ! मोह का त्यागकर, लिप्साओं का त्यागकर, क्रोध का त्यागकर, घृणा का त्यागकर, अहम्भाव का त्यागकर, वात्सलय का त्यागकर, सब मार्गों का त्यागकर एक आत्मा की शरण में जा !

"सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ।"

कर्म जो मिट्टी बटोरने का है, मोक्ष दिला सकता नहीं है ! कर्म जो मायाओं में पड़ सोना-चांदी आदि बटोरने का है, मोक्ष दिला सकता नहीं है । यह सब महापाप है । पुण्य कहा किसने ? जिसने धर्म का त्याग कर दिया है; जिसने मोक्ष को लक्ष्य बनाया ही नहीं, उसके हेतु की गई सेवा भी मोक्ष नहीं दिला सकती । अरे ! उस अधोगति को जाते मनुष्य की सेवा जब करेगा तो उसका संग भी तो करेगा तू ! संग दोष लगेगा । तेरा काम तो कर्म करते हुये भी स्वयं को अर्कता मानकर, आत्म-मार्ग में निरन्तर आगे बढ़ते चले जाना है । जिससे अपने भीतर के समाये उस युगों-युगों के विपरीत को मिटाकर बुद्धि और आत्मा का योग करा सके तू ! इसलिये आत्म-मार्ग में बढ़ते कदम ही सत्य कर्म हैं, शेष स्वप्नमात्र हैं । स्वप्न में की गई सेवा तुम्हारी, क्या जागने पर फलदायिनी हो सकती है ? स्वप्न में तुमने पड़ोसी की बहुत सेवा की । प्रातःकाल उठकर उससे फल मांगने जाओ । क्या उत्तर देगा ? डाक्टर के पास जाकर दिमाग का इलाज कराने की सलाह ही देगा । इसलिये स्वप्न में किये गये कर्म का फल नहीं है, सत्यरूप में । स्वप्न की सेवा का फल स्वप्न में ही मिलेगा । मोक्ष तो जागृति है । उसमें स्वप्न का फल चाहने के अधिकारी तुम कैसे हो सकते हो । इसलिये, हे मेरे प्रिय सखाओं ! मत फूलो कि हमने इतना दान किया; फलाने की इतनी सेवा की; भगवान के यहाँ न्याय ही नहीं; क्या फल मिला ? वगैरह-वगैरह । अरे ! स्वप्न का कहीं तारतम्य होता है ? स्वप्न तो होते ही उटपटांग हैं । हम सेवा और दान का जो दम भरते हैं और भगवान को कोसते हैं; एक क्षण भी तो नहीं जान पाते कि, हम अपने में ईमानदार ही कब थे ? आत्मा का मार्ग न लेकर, उसके विपरीत जा, हम तो आत्मद्रोही थे । फिर और कैसा न्याय मिलता हम आत्म-द्रोहियों को ? बताओ ! एक ढोंगी, पाखण्डी बना तू उस आत्मा के विपरीत चल दिया जनसेवक का बिल्ला चिपकाकर—अरे ! बता कि चला किसकी शक्ति से; देखा किसकी शक्ति से; सोचा किसकी शक्ति से; भस्मी से यह रूप पाया किसकी शक्ति से; और बता कि कितना जाना तूने उसको ?

कितने अहसान उतार सका तू उसके ? पहचानता क्यों नहीं कि, तंग आकर लात मार, बाहर निकल जावेगा जब, तब होगी क्या गति तेरी ?

भगवान को कोस रहा है तू ! जिसने सनातन-लोक का यज्ञकुण्ड प्रकट किया तेरे लिये ! प्रतिक्षण ग्रहों को तेज में प्रज्जवलित कर रहा है वह यज्ञ द्वारा तेरे लिये ! ब्रह्मलोकों अनेकों में उसने सर्वत्र यज्ञकुण्ड बनाये तेरे लिये ! नित्य यज्ञ कर रहा है तेरे लिये ! देवलोकों असंख्यों को यज्ञ-कुण्ड प्रदान किये उसने । नित्य यज्ञ करते सारे प्रतिक्षण—तेरे लिये ! सूर्यों असंख्यों-असंख्यों को यज्ञकुण्डों से प्रज्जवलित किया उसने सिर्फ तेरे लिये ! ग्रहों में नित्य असंख्यादिक यज्ञों की सृष्टि की ! एक-एक ग्रह पर प्रतिक्षण निरन्तर असंख्यों यज्ञ कर रहा है, सिर्फ तेरे लिये ! उसका प्रत्युत्तर तूने क्या दिया उसको ? आज यह यज्ञ न होते तो भस्मी का रूप बदलता कैसे ? तू इस रूप में आता कैसे ? ले मुट्ठी भर राख; बना दे चार दाने गेहूँ के ! एक मन भस्मी देता हूँ तुझे—एक चूहा बना के दिखा दे !

काहे पहचाने नहीं उसको ? अरे स्वयं को पहचान ! यह ढोंग, पाखण्ड छोड़ अब ! स्वयं को जान कि, गोभी खून बनी कैसे ? बीच मायाओं में यह शरीर सड़ा नहीं; बचा कैसे ? क्या थी ताकत, कि राख बोलने लगी थी; चलने लगी थी; सोचने लगी थी; अनुभूतियाँ प्रकट हो उठी थीं—राख में ! कैसे ? स्वयं को पहचान रे बन्दे !

वेद कहते हैं कि हे मनुष्य ! तेज-रूप ब्रह्म, जो भोजन स्वरूप ग्रहण किया रश्मियों से तेरी आत्मा ने ! नाना औषध की सृष्टि की शरीर में तेरे ! उसे परमेश्वर ने नाना लोकों में यज्ञ कर भेजा था तेरे पास । प्रत्युत्तर में तुझे भी चाहिये कि तू भी नित्य यज्ञ करे ! यज्ञ से ही यह लोक माया के अतिभार को प्राप्त न होगा, तो इसकी महाप्रलय न होगी । इस ग्रह की रक्षा के लिये, सम्पूर्ण वनस्पति की रक्षा के लिये, सम्पूर्ण भूत प्राणियों की रक्षा के लिये—तू नित्य यज्ञ करे !

बन्धुओं ! इस सत्य को यूं स्पष्ट करता हूँ जिससे आप इसके

महत्व का ज्ञान कर सकें तथा नित्य यज्ञ कर, इस पृथ्वी और सम्पूर्ण वनस्पति-जन-जन्तु—जीवन की रक्षा कर, महापुण्य को प्राप्त हो सकें।

उल्कापात द्वारा जो भार इस पृथ्वी पर बढ़ता है—लगभग उतना ही ब्रह्म विघटन (decay) द्वारा माया से लौटकर क्षीरसागर पहुंच जाता है। जैसा कि इससे पूर्व वेद की व्याख्या में मैं आप भक्तजनों को बतला चुका हूँ—पदार्थ निरन्तर माया द्वारा विघटित होते रहते हैं।

परन्तु रश्मियों से जो ब्रह्म शरीर में वनस्पति, जीव, जन्तु, पशु, मनुष्यों आदि ने ग्रहण कर लिये—वह भार स्वतः क्षीरसागर को लौट नहीं पाता है। यदि इस ग्रह पर जीवन न होता तो यह सूक्ष्म तेज ब्रह्म फंसते ही नहीं। यह तो शरीर के भीतर माया मुक्त क्षेत्र होने से; रुक जाते हैं। क्षीरसागर में इन नाना शरीरों के, यह शक्ति का संचार करते हुए, सृजन क्रिया द्वारा नाना प्रकार के पदार्थों में परिवर्तित हो जाते हैं। इससे पृथ्वी का भार बढ़ जाता है। यदि यह भार पुनः तेज में परिवर्तित कर न लौटाया गया इस ग्रह से, तो माया का विस्तार भारी होने लगेगा। इस पृथ्वी का परिक्रमा पथ बढ़ने लगेगा। यह सूर्य-परिवार से बाहर निकलने लगेगी। इसका महाप्रलय अवश्यंभावी हो जावेगा तथा यह सम्पूर्ण ग्रह माया की अधिकता के कारण नष्ट हो जावेगा। प्रतिक्षण आते टनों तेज-बिन्दु सम्पूर्ण जीवन द्वारा निरन्तर ग्रहण किये जाते हैं। इससे प्रतिक्षण पृथ्वी का भार बढ़ता है।

इस भार को बढ़ने से रोकने के लिये सनातन वेद नित्य यज्ञ कर, सामग्री को तेज में परिवर्तित कर, क्षीरसागर को लौटाने का आदेश करते हैं। इससे तेज में परिवर्तित हो, सामग्री क्षीरसागर चल देती है, तो पृथ्वी का भार घट जाता है। इसकी माया बढ़ने नहीं पाती है, महाप्रलय की नौबत नहीं आती। इस प्रकार यज्ञ के द्वारा इस ग्रह एवं सम्पूर्ण चराचर की रक्षा होती है।

इस प्रकार जितना तुम सनातन से, ब्रह्मा से, देवों से तेज ग्रहण करते

हो उसे यज्ञ द्वारा; उनको तेज में ही लौटा दो। इससे जो तेज के द्वारा इस ग्रह पर पदार्थ बने उतने ही पदार्थ पुनः तेज में परिवर्तित हो लौट गये। मैंने सनातन को, ब्रह्मों को, देवों को, सूर्यादिकों को कृतज्ञतापूर्वक अपना भाग अर्पित कर दिया। जितना ग्रहण किया उतना भक्तिपूर्वक लौटाया भी। यह भोजन-सामग्री को अग्निकुण्ड में यज्ञ करने का रहस्य है जो मैंने आपको वेद से बताया। यह यज्ञ अति महान है। इसलिये प्रत्येक सनातन को चाहिये कि वह नित्य यज्ञ कर इस पृथ्वी की माया को बढ़ने से रोके और अपने इन पवित्र कृत्यों द्वारा सम्पूर्ण चराचर का आशीर्वाद प्राप्तकर मोक्षमार्ग पर अग्रसर हो।

कुछ विद्वानों ने इसे वायु-दूषण को मिटाने के कारण यज्ञ करने को कहा। यह असत्य है। अज्ञान है। यह यज्ञ विज्ञान का चरम है। यह यज्ञ स्वयं में एक महा तपस्या का फल लाता है। यज्ञ न होने से माया (gravity) का दबाव पृथ्वी पर तेजी से बढ़ने लगता है। दबाव पड़ने से बुद्धि में चंचलता, शरीर में विकार, स्नायुमण्डल में बढ़ता तनाव, बुद्धि का भ्रम एवं सम्पूर्ण जन-जीवन का हिंसक हो, नष्ट-भ्रष्ट हो जाना स्वाभाविक हो उठता है। इसलिये माया का प्रभाव निरन्तर घटाते रहना चाहिये जिससे मन विकार रहित रहे। स्नायुमण्डल शान्त रहें तो तपस्वी स्वरूप जीवधारी हों। माया का भार बढ़े नहीं तो महाप्रलय का भय न हो।

विश्व का सम्पूर्ण वैज्ञानिक मण्डल काट नहीं सकता है वेद के इस तथ्य को। विज्ञान का चरम है, वेद सनातन के। जिस माया के भिन्न-भिन्न प्रभाव को आधुनिक विज्ञान अभी सही तरह पहचान भी नहीं पाया है, वेद ने साधारण ढंग से मात्र उपमाओं में इसका वर्णन और उपचार बताया है। इसे अधिक महत्व नहीं दिया है, उन्होंने सर्वाधिक महत्व तीसरे यज्ञ को ही दिया है। अमरपद, मोक्षपद को ही लक्ष्य माना है। "जिस प्रकार माया का भार घटाने के लिये मनुष्यों को चाहिये कि वे नित्य यज्ञ करें, उसी प्रकार मोक्षमार्ग पर जाते योगी को चाहिये कि शरीर का नित्य होम करे।" इस प्रकार मात्र उपमाओं में ही वेद इस ज्ञान को देते

हैं। इससे स्पष्ट है कि वैदिककाल में यह ज्ञान सबको प्राप्त था तभी तो इसे उपमाओं में दिखाया गया।

जिसे उपमाओं में दिखाया वेद ने, वह आज भी रहस्य है पाश्चात्य विज्ञान के लिये। उस वेद का स्थान नहीं है इस देश में ! जगह की बहुत कमी है भारत में। यहाँ काफिले-कारवां चलाने वाले इसे उठाकर नालियों में रगड़ते फिरते हैं। तर्क देते हैं कि इनका जानने वाला कोई नहीं है। यह तो व्यर्थ की पुस्तकें हैं ! अब इसके जानने वाले मंगलग्रह से बुलावेंगे ! जो शिक्षा के माध्यम से तोड़ दिये गये; इतिहास के पन्नों से हटा दिये गये; आजीविका का साधन बनाने योग्य भी न रखा जिन पुस्तकों को; उनका उद्धार और अनुसन्धान होगा कैसे ? यह इस देश का अतीत इतिहास भी साक्षी है। पुर्तगाली आये ! अपने रक्त का मिश्रण इस देश में छोड़ गये। मुगल आये, फिर गोरे आये ! इस प्रकार रक्त कुछ हद तक मिल गया इस देश में। अब ऐसे देशभक्त, जातिभक्त वेद को गाली न दें तो करें क्या ? उन्हें तो विदेशी भाषा ही सुनने में आती है। भारत में रहकर भी मन ही मन कोसते हैं स्वयं को, कि क्यों न पैदा हुए इंग्लैण्ड या अमरीका में। ऐसे प्रचारों से, ऐसी निन्दा से, प्रत्येक सनातन को दूर रहना चाहिये तथा अपने धर्म और दर्शन से कदापि दूर नहीं होना चाहिये, एवं तथा इन सनातन द्रोहियों को उचित शिक्षा देनी चाहिये। तुम धर्म और दर्शन की रक्षा करो; धर्न तुम्हारी रक्षा करेगा और अमरपद प्रदान करेगा। जो धर्म का नहीं वह अपने स्वजन का कैसे होगा ? देश का कैसे होगा ? मैं आपको साम्प्रदायिक होने का आदेश कदापि न दूंगा। साम्प्रदायिकता महापाप है। दशानन रावण का धर्म है वह तो। आत्मा-मात्र का धर्म अपनाइये। जो भटक गये हैं उन्हें भी सही राह पर लगाइये। जो सनातन द्रोही हैं वह आत्मद्रोही है। आत्मद्रोही को मनुष्यता के अधिकार कैसे ? पिशाच को पिशाच जानिये। आत्मद्रोही कभी देशभक्त हो सकता नहीं। आत्मद्रोही तो पितृद्रोही और मातृद्रोही होता है; सन्तति-द्रोही और जातिद्रोही होता है। उससे सावधान रहें। उनके मिथ्या प्रचार में आवें नहीं। धर्म का अपमान सुनना महापाप है।

भक्तगण ! यज्ञ के महान रहस्यों का संक्षिप्त परिचय दिया मैंने आप महाप्रभुओं को। नारायण ! आपके रक्षक हों ! महाशिव कल्याण करें ! ब्रह्मा आपको अमर-तेज प्रदान करें ! हे जन ! जन !! में समाये मेरे राम ! जय हो तुम्हारी ! जय हो !!

प्रभुओं ! जानो कि सृष्टि का चक्र आरम्भ यज्ञ से हुआ तथा क्षीरसागर में हुआ। पहले न मुर्गी हुई और न अण्डा ! न एमीबा हुए न बैक्टीरिया! प्रकृति की तीन आदि महाशक्तियाँ ब्रह्मा-विष्णु-महेश नाम हैं जिनके! उनके द्वारा सूक्ष्म-तेज-स्वरूप आत्माओं का स्वरूप प्रकट हुआ। इन आत्माओं ने यज्ञों द्वारा क्षीरसागर में नाना रूप धारण किये। निरन्तर यज्ञों द्वारा सूक्ष्म-ब्रह्म-बिन्दुओं का क्षीरसागर में सृजन कर नये-नये स्वरूप बनाये। नाना-ग्रहों की मायाओं के प्रभाव में आकर स्वरूप और आकार बनते, बिगड़ते रहे। धीरे-धीरे इनके विचरण पथ बढ़ने लगे और इस प्रकार आदि महाशक्तियों ने वनस्पति और जीवधारियों की सृष्टि आरम्भ कर दी। यह एक बहुत बड़ा विषय है तथा यहाँ पर इसका कोई महत्त्व नहीं है। पहली कक्षा से दूसरी कक्षा में मोक्ष की, जब आप पहुंचेंगे तो स्वयं आपको यज्ञ द्वारा सृष्टि के रहस्य का ज्ञान होगा। इससे पूर्व यह ज्ञान किस काम का। पहले तो मार्ग का ज्ञान हो ! लक्ष्य का निर्धारण हो ! जब लक्ष्य पर पहुंच लेंगे तब आगे की बात सुनेंगे—सुनावेंगे।

ब्रह्मचारी का भोजन है तेज ! योग की स्थिति में ऊपर उठता हुआ योगी सामग्री को अग्नि में अर्पित कर यज्ञ करता हुआ प्रकट होते तेज की ध्यान मार्ग से स्तुति गाता हुआ, प्रार्थना करता है कि हे तेज के सूक्ष्म-ब्रह्म ! तुम क्षीरसागर पाने को आतुर हो। हे प्रभु ! तुम दूर के क्षीरसागर का चिन्तन त्याग मेरे शरीर के क्षीरसागर को ग्रहण करो। अपना तेज मुझे प्रदानकर मुझे यज्ञ में, आत्म-यज्ञ में सफल बनाओ ! मेरे साथ क्षीरसागर में प्रविष्ट हो ! मैं क्षीरसागर जाने के मार्ग पर हूँ ! हे दिव्य-तेज ! मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ ! तुम्हारा आवाहन करता हूँ ! मेरे आत्म-यज्ञ का हेतु हो !

इस प्रकार जब योगी आवाहन करता है यज्ञ-कुण्ड का; तो लपट नागिन की तरह झुकने लगती है। सम्पूर्ण तेज उसके शरीर में लोप होने लगता है। योगी अब भोजन स्वरूप तेज को ही ग्रहण करता है। उसका मार्ग सम्पूर्ण को यज्ञकर तेज में परिवर्तित करना है। तेज ही उसके शरीर में नाना औषधि की सृष्टि करता है। इस प्रकार योगी सूर्य की रश्मियों से तेज को ग्रहण करता निरन्तर तेज मार्ग पर बढ़ता चला जाता है। इस प्रकार योगी के यज्ञ द्वारा भोजन स्वरूप तेज को ग्रहण करने के वेद के रहस्य को संक्षिप्त रूप से बताया मैंने, आप महादेवाधिदेवों को!

सम्पूर्ण यज्ञों में सर्वोपरि एवं मात्र एक यज्ञ जो करना तुझे है वह है आत्म-यज्ञ ! भक्ति-ज्ञान-कर्म की गाड़ी को चलाता चल, रे मस्त योगी चौड़ा, शान्त, उज्ज्वलपथ है ध्यान-मार्ग का ! झूमता चल, झूमते बादलों के संग; लहराता चल, लहराती लहरों के संग ! नदी कभी रुकती नहीं है! काल को रुकते देखा है किसने ! रुकना ही है—मौत ! नर्क की सड़न और घुटन ! चलते रहना ही है जिन्दगी। मायाओं के अवरोधों को कृष्ण के सुदर्शन से छिन्न-भिन्न करता चल ! रुक गया जो पानी—सड़ गया, बदबू आने लगी ! कीड़े कुलबुलाने लगे उसमें ! रुक गया जो धर्म—सम्प्रदाय का दूषित पोखर बनकर रह गया। रुक गया जो सन्यासी—अभिशप्त संसारी बनकर रह गया। निकलकर कमान से रुक गया जो तीर—तो उसने कभी लक्ष्य पाया नहीं ! सुन रे सन्यासी! चला चल ! चला चल ! !

जाना भी कहाँ है ! अरे भीतर ! जहाँ यशोदा का लाल बंधा है इस ऊखल से ! मिलना है उससे ! उसी आत्मारूपी कृष्ण हवन-कुण्ड के सम्मुख हो, शरीर सामग्री को आहुति रूप डालते हुए निरन्तर यज्ञ करना है। देख तो ले उस सहस्त्रों-सूर्यों-रूपी ज्योतिर्मय सूर्य को ! छट जावें मायाओं के बादल ! मत सोच ! न संशय ला ! ! न कुछ सुन—न तू सुना ! मूंद ले आंख और देख कन्हाई को! न सुन अब बात मेरी—बन्द कर रे कान बाहर के ! भीतर के कान खोल ! सुन क्या कह रहा है तेरा कन्हाई ! यज्ञ कर ! यज्ञ कर ! ! पुकार रहा है तेरा कृष्ण ! क्यूं देर करे रे मानव ! !

भक्तगण ! यज्ञ के महान रहस्यों का संक्षिप्त परिचय दिया मैंने आप महाप्रभुओं को । नारायण ! आपके रक्षक हों ! महाशिव कल्याण करें! ब्रह्मा आपको अमर-तेज प्रदान करें ! हे जन ! जन !! में समाये मेरे राम ! जय हो तुम्हारी ! जय हो !!

प्रभुओं ! जानो कि सृष्टि का चक्र आरम्भ यज्ञ से हुआ तथा क्षीर-सागर में हुआ । पहले न मुर्गी हुई और न अण्डा ! न एमीबा हुए न बैक्टी-रिया! प्रकृति की तीन आदि महाशक्तियाँ ब्रह्मा-विष्णु-महेश नाम हैं जिनके! उनके द्वारा सूक्ष्म-तेज-स्वरूप आत्माओं का स्वरूप प्रकट हुआ । इन आत्माओं ने यज्ञों द्वारा क्षीरसागर में नाना रूप धारण किये । निरन्तर यज्ञों द्वारा सूक्ष्म-ब्रह्म-बिन्दुओं का क्षीरसागर में सृजन कर नये-नये स्वरूप बनाये । नाना-ग्रहों की मायाओं के प्रभाव में आकर स्वरूप और आकार बनते, बिगड़ते रहे । धीरे-धीरे इनके विचरण पथ बढ़ने लगे और इस प्रकार आदि महाशक्तियों ने वनस्पति और जीवधारियों की सृष्टि आरम्भ कर दी । यह एक बहुत बड़ा विषय है तथा यहाँ पर इसका कोई महत्त्व नहीं है । पहली कक्षा से दूसरी कक्षा में मोक्ष की, जब आप पहुंचेंगे तो स्वयं आपको यज्ञ द्वारा सृष्टि के रहस्य का ज्ञान होगा । इससे पूर्व यह ज्ञान किस काम का । पहले तो मार्ग का ज्ञान हो ! लक्ष्य का निर्धारण हो ! जब लक्ष्य पर पहुंच लेंगे तब आगे की बात सुनेंगे—सुनावेंगे ।

ब्रह्मचारी का भोजन है तेज ! योग की स्थिति में ऊपर उठता हुआ योगी सामग्री को अग्नि में अर्पित कर यज्ञ करता हुआ प्रकट होते तेज की ध्यान मार्ग से स्तुति गाता हुआ, प्रार्थना करता है कि हे तेज के सूक्ष्म-ब्रह्म ! तुम क्षीरसागर पाने को आतुर हों । हे प्रभु ! तुम दूर के क्षीर-सागर का चिन्तन त्याग मेरे शरीर के क्षीरसागर को ग्रहण करो । अपना तेज मुझे प्रदानकर मुझे यज्ञ में, आत्म-यज्ञ में सफल बनाओ ! मेरे साथ क्षीरसागर में प्रविष्ट हो ! मैं क्षीरसागर जाने के मार्ग पर हूँ ! हे दिव्य-तेज ! मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ ! तुम्हारा आवाहन करता हूँ ! मेरे आत्म-यज्ञ का हेतु हो !

इस प्रकार जब योगी आवाहन करता है यज्ञ-कुण्ड का; तो लपट नागिन की तरह झुकने लगती है। सम्पूर्ण तेज उसके शरीर में लोप होने लगता है। योगी अब भोजन स्वरूप तेज को ही ग्रहण करता है। उसका मार्ग सम्पूर्ण को यज्ञकर तेज में परिवर्तित करना है। तेज ही उसके शरीर में नाना औषधि की सृष्टि करता है। इस प्रकार योगी सूर्य की रश्मियों से तेज को ग्रहण करता निरन्तर तेज मार्ग पर बढ़ता चला जाता है। इस प्रकार योगी के यज्ञ द्वारा भोजन स्वरूप तेज को ग्रहण करने के वेद के रहस्य को संक्षिप्त रूप से बताया मैंने, आप महादेवाधिदेवों को!

सम्पूर्ण यज्ञों में सर्वोपरि एवं मात्र एक यज्ञ जो करना तुझे है वह है आतम-यज्ञ! भक्ति-ज्ञान-कर्म की गाड़ी को चलाता चल, रे मस्त योगी चौड़ा, शान्त, उज्ज्वलपथ है ध्यान-मार्ग का! झूमता चल, झूमते बादलों के संग; लहराता चल, लहराती लहरों के संग! नदी कभी रुकती नहीं है! काल को रुकते देखा है किसने! रुकना ही है—मौत! नर्क की सड़न और घुटन! चलते रहना ही है जिन्दगी। मायाओं के अवरोधों को कृष्ण के सुदर्शन से छिन्न-भिन्न करता चल! रुक गया जो पानी—सड़ गया, बदबू आने लगी! कीड़े कुलबुलाने लगे उसमें! रुक गया जो धर्म—सम्प्रदाय का दूषित पोखर बनकर रह गया। रुक गया जो सन्यासी—अभिशप्त संसारी बनकर रह गया। निकलकर कमान से रुक गया जो तीर—तो उसने कभी लक्ष्य पाया नहीं! सुन रे सन्यासी! चला चल! चला चल!!

जाना भी कहाँ है! अरे भीतर! जहाँ यशोदा का लाल बंधा है इस ऊखल से! मिलना है उससे! उसी आत्मारूपी कृष्ण हवन-कुण्ड के सम्मुख हो, शरीर सामग्री को आहुति रूप डालते हुए निरन्तर यज्ञ करना है। देख तो ले उस सहस्त्रों-सूर्यों-रूपी ज्योतिर्मय सूर्य को! छट जावें मायाओं के बादल! मत सोच! न संशय ला!! न कुछ सुन—न तू सुना! मूंद ले आंख और देख कन्हाई को! न सुन अब बात मेरी—बन्द कर रे कान बाहर के! भीतर के कान खोल! सुन क्या कह रहा है तेरा कन्हाई! यज्ञ कर! यज्ञ कर!! पुकार रहा है तेरा कृष्ण! क्यूं देर करे रे मानव!!

यज्ञ के द्वारा ही तो मनुष्य ! तेरी उत्पत्ति हुई। यज्ञ के कारण ही तो यह पृथ्वी अस्तित्व में आई। यज्ञ के कारण ही तो यह सम्पूर्ण चराचर है। यज्ञ से ही प्रकट यह प्रकाश सारा है। गहन अन्धकार के अतिरिक्त यहाँ कुछ नहीं है। यज्ञ के कारण ही तो बुद्धि तेरा अस्तित्व है। तू सोचने समझने के काबिल है। यज्ञ के द्वारा ही तो तू देख, सुन, समझ सकती है, अन्यथा राख के अम्बार में धरा क्या है ! यज्ञ ही महान है ! लक्ष्य ही मात्र यज्ञ है ! यज्ञ से ही बिन्दु ब्रह्मां बनता है यज्ञ कर ! यज्ञ कर !! नित्य यज्ञ कर अन्यथा अस्तित्वहीन हो जावेगा। यज्ञेश्वर बन रे सखा ! कृष्ण बन तू मेरा ! यज्ञ कर !! यज्ञ कर मेरे यज्ञेश्वर !

हरि ॐ नारायण हरि !!
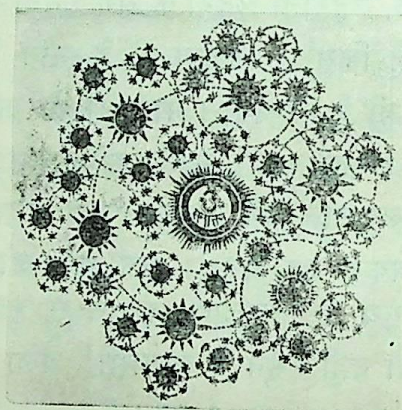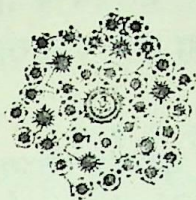
षष्टम अध्याय

कर्म : परमेश्वर

भक्तगण !

आज आप महात्माओं के सम्मुख प्रार्थना करूँगा कर्मेश्वर की ! हे मोक्षमार्गियों ! कर्म के द्वारा ही भस्मी चिता की सुन्दर वनस्पति में यज्ञ होकर पुनर्जन्म धारण करती है—मनुष्य लौट आता है । कर्म न करती आत्मायें, तो लौटता कैसे तू रे मनुष्य ! कर्म के द्वारा ही तो आत्मा परम होकर परमेश्वर होती है । जब यज्ञ पूर्ण हो जाता है, शरीर का यज्ञ कर्म के द्वारा, तो कर्मेश्वर आत्मा परम् हो, परम + आत्मा = परमात्मा बन जाती है । इसलिए कर्म अति महान है । कर्मेश्वर ही मोक्ष का क्षधिकारी है । कर्म का त्याग तो आत्म-त्याग है । आत्मा त्याग दी जिसने उसे मोक्ष कैसा ! कर्म का त्याग महापाप है । कर्म को त्यागना कदापि नहीं चाहिए । इसीलिए तो कहता है भक्त आपका, कि लिप्साओं का त्याग करो । कर्म के चिन्तन की बहिर्मुखी दिशा को अन्तर्मुखी बना दो । कर्म से त्यक्त नहीं हो । लिप्साओं से ही त्यक्त हो । कर्म के बहिर्मुखी चिन्तन से मुक्त होते चलो एवं कर्म के अन्तर्मुखी चिन्तन को दावानल सा भड़काते चलो । सारा जंगल जलकर तेज में बदल जावे तुम्हारे अन्तर्मुखी चिन्तन द्वारा ! कर्म की महानता का प्रतीक तो बनी पृथ्वी है, निरन्तर परिक्रमा सूर्य की कर रही है । सम्पूर्ण चराचर ही तो प्रतीक है कर्म का । चलायमान हैं ग्रह-ग्रह, नक्षत्र-नक्षत्र, सूर्यादिक ! यह सब ही तो कर्मशील हैं; तो रे मानव ! होगा कैसे तू कर्महीन ? कर्म ही परमेश्वर है; आत्मा अनादि है । सुना रही गीता—सुना रहे हैं वेद ! कर्म है महान !

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन !
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि !!

इससे तेरा कर्म करने मात्र में ही अधिकार होवे, फल में कभी नहीं और तू कर्मों के फल की वासनावाला भी मत हो तथा कर्म न करने में भी प्रीति न होवे। (गीता २।४६)

इस प्रकार कर्म के महान प्रभुत्व को सुनाया है महाप्रभु कृष्ण आत्मा ने, बुद्धि अर्जुन को ! अर्जुन; जो अतिशय प्रिय है जनार्दन का ! हे मानव ! तू सच्चा कर्मयोगी बन, कर्म में ही तेरी प्रीति होवे ! कर्म-फल के प्रति तेरा ध्यान न जावे। कर्मफल की लिप्सावाला तू कदापि न होवे ! कर्म को कर्म के लिए उसी प्रकार करत्ता चल; जैसा कर्म कर रहे हैं, सहस्त्रों-सहस्त्रों यज्ञकुण्ड सम्पूर्ण सनातन, ब्रह्माण्डों, देवों, सूर्यादिकों के ! ऐसा ही फल की लिप्सारहित कर्म करे तू। जैसा फल की लिप्सा-रहित कर्म कर रहे हैं, नाना पेड़, पौधे, वनस्पति ! क्या फल की लिप्सा है उनको !

प्रभुओं ! प्रभु के मुखारविन्दों से प्रकट इस श्लोक का खण्डन-मण्डन बहुत किया है आधुनिक भौतिकतावादी विद्वानों ने ! कहने लगे कर्म करते रहो फल मांगो नहीं; भला यह भी कोई बात हुई ! फल नहीं मांगोगे तो तुम्हें तुम्हारा हक देगा कौन !

फल का अर्थ न जाननेवाले ही ऐसी अज्ञानवार्ता करते हैं। कर्म और हेतु दो अलग नहीं हो सकते हैं। चिन्तन भी कर्म ही है। अर्थात् जब आप कोई काम करते हैं तो कोई लक्ष्य धारण कर ही तो कर्म को दिशा देते हैं। लक्ष्य तो उस कर्म का भाग हुआ। कर्मफल तो नहीं हुआ।

एक व्यक्ति ने जीवनोपार्जन के लिए व्यापार शुरू किया। काम किया क्यों ? धन की अभिलाषा से ! तो धन कमाने की इच्छा को ही तो केन्द्र मानकर किया गया है वह कर्म। उस कर्म का केन्द्र-बिन्दु है धन कमाना ! ऐसी स्थिति में धन कमाना तो सम्पूर्ण कर्म का लक्ष्य है। कर्म-फल नहीं है। भला लक्ष्य को कहीं त्याग सकता है कोई? क्या कृष्ण, अर्जुन को लक्ष्यहीन युद्ध करने का उपदेश करेगा ? बाणों को लक्ष्यहीन चलाने का आदेश देगा ? कदापि नहीं ! स्पष्ट है कि लक्ष्य कर्मफल नहीं वरन्

कर्म का ही चरम बिन्दु है, कर्म का मूल केन्द्र है। तब फिर कर्मफल क्या है ? किसे त्यागने का उपदेश कर रहे हैं मेरे कृष्ण !!

कर्म के उपरान्त आने वाली नाना लिप्साओं को ही कर्म-फल माना है गीता ने। किसी भी कर्म के सफल अथवा असफल होने के उपरान्त ही तो कर्म पूर्ण हुआ। लक्ष्य का मिलना तो स्वयं कर्म है। कर्म-फल है, हर्ष, शोक, विषाद, घृणा, प्रतिशोध, निराशा, व्याकुलता, ईर्ष्या, जलन ! यह सब किसी कर्म के उपरान्त ही आने वाली वासनारूपी फल की लिप्सायें हैं। इनको अवश्य त्यागना चाहिये। आत्मा कृष्ण इन्हीं लिप्सारूपी कर्म-फल की वासनाओं का त्याग करने के लिये कहते हैं। यह लिप्सायें बुद्धि को चंचल करती हैं। स्नायुमण्डल पर दुष्प्रभाव डालती हैं। बुद्धि अस्थिर होने का प्रभाव शरीर पर पड़ता है। सम्पूर्ण शरीर रोगी हो उठता है। बुद्धि सही लक्ष्य जीवन का, निर्धारण कर नहीं पाती है तो, मनुष्य लक्ष्य-हीन हो जीवन में सदा पराजय पाता, दूसरों को कोसता फिरता है। कभी भगवान को गाली देता है, तो कभी भाग्य को कोसता है; कभी अपनी ईमानदारी की ढोल-ढपली बजाता है, तो सारी दुनियाँ बेईमान, मक्कार है, के नारे बुलन्द करने लगता है। अन्तर्मुखी हो पाता नहीं और जीवन नष्ट कर बैठता है। इस प्रकार कर्मफलरूपी इन वासनाओं, लिप्साओं के कारण, आप देखते हैं, यह सम्पूर्ण भौतिकवादी जगत सदा दुखी रहता है। प्रत्येक व्यक्ति सारे जग को कोसता फिरता है। अपने अन्तर की गल्तियों को, जान पाता नहीं है। मृगतृष्णा के मृग की भाँति अपने द्वारा ही छला जाकर; अपने द्वारा ही पीड़ित एवं हीन होता हुआ; अपने द्वारा ही पराजय को प्राप्त हुआ; दुर्लभ मनुष्य जन्म खोकर, नाना पाप-योनियों में भटकने लग जाता है।

कर्म के इसी दर्शन के कारण; आज जो स्वयं को विश्व का सबसे महान दर्शन मानता है; हमसे विरोधी विचार दर्शाता है, वे लोग क्रिश्चियन दर्शन के कहते हैं—"वह (मसीह) सूली चढ़ गया, कि तुम सुख से जी सको ! वह (मसीह) रोया, तुम्हारे दुख देखकर।"

हमारा दर्शन कहता है कि, यह तो महापाप है। क्योंकि यह तो कर्म-फल है, कर्म नहीं है। यदि मेरे रोने से उसके दुख दूर हो सकते हैं, तो मैं एक भजनानन्दीदल जैसा, रोनानन्दीदल क्यों न बना दूं! जो व्यक्ति रोयेगा, यह दल शीघ्र उसके यहाँ पहुंच जावेगा और हरमोनियम, झाँझ, मंजीरों और तबलों पर थाप देकर उसके साथ रोने लगेगा, तो क्या उसका दुख दूर हो जावेगा ?

इसके विपरीत यदि उसके दुख में दुखी न हो, मैं अपनी मस्त पुकार उस दुखी प्राणी की फरियाद लेकर प्रभु के चरणों में करूं तो शायद वह (महाप्रभु) मेरी पुकार पर, दुख दूर कर दे उसका ! दुखी है वह ! कष्ट आया है उस पर अति भारी। करुण क्रन्दन और अविरल अश्रु उसके थमते नहीं हैं। कैसे दूर हो दुख उसका ? आओ ! आओ !! रे नगरवासियो ! आज तुम्हारा नगरवासी पीड़ित है। कष्ट अति महान है। चलो मन्दिर चलें ! आज सोने न देंगे हम कन्हाई को ! मस्त हो पुकारेंगे हम सब ! देंखे कैसे नहीं सुनेगा बात हमारी ? ग्वाल-बाल हैं हम कन्हाई के। हमारी नहीं सुनेगा तो सुनेगा किसकी ? घण्टाध्वनि करो ! शंखनाद करो ! उसे कष्ट है। उसका निवारण करना पड़ेगा उसको !

तभी उन नगरवासियों में एक व्यक्ति अर्न्तप्रेरणा से कृष्ण बन पोंछ देगा आंसू उसके ! यदि हम उसके साथ बैठ रोते तो उसके आंसू रुकते नहीं ! उसका दुख दूर होता नहीं, बहुमूल्य समय व्यर्थ हो जाता सबका ! क्यों न दुख की घड़ियों को भी मस्ती के साथ उस प्रभु के ही ध्यान में लगाते चलो। एक क्षण न जावे खाली ! शोक करना तो महापाप है। रोने से, शोक संतप्त होने से, चेहरे की कांन्ति क्षीण होती है। तेज शरीर का नष्ट होता है। तेज ही तो आत्मा है। जिस पुजारी ने तेज रूपी आत्मा मूर्ति तोड़ दी—अरे उस पतित को धर्मात्मा कहा किसने ? धर्म + आत्मा = धर्मात्मा, आत्मा मूर्ति तोड़े और कहावे धर्मात्मा। रे बुद्धि ! यह शरीर तो आत्मा का है तू तो मात्र पुजारी है; फिर कैसे तूने इस मन्दिर की मूर्ति, तेज को क्षीण किया ? तुझे तो पूजा द्वारा इस शरीर का तेज निरन्तर

बढ़ाना है। आत्मा के विपरीत जावेगा तो पापात्मा बनेगा। दुखी, रोगी, तो निश्चय ही कर्म-फल-भोग के कारण है। इस शरीर को प्रभु का मन्दिर जानते हुए, तू रोया और दुखी हुआ कैसे ? सनातन दर्शन तो मस्त पूजा का उपदेश करता है। मस्त झूमते-गाते भजनानन्दी टोले देखने में विश्वास है उसका। रोनानन्दी टोले तो महापाप का कारण हैं। किसी के दुख में रोना भी महापाप है। उससे सहानुभूति रखो और निश्चिन्त मस्त भाव से उसके लिये महाप्रभु से प्रार्थना करो। उसका दुख भी दूर होगा। तुम्हें यज्ञ का फल मिलेगा। यह दर्शन है आदि सनातन ! नित्य सनातन ! सनातन आत्माओं का; आप सब महात्माओं का !

राग, द्वेष, ईर्ष्या, घृणा, शोक आदि जो कर्मफल हैं, उनके द्वारा कोई काम भी तो सिद्ध नहीं होता है। यह समस्या का समाधान तो कदापि हो ही नहीं सकते हैं। समस्या को अति विकराल बना सकते हैं। इसलिये इनको त्यागना ही सर्वथा उचित है।

दो व्यक्तियों ने सारा अर्जित धन लगाया और व्यापार किया, अधिक धनी होने का लक्ष्य धारणकर ! काल था विपरीत दोनों सारा धन गवां बैठे। दोनों कंगाल हो गये। सम्पूर्ण धन नष्ट होने का प्रथम व्यक्ति को दुख अति महान हुआ। टूटकर वह चारपाई पर जा गिरा। चिन्ता और दुख से वह सदा के लिये टूट गया। उसकी चारपाई भी टूट गई। उसे शोक, पश्चाताप दुख ने जो घेरा तो शरीर जलकर खाक हो गया। नाना रोगों ने घेरकर उसे क्षीण कर दिया। समय से पूर्व ही वह मृत्यु को प्राप्त हो गया।

दूसरे व्यक्ति को भी कंगाल हो जाने का सद्मा लगा। परन्तु उसे सहकर उसने स्वयं को सान्त्वना दी। उसने गीता के ज्ञान का स्मरण किया और मस्त हो गया। न उसका शरीर रोगी हुआ, न उसके चेहरे की कान्ति गई। उसने सोचा ठीक है मैंने लक्ष्य धारणकर कर्म किया था। जो मेरा अधिकार था सो किया मैंने। कर्मफल का अधिकार मुझे नहीं है। चिन्तन कर्म है चिन्ता कर्मफल है। मुझे तो मात्र चिन्तन का अधिकार है;

कर्मफल, चिन्ता का अधिकारी मुझे बनाया ही नहीं है, महाप्रभु कृष्ण ने। तो पुनः चिन्तन करूँ। इस प्रकार आत्मविवेचन कर उस धनहीन ने पुनः मजमा लगाकर वस्तुयें बेचने का कार्य आरम्भ कर दिया। एक बार फिर समय ने पलटा खाया और वह धनी व्यक्ति बन गया।

इस प्रकार कर्म का अधिकार ही पुण्य है। कर्मफल तो महापाप है। कर्मफल से तो समस्या बढ़ती है; शरीर का नाश होता है; तेजहीन व्यक्ति मनहूस दिखने लगता है और उसकी अपनी मनहूसियत उसके रहे सहे काम भी नष्ट कर देती है। कर्मफल महापाप है। आत्मद्रोह है। अधर्म है। याद रखो सदा :—

चिन्तन कर्म है, चिन्ता कर्मफल है ! चिन्तन-पुण्यकर्म है; चिन्ता महापाप है ! चिन्तन कर्म-रूपी गाड़ी का ईंधन है, चिन्ता उस गाड़ी का सर्वनाश है!

कर्म कैसा हो ? प्रत्येक व्यक्ति नित्य ही कुछ-न-कुछ कर्म करता है। इसका स्वरूप क्या है ? किसे हम कहेंगे गीता का कर्मयोगी ?

इसे स्पष्ट करेगा भक्त जन-जन का ! आप महाप्रभु कृपापूर्वक सुनें।

कर्मयोगी वही है जो कर्म को, कर्म के लिए करता है ! कर्मफल की वासनाओं एवं लिप्साओं से जो सर्वथा मुक्त है। भक्तगण ! यह शरीर न तो भोजन से बलिष्ठ होता है और न व्यायाम से। शरीर सदा कर्म की सही दिशा को प्राप्त होने से तथा कर्मफल की आसक्ति से रहित होने से ही बलिष्ठ एवं देदीप्यमान होता है।

यदि भोजन से यह शरीर बलिष्ठ हो सकता तो करोड़ीमल के सारे लड़के किंग-कांग और गामा पहलवान की सारी हड्डियाँ तोड़कर रख देते—ऐसे थुल-थुल, गुलगुले न होते। दूसरी ओर बेचारे गरीब आदमी का लड़का चार कदम चलता हांप जाता, चक्कर आने लगते और लड़-खड़ा कर गिर पड़ता। परन्तु ऐसा होता नहीं है। इससे स्पष्ट है कि भोजन से ही शरीर बलिष्ठ नहीं हो सकता है।

व्यायाम से भी शरीर बलिष्ठ नहीं हो सकता है। आपने लड़कों को क्रिकेट खेलते देखा होगा। मना करने पर भी मानते नही हैं। चिल-चिलाती धूप में भाग जाते हैं। बड़ा आनन्द आता है उन्हें खेलने में। कोई उनसे पूछे कि भाई इसमें क्या आनन्द है ? लू में पागलों की तरह, पसीने से लथपथ, धूल में दौड़ते फिरते हो। गेंद से चोट खाते हो सो अलग से। तुम्हें इसमें क्या आनन्द मिलता है ? पर कुछ सुनते नही हैं। भाग जाते हैं। उस पर मजा यह कि उनके शरीर, जितना खेलते हैं पुष्ट होते हैं। चेहरे तेज से दमकने लगते हैं।

इन्हीं लड़कों को यदि मैं बुलाकर कहूँ कि आज से यह तुम्हारी नौकरी है ! इतनी तनखा मिलेगी। ड्यूटी के रूप में अब तुम क्रिकेट खेलोगे। छह महीने बाद यह सब लड़के दुबले नजर आने लगेंगे। हड्डियाँ निकल आवेंगी। गाल पीले पड़ पिचक जावेंगे। जानते हैं यह क्या कहेंगे? 'हमसे साहब इतनी मेहनत का काम नहीं होता है। हमें टेबिल वर्क दीजिये अथवा ड्यूटी के घन्टे घटाइये; हमारी तनखा बढ़ाइये साथ ही छुट्टियाँ भी बढ़नी चाहिये, वरना हम तो मर जावेंगे।'

अरे ! कल जिस खेल से यह पुष्ट और तेजस्वी हो रहे थे, आज उसी व्यायाम से रुग्ण और निस्तेज क्यों होंने लगे हैं ? स्पष्ट है कि ये पुष्ट व्यायाम से नहीं हो रहे थे। चिन्तन की दिशा जब खेल का आनन्द लेने की थी, ये पुष्ट हो रहे थे। चिन्तन की दिशा जब पहली तारीख की प्रतीक्षा की थी, तो यह कर्मयोगी से, कर्मफल की लिप्सावाला कोरा धन्धे-बाज बन गया था तो उसी कर्म से टी० बी० का मरीज बन बैठा था !

गीता कहती है, कर्मयोगी की भांति जियो ! (Play like a sports-man) कर्मफल की लिप्साओं को धारणकर शरीर को नष्ट मत करो ! इससे ही तो जग सारा है। इसी चिन्तन को मोड़कर तू कर्मयोगी बन जीवन के प्रत्येक क्षण का आनन्द ले सकता है। जितना तू मेहनती हो उतना बलिष्ठ और तेजस्वी हो। विपरीत कर्मफल की लिप्साओं में लिप्त हो गया यदि तू तो शरीर से भी गया तथा अपने द्वारा अर्जित ऐश्वर्य को भोग भी न सकेगा।

रे सेठ ! बता क्या कमाया तूने ? जब खाने का समय था तो खाये सदमे । उछलता फिरा ! मैं लुट गया ! बाजार उतर रहा है ! भारी घाटा होगा ! चढ़ गया बाजार तेरा तो भी तू हर्ष से उछलता फिरा । फिर खाये झटके । इस प्रकार लिप्साओं में पड़कर बटोरी है जो दौलत आज तो यह शरीर अब खाने में असमर्थ है । डाक्टर ने खुराक बांध दी है ! दो रोटी सूखी, थोड़ी-सी उबली हुई हल्की सब्जी, मीठा नहीं खाना है । एक टीका सुबह एक टीका शाम ।

अरे ! यह सारा धन इस कष्ट के लिये ही बटोरा था ? सूखी रोटी और उबली सब्जी तो इतनी माया बटोरे बिना भी मिल जाती । रे भोले भक्त ! शरीर को नर्क की अग्नियों में झोंकता फिरा व्यर्थ ही । धन बटोरा तो सताया स्वयं को ! धन को भोगा तो भी सताया स्वयं को । रे भक्त ! क्या मिट्टी-मिट्टी स्वयं को करने के लिये ही संग किया तूने इस मिट्टी का ?

मुलायम गद्दे पर लेटेगा तो रीढ़ की हड्डी गल जावेगी । फिर डाक्टर बोलेगा, तखत पर सीधे लेटो । दो टीके रोज लगवाओ । अच्छा सुख उठाया तूने धन का ! इससे तो चारपाई ही भली थी । गरिष्ठ भोजन लिया तो पेट खराब हो गया । उबली सब्जी और दो टीके खुराक हो गई तुम्हारी इससे तो मध्यम भोजन ही भला था । धन की अधिकता तो तुझे नष्ट कर गई । एयर कन्डीशनर लगवाया तो बाहर के वातावरण से भिन्नता के कारण अन्दर-बाहर आने-जाने से ऐक्सपोजर हो गया; गर्म-ठन्डा होने से शरीर में विकार उत्पन्न हो गये । लगवा सुईयाँ अब ! यह माया अपने को बीमार करने को लाया था ? तो बता यह करोड़ों की सम्पत्ति बटोरी काहे के लिये ? खा सकता नहीं । पहन सकता नहीं । भोग सकता नहीं । तो क्यों लुटाया शरीर बटोरने में इस मिट्टी को ?

रे धन्ना ! क्यों न खेला यह खेल सारे, एक कर्मयोगी बनकर । जितना दौड़ता, उतना बलिष्ठ और तेजस्वी होता । सत्य सदा स्पष्ट रहता और स्वतः अन्तर्मुखी हो जाता । क्रिकेट का आनन्द लेते बच्चों की तरह

तू मस्त खिलाड़ी क्यों न बना ? चिन्ता, भावी आशंका, घाटे के सदमें, आदि लिप्सा रूपी कर्मफल से क्यों सड़ा दिया बदन अपना ? अरे मूर्ख ! अब कर्मयोगी बनने का स्वांग क्या भरता है, जग के सामने । कर्मयोगी तो वह है जिसका शरीर कर्म के तेज से जगमग है । तूने कर्मयोग को जाना ही कब ! तेरे पाप तो स्पष्ट देख रहा हूँ शरीर पर तेरे ! कर्मयोगी तो महात्मा होता है । उसका शरीर तो मेहनत के तेज से, कान्तिमान सूर्य जैसा होता है । तूने एक कर्मयोगी का जीवन न धारणकर; कोरा धन्धेबाज़ का जामा पहना है । कर्मयोगी तो मस्त, कर्मफल की वासना से रहित, निरन्तर जीवन को खेल जानकर खेलता चलता है । चिन्ता, दुख, ईर्ष्या, राग, द्वेष आदि महापापों से सदा दूर रहता है वह ।

देखो ! जगवालों । इस पाश्चात्य सभ्यता ने हमें क्या प्रगति दी है । यह मनुष्य जिया उतने ही दिन; खाई उतनी ही रोटी; एक महान कर्मयोगी से कोरा धन्धेबाज बनकर रह गया । सो न सका एक रात भी निश्चिन्त होकर । घृणा, चिन्ता, शोक, ईर्ष्या, द्वेष किताब की तरह लिखे हैं चेहरे पर इसके ! कर्मयोगी का तेज नहीं है इसके मुख पर ! कहाँ है वह शाम गाँव की ! मस्त दमकते चेहरे, झूमते-गाते आल्हा ! रामायण का शोर ! दंगल की दहाड़ !! सब लुट गया ! प्रगति के नाम पर बरबाद हो गये हम ! दिशाहीन नकलची मनुष्य कर्मयोगी महान से, सस्ते धंधेबाज बनकर रह गये । सुख-शान्ति सब लुट गये ! चेहरे हुए क्लान्त !

खाई रोटी, पहले से कम; जिये दिन, पहले से कम; सुख को लुटा दिया—दुखों से घिर गये । भीड़ चौपालों पर नहीं, दवाखानों पर लगने लगी । चिन्ता ने धर दबाया दिन का चैन गया और गई रात की नींद । अरे कैसी है यह प्रगति की नई दिशा । यदि यही दिशा है; तो बताओ दिशाहीनता क्या है ?

कर्मयोग को अधिक स्पष्ट करने के लिये एक कहानी सुनाता हूँ । एक मित्र ने सुनाई थी आपके भक्त को । वे जापान गये थे । वहां एक मित्र जापानी के यहां ठहरे । जापानी बन्धु किसी मिल में फोरमैन थे ।

उन्होंने मित्र से कहा कि दो घन्टे के भीतर वह मिल में जाकर छुट्टी आदि की व्यवस्था कर लौट आवेंगे तो आगे का प्रोग्राम बनावेंगे। हमारे मित्र दो घन्टे के समय का भी सदुपयोग करना चाहते थे। उन्होंने पूछा तो जापानी मित्र ने सलाह दी कि थोड़ी दूर पर कारपोरेशन में मजदूरों की हड़ताल हो रही है, वहाँ वे समय बिता सकते हैं। यहाँ की हड़तालों आदि का ज्ञान भी उनको हो जावेगा। मित्र को उनकी सलाह पसन्द आयी। टहलते हुए उस कारपोरेशन के दरवाजे पर आये तो मायूसी हाथ लगी। वहाँ कोई चहल पहल ही न थी। एक सिपाही रोजमर्रा की भांति टहल रहा था। सोचा, शायद हड़ताल वापस ले ली गई होगी। आगे बढ़े, सिपाही से पूछा तो उसने बताया कि हड़ताल हो रही है।

बेचारे हैरान थे कि कैसी हड़ताल है यह। यहाँ न नारे लग रहे हैं; न पुलिस का ही जमघट है। गेट पर आये। गेट पर बने दफ्तर में पहुंचे; प्रत्येक कर्मचारी अपने काम पर चुस्त तैनात था। उन्होंने कारपोरेशन के भीतर घूमने की अनुमति चाही। तुरन्त मिल गई।

"आप लोग हड़ताल कर रहे हैं न !"

उन्होंने उन कर्मचारियों से पूछा तो मुस्करा कर उन्होंने स्वीकार किया कि वे हड़ताल पर हैं। अपनी बांह पर बंधे काले फीते दिखाये। बेचारे कुछ समझ न पाये। कारपोरेशन में दाखिल हो गये। पन्द्रह हजार कर्मचारी हड़ताल पर हैं। कोई उचित व्यवस्था भी नहीं की गई। न पुलिस तैनात है न दमकल विभाग ही सतर्क किया गया है। अन्दर कारपोरेशन में आये तो विस्मय से आंखें फैल गईं। प्रत्येक मशीन दना-दन काम कर रही थी। प्रत्येक कर्मचारी मशीन के साथ मशीन बना था। अरे ! कैसी हड़ताल है यह ! कौन सुनेगा बात इनकी।

"सुनिये ! आप हड़ताल पर हैं न ?" उन्होंने एक कर्मचारी को रोक कर पूछा।

"जी हाँ !"

"परन्तु आप सब लोग तो काम कर रहे हैं ? कैसी हड़ताल है आपकी ?" उन्होंने आश्चर्य से पूछा। उत्तर में कर्मचारी ने मुस्करा कर कहा, "आप हमारे यूनियन लीडर से बात करें न ! मैं ड्यूटी पर हूँ !"

"ओह ! माफ कीजियेगा ! कहाँ मिलेंगे आपके यूनियन लीडर ?"

"सामने ! उस कक्ष में जहाँ वर्क्स मैनेजर का पट्ट लगा है !"

मित्र तो चौंक पड़े। उसे रोककर पूछा ! "क्षमा कीजियेगा ! क्या आपके वर्क्स मैनेजर ही यूनियन लीडर हैं ?"

"जी हाँ ! आप उन्ही से बात करें !"

वह कर्मचारी चला गया। मित्र अवाक् खड़े कभी उसे जाते देखते, तो कभी वर्क्स मैनेजर के नाम-पट्ट को ! वर्क्स मैनेजर ही यूनियन लीडर है। वही हड़ताल करवा रहा है। क्या विचित्र गोरखधन्धा है। मेरे देश में मैनेजमेन्ट और यूनियन तो सदा दो क्षितिज होते हैं। कौरव-पाण्डव दल बन लड़ते हैं। झूमकर। मोटरें जलाई जाती हैं। दुकानें लूटी जाती हैं। गोलियाँ चलती हैं, दशहरे की आतिशबाजी की तरह ! कारें, मोटरें आदि जलती हैं, फुलझड़ियों की तरह ! औरतों की तरह सत्यानाश ! फलाने का नाश ! फलां-फलां, हाय-हाय के सुन्दर गीत गाते हैं मस्ताने ! यहाँ तो सारी माया ही उलटी है। न नारेबाजी का मजा, न आतंक की अनुभूति ! मजा यह कि मैनेजमेन्ट और यूनियन की तकरारबाजी भी नहीं उल्टा मैनेजमेन्ट यूनियन का अंग बना बैठा है। मैनेजर के कक्ष के पास गये। नाम की चिट भिजवाई। तुरन्त बुला लिये गये। "माफ कीजियेगा। आपका बहुमूल्य समय ले रहा हूँ। आपकी हड़ताल के विषय में जानना चाहता हूँ।"

"मैं आपके मन में उठते प्रश्न बहुत अच्छी तरह समझता हूँ। आपके देश से मैं सदा प्रभावित रहा हूँ। हमारा हड़ताल का तरीका विशुद्ध भारतीय है। गान्धी के सिद्धांतों पर है !"

उन्होंने मित्र से कहा कि दो घन्टे के भीतर वह मिल में जाकर छुट्टी आदि की व्यवस्था कर लौट आवेंगे तो आगे का प्रोग्राम बनावेंगे। हमारे मित्र दो घन्टे के समय का भी सदुपयोग करना चाहते थे। उन्होंने पूछा तो जापानी मित्र ने सलाह दी कि थोड़ी दूर पर कारपोरेशन में मजदूरों की हड़ताल हो रही है, वहाँ वे समय बिता सकते हैं। यहाँ की हड़तालों आदि का ज्ञान भी उनको हो जावेगा। मित्र को उनकी सलाह पसन्द आयी। टहलते हुए उस कारपोरेशन के दरवाजे पर आये तो मायूसी हाथ लगी। वहाँ कोई चहल पहल ही न थी। एक सिपाही रोजमर्रा की भांति टहल रहा था। सोचा, शायद हड़ताल वापस ले ली गई होगी। आगे बढ़े, सिपाही से पूछा तो उसने बताया कि हड़ताल हो रही है।

बेचारे हैरान थे कि कैसी हड़ताल है यह। यहाँ न नारे लग रहे हैं; न पुलिस का ही जमघट है। गेट पर आये। गेट पर बने दफ्तर में पहुंचे; प्रत्येक कर्मचारी अपने काम पर चुस्त तैनात था। उन्होंने कारपोरेशन के भीतर घूमने की अनुमति चाही। तुरन्त मिल गई।

"आप लोग हड़ताल कर रहे हैं न!"

उन्होंने उन कर्मचारियों से पूछा तो मुस्करा कर उन्होंने स्वीकार किया कि वे हड़ताल पर हैं। अपनी बांह पर बंधे काले फीते दिखाये। बेचारे कुछ समझ न पाये। कारपोरेशन में दाखिल हो गये। पन्द्रह हजार कर्मचारी हड़ताल पर हैं। कोई उचित व्यवस्था भी नहीं की गई। न पुलिस तैनात है न दमकल विभाग ही सतर्क किया गया है। अन्दर कारपोरेशन में आये तो विस्मय से आंखें फैल गईं। प्रत्येक मशीन दना-दन काम कर रही थी। प्रत्येक कर्मचारी मशीन के साथ मशीन बना था। अरे! कैसी हड़ताल है यह! कौन सुनेगा बात इनकी।

"सुनिये! आप हड़ताल पर हैं न?" उन्होंने एक कर्मचारी को रोक कर पूछा।

"जी हाँ!"

"परन्तु आप सब लोग तो काम कर रहे हैं ? कैसी हड़ताल है आपकी ?" उन्होंने आश्चर्य से पूछा। उत्तर में कर्मचारी ने मुस्करा कर कहा, "आप हमारे यूनियन लीडर से बात करें न ! मैं ड्यूटी पर हूँ !"

"ओह ! माफ कीजियेगा ! कहाँ मिलेंगे आपके यूनियन लीडर ?"

"सामने ! उस कक्ष में जहाँ वर्क्स मैनेजर का पट्ट लगा है !"

मित्र तो चौंक पड़े। उसे रोककर पूछा ! "क्षमा कीजियेगा ! क्या आपके वर्क्स मैनेजर ही यूनियन लीडर हैं ?"

"जी हाँ ! आप उन्ही से बात करें !"

वह कर्मचारी चला गया। मित्र अवाक् खड़े कभी उसे जाते देखते, तो कभी वर्क्स मैनेजर के नाम-पट्ट को ! वर्क्स मैनेजर ही यूनियन लीडर है। वही हड़ताल करवा रहा है। क्या विचित्र गोरखधन्धा है। मेरे देश में मैनेजमेन्ट और यूनियन तो सदा दो क्षितिज होते हैं। कौरव-पाण्डव दल बन लड़ते हैं। झूमकर। मोटरें जलाई जाती हैं। दुकानें लूटी जाती हैं। गोलियाँ चलती हैं, दशहरे की आतिशबाजी की तरह ! कारें, मोटरें आदि जलती हैं, फुलझड़ियों की तरह ! औरतों की तरह सत्यानाश ! फलाने का नाश ! फलां-फलां, हाय-हाय के सुन्दर गीत गाते हैं मस्ताने ! यहाँ तो सारी माया ही उलटी है। न नारेबाजी का मजा, न आतंक की अनुभूति ! मजा यह कि मैनेजमेन्ट और यूनियन की तकरारबाजी भी नहीं उल्टा मैनेजमेन्ट यूनियन का अंग बना बैठा है। मैनेजर के कक्ष के पास गये। नाम की चिट भिजवाई। तुरन्त बुला लिये गये। "माफ कीजियेगा। आपका बहुमूल्य समय ले रहा हूँ। आपकी हड़ताल के विषय में जानना चाहता हूँ।"

"मैं आपके मन में उठते प्रश्न बहुत अच्छी तरह समझता हूँ। आपके देश से मैं सदा प्रभावित रहा हूँ। हमारा हड़ताल का तरीका विशुद्ध भारतीय है। गान्धी के सिद्धांतों पर है !"

"माफ करना बन्धु ! मैं गांधी के देश से आ रहा हूँ।"

"ठीक है !" वह मुस्कराया, आपके देश के लिये हमारी हड़ताल विचित्र है। परन्तु इसमें विचित्रता क्या है ? आप जानना चाहते हैं कि हम काम क्यों नहीं बन्द करते। मित्र हमारा विवाद क्या है ? यही न ! कि हमें हमारी सेवाओं का पूरा भाग नहीं मिलता। हमारे साथ अन्याय हो रहा है। हम अभावों में पड़े जी रहे हैं। तो इससे यह प्रेरणा कहाँ मिली कि हम काम बन्द कर दें ?

'यदि आज हम काम बन्द कर दें। तीन शिफ्ट हैं पांच-पांच हजार आदमियों की, सारी मशीनें ठप्प कर दें तो लगभग दस हजार पौंड की कीमत के उत्पादन का प्रतिदिन नुकसान होगा। इस घाटे को सरकार कहाँ से पूरा करेगी ? सरकार के कोई नोटों के कुयें तो लगे नहीं है। स्पष्ट है इस घाटे को पूरा करने के लिये सरकार टैक्स बढ़ावेगी। चीजों के दाम बढ़ेंगे। मैं अपने बच्चे को रोटी पर पूरा मक्खन न दे पाऊंगा।'

'क्या आज यदि हम काम बन्द कर दें तो हमारे परिवार खाना नहीं खावेंगे ? कपड़े नहीं पहनेंगे ? जूते नहीं पहनेंगे ? इस समाज के द्वारा उपलब्ध सारी सुविधाओं का उपभोग नहीं करेंगे ? तब क्या मुझे उस समाज, देश और जाति के प्रति अनुत्तरदायी होना उचित है ? क्या यह राष्ट्र-द्रोह, जाति-द्रोह और सन्तति-द्रोह न होगा ? क्या एक जापानी राष्ट्र का हत्यारा, जाति का हत्यारा और अपनी मासूम भोली सन्तान का निर्मम हत्यारा हो सकता है ? कदापि नहीं। इसलिये मित्र हम काम बन्द नहीं करते हैं। हम देश भक्त हैं, जाति भक्त हैं, सन्तति-प्रिय हैं। हम तो सैनिक हैं अपने प्यारे जापान के।

दूसरा प्रश्न आपके मन में यही होगा कि यहाँ सुरक्षा की व्यवस्था क्यों नही है ? क्यों हो सुरक्षा की व्यवस्था ? यहाँ प्रत्येक जापानी जानता है कि मशीनें उसके खून-पसीने की कमाई है और उसकी भावी पीढ़ी की समृद्ध मुस्कान है यह ! कैसे तोड़ देगा इनको ?

'तीसरा प्रश्न आपका यह हो सकता है कि फिर हमारी हड़ताल क्या है ? तो सुनो । आज प्रत्येक कर्मचारी हमारा भूखा-प्यासा काम कर रहा है । यह स्नायु युद्ध है एक मजदूर और प्रधानमन्त्री में । हम न खावेंगे न पीयेंगे—आखिरी सांस तक मशीनें चलाते रहेंगे । जो मजदूर गिर जावेगा उसके स्थान पर दूसरा बलिदानी डट जावेगा । समाज का द्रोही न होगा कोई । मरेगा भी तो अमर शहीद सेनानी की भांति ! समाज पर बोझ हम नहीं बनेंगे । मरते दम तक हम काम करते रहेंगे । समाज को अपने हिस्से का भोजन भी देकर जा रहे हैं । हम राष्ट्र-भक्त हैं' जाति-भक्त हैं, सन्तति-भक्त हैं ! यह हड़ताल हमारी है ।'

'हमारे मित्र अपने आवेग को न रोक पाये । रो पड़े ! मैनेजर शून्य की ओर निहारता बोलता रहा, "दो मार्ग हैं वर्ग-समता के । एक मार्ग है वर्ग-घृणा द्वारा हिंसा को प्रज्जवलित कर सम्पूर्ण को नष्टकर वर्ग-समता को प्राप्त करना—कम्युनिज्म की थ्योरी है । दूसरा मार्ग है गीता का—दिखाया महात्मा गांधी ने; वर्ग-प्रेम द्वारा वर्ग-समता के लक्ष्य को प्राप्त होना । योग का दर्शन ! दो को मिलाकर एक करने का दर्शन ! द्वैत के अद्वैतीकरण का दर्शन !'

'तुमने गांधी के नाम पर कार्लमार्क्स को अपनाया और तुम्हारे देश की अर्थ-व्यवस्था पूरी तरह बरबाद हो चुकी है । तुम्हारे देश में हड़तालों और दिशाहीन राजनीति के कारण देश को जो उत्पादन का नुकसान हुआ; जो पूंजी नष्ट हो गई उसका प्रतिदिन का सूद ही तीन सौ करोड़ रुपये के लगभग है । सोचो, तीन सौ करोड़ सूद के रुपये से ही प्रतिदिन एक नया कारपोरेशन बन सकता था ; तो बेकारी तुम्हारे देश की तीन महीने से अधिक चलती कहाँ से ! कितनी सशक्त अर्थ-व्यवस्था थी और दिशाहीन नीतिज्ञों ने, किस प्रकार बरबाद कर दिया, एक महान साँस्कृतिक जन-जाति को ।'

'तुम्हारे यहाँ एक कत्ल की सजा फांसी है । परन्तु जो सामुहिक रूप से देश-द्रोही, जाति-द्रोही, सन्तति-द्रोही बन; एक विशाल देशभक्त

जन-समुदाय को भी देश-द्रोही, जाति-द्रोही, सन्तति-द्रोही बना दे उसे राष्ट्र का सर्वाधिक बड़ा सम्मान देते हो। जितना बड़ा देशद्रोही, उतना बड़ा राष्ट्रीय सम्मान उसका ! जन-जन की मासूम औलादों के हत्यारे तुम्हारे यहाँ नेता कहाते हैं। दिशा-हीनता का चरम है यह, जिसे शायद तुम प्रगतिवाद कहते हो।

'तुम्हारी तरह यह दिशाहीनता यदि हमारे देश में आ जाती तो सात दिन में हम कंगाल हो विश्व भर में भीख मांगने लगते जैसे आज तुम मांग रहे हो। तुम्हारे यहाँ औद्योगीकरण कुल आठ और बारह प्रतिशत के बीच है इसलिये तुम्हें इस भयंकर दिशाहीनता का आभास नहीं होता है। मीठा जहर इसका धीरे-धीरे तुम्हें मौत की नींद सुलाये जा रहा है। बलिहारी है तुम्हारे देश के अर्थ-शास्त्रियों की। हमारे यहाँ औद्योगीकरण अस्सी प्रतिशत है। यदि सात दिन भी यहाँ सम्पूर्ण हड़ताल हो जावे तो हम सदा के लिये बर्बाद हो जावें। चौदह दिन की हड़ताल ने इंग्लैंन्ड की अर्थ-व्यवस्था की रीढ़ ही तोड़ दी। वहाँ पैंसठ प्रतिशत के लगभग औद्योगीकरण है।'

हमारे मित्र भरे गले से बाहर चल दिये। इस देश में तो गीता सजीव है ! प्रत्येक शरीर में गीता के श्लोक उतर चुके हैं। यह कर्म के मर्म के ज्ञाता हैं।

बाहर आकर देखा, दूसरी शिफ्ट के मजदूर भी आ चुके हैं। उन्हें मालूम है कि पहली शिफ्ट अब बाहर नहीं आवेगी। उन्हें कोई बाहर ला भी नहीं सकता है, क्योंकि आत्म-हत्या वहाँ कानूनी है। इसलिये पुलिस भी अब उन्हें बाहर न ला सकेगी। दूसरी शिफ्ट का प्रत्येक कर्मचारी अपने लिये काम लाया है। फुटपाथ पर बैठे कोई गुड़िया बना रहा है, कोई डलिया, कोई लिफाफे तो कोई पंखे। प्रत्येक व्यस्त है दो प्रकार के नारे अब लगने लगे हैं। जापान जिन्दाबाद ! यूनियन जिन्दाबाद ! किसी का मुर्दाबाद नहीं बोलते हैं, वे, देश के हीरो ! जन-जन के प्यारे !

जापान के लाल ! लगता है एक खामोश नारा और भी लग रहा है। जिसे होंठ नहीं, आत्मायें उच्चारित कर रही हैं।

"कर्म परमेश्वर है : आत्मा अनादि है।"

बढ़ते चलो बलिदानियों आत्मा अमर है। तुम और तुम्हारे देश पर न्योछावर है सम्पूर्ण विश्व ! सायंकाल रेडियो पर कोई खबर आई। मित्र के जापानी मेजबान का चेहरा तन गया। नसें फूल आईं। पूछा, तो पता चला, एक मजदूर बेहोश होकर गिर पड़ा। बगल वाला मजदूर यदि सहारा न देता, तो मशीन के भीतर गिरकर टुकड़े-टुकड़े हो जाता। फर्श पर गिरा, अस्पताल पहुंचा दिया गया। "यदि आज वह मर जाता तो मैं प्रधानमन्त्री की···" हमारे जापानी मित्र की मुट्ठियां भिंच गईं। नसें फूल आईं। फिर आँखें छलछला आईं और तनाव हट गया। यह जापानी उस कारपोरेशन के किसी व्यक्ति को नहीं जानता है।

तभी सायरन की आवाज और एक बड़ी गाड़ी झंडे वाली कारपोरेशन गेट में घुसी। "देखो ! हमारे प्रधानमन्त्री जा रहे हैं।"

"क्या ?" हमारे मित्र की आँखें विस्मय से फैल गईं ! प्रधानमन्त्री पन्द्रह हजार हड़ताली कर्मचारियों में बिना सुरक्षा व्यवस्था के चला गया ?

सर्र ! सर्र !! सर्र !!!

कारों के काफिले बिना सुरक्षा गाड़ियों के कारपोरेशन में प्रविष्ट हो गये। पूरी मन्त्रिमण्डलीय बैठक हुई, हड़ताली मजदूरों के बीच में। यूनियन ने अपनी समस्यायें बताईं। मन्त्रिमण्डल ने अपनी परेशानियां उनके सामने रखीं। बीच का रास्ता तय हो गया। हड़ताल वापस ले ली गई। दोनों पक्षों ने सहानुभूतिपूर्वक एक दूसरे की समस्याओं को सुना हठ नहीं किया। फूलों से लदी कारें निकलीं और अपने गन्तव्य की ओर बढ़ गईं। रेडियो पर प्रसारण हुआ, मुर्दा शाम अचानक जीवित हो उठी।

हर ओर से स्त्री-पुरुष फूलों और फलों से लदी टोकरियां लेकर

उस कारपोरेशन गेट की ओर भाग रहे थे । आज सारे शहर का दशहरा भी था, दीवाली भी !

हमारे मित्र ने हमें जब यह कहानी सुनाई तो बार-बार, फूट-फूट कर रो पड़ते थे । उन्होंने जीवन में पहली बार गीता खरीदी थी जापान में । जापानियों ने हिन्दुस्तानी को गीता पढ़ाई थी । हमारे मित्र की कहानी तो बहुत लम्बी थी । मैंने आप महामानवों को संक्षिप्त में कर्म की व्याख्या के रूप में समझाई है । इस प्रकार आप सब महाप्रभु कर्म के मर्म को पहचानें तथा कर्म से कदापि विमुख न हों । कर्मफल की वासनाओं में भी आप परमेश्वरों की कभी रुचि न हो तथा उस महापाप से, सदा दूर रहें । नारायण ! आपका कल्याण करें ! आपकी सदा जय हो ! मोक्ष ही मात्र लक्ष्य हो ! कर्म में ही प्रीति होवे !

कर्म क्या है ? लक्ष्य, क्रिया और चिन्तन ! लक्ष्य, चिन्तन द्वारा ही निर्धारित होता है । तदनन्तर क्रिया की जागृति होती है । इसलिये लक्ष्य, चिन्तन और क्रिया-शक्ति का नाम ही कर्म हैं । इस कर्म का त्याग महा-पाप है ।

कुछ मित्र गण कर्म के मर्म को न जान सकने के कारण मनभावन सिद्धान्त बना लेते हैं और विक्षिप्त अवस्था को प्राप्त हो धर्म को ही गाली देने लगते हैं । एक बन्धु ने आपके भक्त सनातन को पत्र लिखा, "अब मैं निष्काम कर्मयोगी बन गया हूँ ! सब कुछ ईश्वर पर छोड़ दिया । भाग-दौड़ बन्द कर दी है । आप कृपा करना । यह काम अवश्य हो जावे । प्रतिष्ठा का प्रश्न है ।"

विचार करें, कि गीता के अर्थ के कैसे अनर्थ किये हैं, इन महात्मा बन्धु ने । उन्हें निष्काम कर्मयोग और कर्महीनता में अन्तर नहीं भासता है । एक ओर तो कर्म का ही त्याग कर दिया, सो पाप किया । दूसरी ओर उस लक्ष्य के लिये लिप्सायें भी नहीं त्यागीं तो पुनः महापापी हुए । ऐसी व्याख्या मत करें सनातन-जन ! चाहिये था, कि लिप्सायें त्यागते और डटकर कर्म करते । त्याग दिया कर्म और लिपटे रहे लिप्साओं से ।

यह अर्थ का अनर्थ है। लक्ष्य, क्रिया और चिन्तन, यह तीनो कर्म के अंग हैं। इनमें से किसी को भी त्यागना, ईश्वर विमुख होना है। आत्मद्रोही बनना है। कर्मफल की वासना, लिप्सायें आदि इन सबको त्याग कर मस्त, निश्चिन्त, उन्मुक्त हो श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक हरि चरणों में नेह लगाते हुए एक कर्मयोगी बन जीना सीखो ! जितना श्रम करोगे, उतने तेजस्वी महात्मा बनोगे !

कर्म, कदापि ज्ञान एवं भक्ति से रहित नहीं होना चाहिये। यदि कर्म में भक्ति नहीं है, अनिच्छापूर्वक कर्म करते हो, तो महापापी हो। इस-लिये पहली तारीख को लक्ष्य मानकर नौकरी करने वाला कर्मचारी सदा दुखी एवं रोगी तथा तेजहीन रहता है। वह स्वयं से ही अभिशप्त है। उसे उसकी आत्मा ही अभिशप्त कर देती है।

ज्ञान रहित कर्म भी महापाप है। जिस कर्म का ज्ञान नहीं उसे कदापि करना नहीं चाहिये। रेडियो खराब हो गया है। जानते नहीं हैं कुछ भी, खोलकर बैठ गये हैं। पसीने-पसीने हो रहे है। झुंझला रहे हैं। उल्टा अधिक ख़राब कर दिया है। ऐसा कर्म भी पाप है। तैरना तो आता नहीं, और छलांग लगा दी, उसपार जाने के लिये। आत्म-हत्या है यह तो सरासर ! इसे पुण्य कहा किसने ?

कर्म, भक्ति, ज्ञान—यह गाड़ी है तीन पहियों वाली। चलती है ध्यान-मार्ग पर ! इसका मोक्ष मार्ग है, अन्तर्मुखी होना ! और भटकाव है, बहिर्मुखी होना। यही अन्तर है, भौतिकता और आत्मवाद में। एक कथा सुनाता हूँ। भक्तगण उस चित्र को स्पष्ट करने का प्रयत्न करें !

गांव का दृश्य है। एक कुआँ दृष्टि-गोचर हो रहा है। कुयें के पास से पगडण्डी जाती है। पगडण्डी के दूसरी ओर खेत हैं। खेत में एक किसान हल जोत रहा है। नंगे पैर, नंगे सिर, तन पर मात्र एक लंगोटी। खेतों के सामने एक विशाल इमारत है। मई, जून की दोपहर है। पसीने से लथपथ है। मस्त गाता हुआ हल जोत रहा है।

तभी पगडण्डी पर एक सन्यासी आता दृष्टि-गोचर होता है। कुयें के पास आकर सन्यासी उस किसान को मस्त हल जोतते देखता है। उसके मन में विचार उठते हैं—"अहो ! मैं सोचता था कि मैं उस प्रभु के चरणों के करीब हूँ। परन्तु यह किसान तो मुझसे भी आगे बढ़ गया है। पैर जले नहीं, कहीं कांटा न लगे; सो मैंने खड़ाऊँ पहन रखे हैं। सिर भी लू से बचाने के लिये कपड़ा रखा हुआ है ! अरे ! मुझसे ज्यादा बड़ा तपस्वी तो यह किसान है। न तन पर कपड़ा, न सिर पर पगड़ी; नंगे पांव ! दुनिया से बेखबर मस्त गाता हल जोत रहा है ! धिक्कार है तुझको !"

इस प्रकार मन ही मन सन्यासी उस किसान को प्रणाम कर, पगड़ी और खड़ाऊँ कुयें की मुंडेर पर रख; उसे पुनः-पुनः प्रणाम करता, चल देता है। इस सबसे अनभिज्ञ किसान मस्त हल जोत रहा है।

तभी उस पगडण्डी पर एक नेता प्रकट होता है। घूरकर किसान को देखता है। उसका मन भी विचारों से भर उठता है। दौड़कर किसान के पास आता है और कहता है—

"अरे बन्धु ! तुम्हारी यह स्थिति ! सहन नहीं होती है मुझसे ! इस प्रजातन्त्र में तो सब बराबर हैं। सबको बराबरी का अधिकार है। एक व्यक्ति तो उस अट्टालिका में, पंखे के नीचे, ठण्डी हवा खावे और दूसरा चिलचिलाती धूप में नंगे सिर नंगे पैर झुलसता फिरे ! यह अन्याय है ! इसके खिलाफ आवाज उठानी पड़ेगी। यह अत्याचार अब सहन न होगा !"

किसान को पहली बार लगा उसका सिर धूप से जल रहा है। पैर जल रहे हैं। सारा तन जला जा रहा है। घृणा, क्रोध और जोश से भरपूर हो उठा वह ! फेंक दिया हल ! उठा लिया झन्डा।

उस साल उसके खेतों में फसल न उगी थी। बैल खूंटे पर ही भूखे मर गये थे। उसके बच्चे सड़क पर भीख माँगते फिर रहे थे। रात्रि

के गहन अन्धकार में, लुकती-छिपती उसकी पत्नी जा रही थी—पेट की खातिर ! वह झण्डा उठाये घूम रहा था; नेता के पीछे ।

इससे पूर्व भी वह कर्म कर रहा था; मस्त था, निश्चिन्त था । आज भी वह कर्म कर रहा था—वह क्रोध से धधक रहा था, हिंसा, घृणा, प्रतिशोध की अग्नि उसे जलाये जा रही थी । आज उसका घर बरबाद हो गया था । पूंजीपतियों को गाली दे रहा था । उन्होंने उसके बैल मार दिये, उसके खेत सुखा दिये । उसका घर बरबाद कर दिया । उससे जीने का अधिकार छीनना चाहते हैं । यह सब उसके प्यारे नेता ने उसे बताया है ।

बन्धुगण ! कर्म के दो विपरीत मार्ग दिखाये मैंने आप सब महात्माओं को । प्रथम मार्ग अन्तर्मुखी है, धर्म का अंग बना । दूसरा मार्ग वर्हिर्मुखी है भौतिकवाद का सृष्टा बना । इसी से आज प्रभावित है सारे विश्व का राजनीतिक समाज । यह समस्या को अधिक विकराल बना देता है । समाधान तो सहस्त्रों युगों में कर सकता नहीं है ।

वह जब अन्तर्मुखी था तो अभावों में भी मस्त गा रहा था । मुस्करा रहा था । वही जब बर्हिर्मुखी भौतिकवादी राजनीति का शिकार हुआ तो बरबाद होकर रह गया । धर्म और राजनीति में क्षितिज के छोरों जितना अन्तर आ गया है ।

They frustrate the masses and win their wishes. Dharma consoles them and wins thier wishes.

वह अभावहीन दशा में, नूतन अभाव दिखाकर, उनके विश्वास को जीतने का प्रयास करते हैं । अभाव के चित्र दिखा-दिखाकर उन्हें विक्षिप्त करते हैं । उनके पेट, उनकी आँखों के सामने लाकर, उन्हें अन्धा करते हैं । मूर्ख बनाते हैं—और उनका विश्वास प्राप्त करते हैं ।

धर्म, उन्हें अभावों में भी सुखी जीवन बिताना सिखाता है । वह अभावों में भी मुस्कराने लगते हैं और अन्तर की शान्ति और सुख को पाकर मस्त जीवन व्यतीत करते हैं ।

भौतिकवादी सब कुछ होते हुये भी दुखी है। आत्ममार्गी अभाव की स्थिति में भी मस्त है।

जिस घर से भौतिकवादी गुजर गया। शान्ति लुट गई। घृणा, उत्तेजना, तनाव और अभाव ही अभाव नजर आने लगे।

जिस घर से आत्मवादी गुजर गया। हर चेहरा खिल उठा। शान्त, मस्त, श्रद्धालुओं से घर मुस्कराने लगा। अभावों में भी शान्त, आत्मभक्त, चेहरे—जगमगाने लगे।

एक कथा सुनाता हूँ। एक समय में एक बड़े तपस्वी राजा हुए। उन्होंने जनता की सेवा में अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। जनता को सुखी करने के सारे उपाय किये, परन्तु फिर भी उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य एवं दुख हुआ कि प्रत्येक व्यक्ति दुखी है; किसी-न-किसी कारण से। खिन्न मन से राजा गुरू के पास गये और नमन्कर विनती की, "महाप्रभो! बताइये मेरे तप एवं सेवाओं में कहाँ त्रुटि है? क्यों मेरे प्रजाजन सुखी नहीं हैं?"

"राजन्! इसमें दोष तुम्हारा नहीं है। जब तक प्रजा भेंड़ और कुत्ते का अन्तर नहीं जानती तब तक कोई भी व्यक्ति सुखी हो सकेगा नहीं!" गुरू ने कहा।

"इसका अन्तर तो गुरुदेव मैं भी नहीं जानता हूँ! कृपया मुझे भी बतायें।"

"राजन्! बतायेंगे नहीं! दिखायेंगे!"

ऐसा कहकर गुरुदेव ने एक विशाल कक्ष में एक ही स्थान पर भोजन रखाया और भेड़ों के एक समूह को कमरे में बन्द करवा दिया। उपरान्त दूसरे विशाल कक्ष में एक ही स्थान पर भोजन रखवाकर कुत्तों के एक समूह को उसमें बन्द करवा दिया। जितने कुत्ते थे उससे अधिक भोजन रखवाया गया।

दो घड़ी उपरान्त भेड़ों के कक्ष के द्वार खुलवाकर, गुरू राजा को लेकर भीतर गये । नांद खाली पड़ा था । सब भेड़ों ने भोजन खाया और एक दूसरे की पीठ पर सिर रख कर आराम से सो गईं थीं ।

उपरान्त गुरू और राजा दूसरे कक्ष में प्रविष्ट हुए तो देखा भोजन ज्यों का त्यों रखा है । किसी कुत्तो ने भोजन नहीं खाया है । सब के सब आपस में लड़कर बुरी तरह घायल हो गये हैं । किसी का जबड़ा फट गया है तो किसी का कान कट गया है । कोई दुम दबाये लंगड़ाता हुआ दीवार में समा जाना चाहता है । हिंसा, प्रति-हिंसा की ज्वालाओं से उनकी आंखें जल रही हैं ।

"राजन् ! यही अन्तर है कुत्तो और भेंड़ का । जब तुम्हारे प्रजाजन चिन्तन की दिशा को कुत्तों के मार्ग पर ले जाते हैं तो स्वयं भी दुखी रहते हैं तथा दूसरों को भी दुख पहुंचाते हैं । न तो स्वयं खा सकते हैं और न किसी को खाने ही देते हैं । कुत्तो और भेंड़ दोनों जानते हैं कि भोजन उन्होंने स्वयं नहीं बनाया है वरन् उस भोजन को देने वाला कोई और है । जिसने आज दिया है, वही कल भी देगा ।

'राजन् ! आज भी राख को यज्ञकर भोजन में बदलता, आत्मा ॐ है । तुम, स्वयं के लिये एक समय का भोजन बना सकते नहीं हो । कोई भी धन्ना सेठ, बिद्वान, वैज्ञानिक, राजा, चन्दमुट्ठी राख से गेहूं, गोभी आलू बना सकने में असमर्थ है । भगवान ही आज भी भोजन बनाता है । मनुष्य का काम उसे वितरण कर (Distribute) उसे ग्रहण करना है । जिसने आज उगाया है, वह कल भी उगायेगा । यदि नहीं उगायेगा तो धन्ना सेठ सारे धन के होते हुये भी भूखा मर जावेगा । फिर वह धन को कोठरी में बन्द कर दूसरों को क्यों उस सुविधा से वंचित करना चाहता है । अभिशप्त होता है और खाने वाला पेट उसका छिन जाता है । सुइयां दो; उबली सब्जी एक कटोरी; रोटी सूखी दो । इससे अधिक अन्न खा ही नहीं सकता । इससे अधिक अच्छा तो भिखारी है, जिसे भीख में बहुत कुछ मिलता है और प्रभु उसे खाने वाला पेट भी देते हैं । इस प्रकार प्रजा के चिन्तन की दिशा को भेंड़-मार्ग पर लाओ ।"

इस प्रकार मैंने आप महाप्रभुओं को कर्म के दो विपरीत मार्ग दिखाये। कर्म यदि आत्म-मार्ग का प्रेरक है, तो महापुण्य है। यदि भौतिकवाद से प्रेरित है, तो महापाप है।

नारा लगाया गांव-गांव में बिजली। गांवों में जलती कहाँ से; शहर भी अन्धेरे हो गये।

नारा लगाया गरीबी हटाओ; रहे-सहे साधन अमीरी के भी जाते रहे।

यह सब क्या है ? प्रत्येक व्यक्ति को अन्तर्मुखी हो सोचना पड़ेगा, अन्यथा यह दिशाहीनता सब स्वाहा कर देगी।

धर्म सनातन पर आरोप है कि उसने ढोंग और पाखण्ड को बढ़ावा दिया है। क्या यह सत्य है ?

एक घटना प्रस्तुत करता हूँ। एक मन्त्री महोदय आपके भक्त पर कटाक्ष कर बोले—"इन ढोंगी धर्माचार्यों ने इस देश को बरबाद कर दिया है। धर्म के नाम पर पाखण्ड, प्रपंच करते हैं।"

हाथ जोड़कर विनती की, "महाप्रभु सत्य ही कहते होंगे। इतने बड़े मन्त्री भला मर्यादाहीन बात थोड़े ही करेंगे। परन्तु एक बात नहीं समझ पाता हूँ। हमने तो लाखों वर्ष यह ढोंग किया। आज भी कर रहे हैं और पूज भी रहे हैं। परन्तु महाप्रभु ने कैसा ढोंग किया कि पच्चीस वर्ष में ही कलई खुल गई। जनता जूता लिये हाथ में ढूंढ़ रही है और चुनाव प्रचार में; आप कपड़े बदल, टोपी खीसे में दबा, चोर की भांति जाते हैं ? अरे महामानव ! आप तो ढोंगी भी घटिया किस्म के निकले।" हरि ऊँ ! नारायण हरि !!

भक्तगण ! कर्म अति महान है। भक्ति एवं ज्ञान का संग कर, यह कर्म आत्म-परायण हो उठता है। ऐसा कर्मेश्वर योगी परमेश्वर स्वरूप हो मोक्ष का अधिकारी बनता है।

एक ब्रह्मचारी सन्यासी से भी कर्मयोगी महान है ! जिस प्रकार ब्रह्मचारी सन्यासी मोक्ष का अधिकारी है, उसी प्रकार कर्मयोगी भी मोक्ष पद का अधिकारी है ।

ब्रह्मचारी तो खाली नाव खेकर उसपार जाता है । मात्र स्वयं को मोक्ष दिलाता है । कर्मयोगी तो फूलों-फलों से लदी नाव खेकर उसपार उतरता है । उसकी नाव भारी है । श्रम भी अधिक है । जरा-सा ध्यान चूका नहीं, कि डूब गई नाव मझधार में और सब स्वाहा हो गया ।

अरे कर्मयोगी ! तुझे शत-शत नमन ! कितना है -महान् तू ! ब्रह्मचारी तो मात्र अपना बोझ ढोकर उसपार जाता है, तू दो यज्ञोपवीत (पत्नी का है दूसरा) के संकल्पपूर्ण कर उसपार उतरता है । अरे ! तू मेरा सम्माननीय है ! मेरे सहस्त्र-सहस्त्र प्रणाम स्वीकार कर ! तेरे कर्म-योग के प्रतीक हैं सम्पूर्ण चराचर ! पेड़ निष्काम कर्मयोगी ! नाना यज्ञ सम्पूर्ण निष्काम कर्मयोगी, अनासक्त, अकर्तापन के भाव से प्रेरित नित्य यज्ञ करते हैं । कर्मफल की वासना तो उन्हें छूती भी नहीं है । हे कर्म-योगी तू ही तो विदेह है ! ब्रह्मज्ञान का अधिकारी है ! रे जनक ! कर्म-फल की लिप्साओं से रहित, सम्पूर्ण लिप्साओं को नष्ट करता हुआ; कर्मयोग के चिन्तन को बहिर्मुखी से अन्तर्मुखी कर; सम्पूर्ण क्रियाओं को आत्मा कृष्ण के हेतु ही करता हुआ, उन्हीं प्रभु कृष्ण को कर्ता मान, सर्वत्र उन्हीं के कर्तापन का बोध करता हुआ; स्वयं को अकर्ता मानकर; बढ़ता चल ! एक दिन आवेगा रे कर्मयोगी ! जब पत्नी तुझे दिखेगी ही नही ! स्वजन नजर आवेंगे नहीं । पैरों में घुंघरू की छुननछुन की ध्वनि सुनाई पड़ने लगेगी । पीठ पर पंख उग आवेंगे तेरे ! किसी को भी न जानता हुआ, सम्पूर्ण ज्ञान से मूढ़, तू अनजाने ही दूर उन बर्फीले पहाड़ों पर समाधिस्थ हो चुका होगा । समाधि तेरी निरन्तर होगी !

योग की समाधि में बैठा योगी कभी भी मृत्यु को प्राप्त होता नहीं है । अब तो योग होकर ही रहेगा कन्हाई से !

एक समाधि में बैठा है तू ! तेरे कुछ दूर समाधि में बैठा है ब्रह्मचारी सन्यासी भी । दोनों अलग-अलग मार्गों से आये हैं परन्तु अब आगे का मार्ग एक है । वह त्याग, तपस्या और सन्यास मार्ग से आगे बढ़ा था। तू अनासक्त, निष्काम कर्मयोग के मार्ग से आगे बढ़ा था। दोनों सड़कें नदी के किनारे पहुंचने से पूर्व ही मिलकर एक चौड़ी सड़क बन जाती है। नदी के उसपार जाना लक्ष्य ही अब दोनों का है । अब आगे मार्ग एक है । मेरे कन्हैया को दोनों ही समान हैं ।

कर्म परमेश्वर है ! आतमा अनादि है ! कर्मयोगी परमेश्वर का अतिशय प्रिय है ! मोक्षमार्ग का अधिकारी है ।

भक्तगण ! कर्मयोग दर्शन की पृष्ठभूमि मैंने सुनाई आप सब महामहेश्वरों को । मेरा यह नौ दिन का प्रवचन तो मात्र सनातन-दर्शन की पृष्ठभूमि सुनाने का है । दर्शन से परिचय कराने का है । दर्शन तो अति गूढ़ है । उसका विस्तार हम करेंगे फिर कभी ।

कर्मयोग में कर्म का त्याग कदापि नहीं करना होता है । इसलिये आप महाप्रभु गृहस्थ कर्म का त्याग तब तक नहीं कर सकते हैं जब तक कि आपको इस कर्म की सुधि है । यदि आप ऐसा करेंगे तो महापाप होगा ।

जब तक पत्नी का ज्ञान है, उसकी चाह है, आप गृह कदापि न त्यागें । जब तक सन्तान का मोह अथवा उनके प्रति किसी भी प्रकार के कर्तव्य की भावना बाकी है, आप गृह-त्याग न करें ।

जब तक किसी प्रकार की भी चिन्ता अथवा किसी प्रकार का चिन्तन शेष है, गृह त्याग करें नहीं । कर्म को कर्म से त्यागकर यदि आप सन्यास भी लेते हैं, तो वह महापाप होगा । पत्नी, बहन, माता-पिता, बन्धु-बान्धव, व्यापार, मित्रादि, भोगादि किसी प्रकार की लिप्सा अथवा चिन्ता अथवा चिन्तन यदि शेष है तो गृह-त्याग मत करो । पाप लगेगा तब कैसे गृहस्थ जीवन से व्यक्त हो वानप्रस्थी हो सकेगा कर्मयोगी !

कर्म को कर्म के लिये ही करते हुए कर्मफल की वासना में न लिप्त होते हुए जीना सीखो ! आज ही प्रतिज्ञा करो कि कुछ भी क्यों न हो— चिन्ता, दुख, शंका, भय नहीं करूंगा। कर्म को मात्र कर्म के लिये ही करूंगा। कर्म की लिप्सा रूपी भ्रान्तियों से सदा दूर रहूंगा। चिन्तन की दिशा को निरन्तर अन्तर्मुखी करता चलूंगा। अपने आत्माकृष्ण में प्रीति बढ़ाता चलूंगा। चाहूँगा उसे भीतर अपने, मोहित होकर मुग्ध निहारूंगा उसको भीतर बैठकर। बोलूंगा बन्द होठों से; सुनूंगा बंद कानों से; लिपटूंगा उससे तो बाहें हिलेंगी नहीं। जपूंगा तो जबान हिलेगी नहीं ! बाहर के रिश्ते तोड़ भीतर के रिश्ते जोड़—यही है मार्ग दशरथ !

एक क्षण भी भूलना मत, कि उसके ही तेज से देख रहा है तू ! सुन रहा है तू ! सोच रहा है तू ! चल रहा है; सम्मान पा रहा है तू ! तब मान क्यों नहीं लेता कि तू नहीं—वह ही चल रहा है ! सोच रहा है ! सारे कर्म कर रहा है । तू मात्र उसका पुजारी है ! मस्त उसे भजे जा रहा है। वही राख से भोजन बना रहा है; वही भोजन से रक्त एवं नये बालक का स्वरूप बना रहा है ! बाहर के रिश्ते भी उसी के हैं। उसके हटते ही फूंक देते हैं तुझे, रिश्तेदार सारे ! मस्त भजे जा उसको ! उसके स्वजन, वही जाने। तुझसे क्या प्रयोजन ! तू तो मस्त गाये जा उसे ! बहिर्मुखी चिन्तन से भी लुप्त होता चल। बाहर से अनासक्त, विरक्त हो भीतर कर.आसक्ति, मोह जैसे कछुआ खतरे के समय अपने सारे अंग समेट लेता है; वैसे ही सम्पूर्ण इन्द्रियों की क्रियाओं को भीतर समेट ले तू ! बाहर देख गहन रात्रि को और भीतर हो प्रकाश, सहस्त्रों सूर्यों रूपी तेजस्वी सूर्य ॐ का ! प्रभु आत्मा का ! सारथी कृष्ण का ! मर्यादा पुरुषोत्तम राम का ! ब्रह्मा-विष्णु-महेश का !

इस प्रकार बाहर विरक्त हो भीतर को ही जब रहना सीख जावेगा, सारे नाते-रिश्ते स्वतः छूटते चले जावेंगे । सबकी सुधि लुप्त होने लगेगी। दिन और रात माया के भी दिखेंगे नहीं। पत्नी और पुत्र की भी सुधि रहेगी न बाकी। मूढ़ हो गया है तू बाहर के संसार से और

चैतन्य हो उठा है तू भीतर के संसार में। बाहर को सो रहा है। भीतर को जाग रहा है। भीतर ही क्रियाशील है।

आत्मा का आनन्द है। कन्हैया का संग है। आदेश अब कृष्ण के हैं, अर्जुन पालन कर रहा है उनका। अब उसकी जीत में किसे सन्देह है ? उसने किसी कर्म का त्याग नहीं किया है। उसने किसी कर्त्तव्य का त्याग नहीं किया है। वह तो मूढ़ हो गया है। उसने छोड़ा किसी को भी नहीं है। सब तो स्वतः छूट गये हैं। कर्म को समेटकर भीतर ले गया है कर्मयोगी ! बाहर के सम्बन्धी सारे, बाहर रह गये हैं। उसके साथ भीतर जा सके नहीं हैं। उसने छोड़ा नहीं है किसी को। वे तो स्वयं छूट गये हैं। संग कर सके नहीं हैं, भीतर जा सके नहीं है, छूट गये हैं, उसने छोड़ा नहीं किसी को। उसके लिये भीतर जाना ही पुण्य है बाहर आना महापाप है। वह तो भीतर ही रहेगा। बढ़ता चलेगा। ध्यान-मार्ग पर गाड़ी भक्ति-ज्ञान-कर्म की तेजी से चली जा रही है।

नहीं मालूम कैसे और कब उसके कदम उसे यहाँ ले आये हैं, आत्म-प्रेरित अनजाने में ही चला आया है। अब तो भीतर-बाहर समान है। बाहर भी संग उसी का है; भीतर भी संग उसी का है। बन्द आँखों में देखता है, लोक-लोकान्तर; सृष्टियां अनेकानेक। बाहर भी देखता है, हर पत्ते-पत्ते पर उसको। अंग-अंग में उमंग है। झूम रहा है मस्त—भीतर भी; बाहर भी। आज तो यज्ञ की बेला है। बर्फ के पहाड़ पर कुण्ड प्रज्ज्वलित होगा। शरीररूपी सामग्री उस आत्मारूपी हवन कुण्ड में यज्ञ होगी। सदा के लिये द्वैत का अद्वैत हो जावेगा। संग करके उस कन्हैया का—अब यह स्वयं कन्हैया हो जावेगा।

भक्तगण ! सकाम एवं निष्काम कर्मयोग के अन्तर को स्पष्ट करने के लिये एक कथा सुनाता हूँ।

एक थे लाला रामलाल। धन कमाना; बेईमानी, मक्कारी परमो धर्मः, झूठ और लोभ; यही थे उनके कर्मयोग के प्रतीक। कभी किसी

को भोजन दान दिया नहीं। खून चूसने से बाज नहीं आये। न तो स्वयं ही लोभवश भोग सके; न किसी और ही को भोगने दिया।

व्यापार के लिये चले। आपके शहर लखनऊ आये। अकाल मृत्यु को प्राप्त हो गये। उनके अनुचरों ने उनका दाह-संस्कार किया और अपने देश लौट गये। लाला कभी निष्काम कर्मयोगी बने नहीं थे। स्वयं अपने निष्काम सारथि आत्मा को उन्होंने कभी जाना नहीं था। उनकी भस्मी ने पानी का संग किया; खाद बनी और कालान्तर में पेड़ का तना बन गई, उस पेड़ की जड़ों द्वारा ग्रहण होकर।

पेड़ को काटा एक बढ़ई ने। उसका एक सुन्दर तख्त बना दिया। चान्दी के फूलों से उसके पाये सजाये। बेचारा बढ़ई क्या जाने कि वह लाला रामलाल के शरीर में चान्दी के फूल लगा रहा है। यदि उसे इस सत्य का ज्ञान हो जाये, तो भाग खड़ा हो, मारे डर के!

उस सस्ते जमाने में वह तख्त तीन सौ रुपये का बिका लाला माणिकलाल के हाथ। लाला माणिकलाल उसे खुशी-खुशी घर ले आये। फूले नहीं समाते थे। यदि एक क्षण को भी उन्हें आभास हो जाये कि यह लाला रामलाल है तो घर छोड़कर ही भाग जाये।

अब विधाता लाला रामलाल को तख्त बना उसे जबर्दस्ती निष्काम कर्मयोगी बनाये हैं। न बोल सकता है; न भोजन मांग सकता है; वेतन भी नहीं मिलता है। सारी चालाकी, बेईमानी, मक्कारी, धूर्तता धूल में मिल गई है। सर्वस्व खोकर, दुर्लभ मनुष्य जन्म खोकर, अब देखो बने हैं निष्काम कर्मयोगी! प्रत्येक क्षण त्राहिमाम् पुकारते हैं। अब आत्मा सारथि से उद्धार के लिये प्रार्थना करते हैं। अब आत्मा सारथि भी सुनता नहीं है पुकार उस आत्मद्रोही की, भार ढो रहा है लाला माणिकलाल का।

समय फिसलता गया। लालामाणिकलाल मृत्यु को प्राप्त हुए। अब उस तख्त पर लेटते हैं उनके पुत्र रसिकलाल सपत्नीक। समय बदल

चुका है। बेचारे रामलाल बने तख्त ढो रहे हैं लाला रसिकलाल को पत्नी सहित। अब लड़का भी हो गया है, उसकी गन्दगी को ढो रहे हैं लाला, त्राहिमाम्-त्राहिमाम् चिल्लाते हैं। पछताते हैं कि अरे क्यों न बना तू निष्काम कर्मयोगी। हाय ! यह गति तो न होती ! अरे ! अपने हिस्से का निष्काम कर्मयोग पूरा करना ही पड़ता है एवं अपने पाप भोगने ही पड़ते हैं। यदि यह सुधि पहले आ जाती तो क्यों प्राप्त होता इस गति को।

तभी सारथि द्रवित होता है और लाला रामलाल का उद्धार करने चल देता है। तख्त बने लाला रामलाल की तपस्या पूरी होती है। लाला रसिक-लाल डनलोपिलो के बढ़िया पलंग खरीद लाते हैं। यह तख्त उनके लिये बेकार हो जाता है। रसिकलाल सोचते हैं कि वह पलंग खरीद कर लाये हैं। सत्य क्या है; कि रामलाल का सारथि अपने अदृश्य हाथों से वायु-मण्डल को तरंगित कर रहा है, क्योंकि उसे रामलाल, तख्त, को अब हटाना है। रसिकलाल अपने पुरोहित को पुराना तख्त दे देते हैं। धर्मपत्नी सुनती हैं तो बिगड़ उठती हैं, "सस्ते जमाने में तीन सौ का था। आप तो घर ही लुटाये दे रहे हैं।" भड़ककर लाला रसिकलाल बोलते हैं, "क्या हुआ फिर। दान धर्म करना चाहिये। दान कोई-कोई ही कर सके है।"

धर्मपत्नी ने दुख किया तो व्यर्थ ही महापापिन बन बैठी। रसिक-लाल ने घमण्ड किया तो महापापी बन बैठा जबकि तख्त को, लिये जा रहा था उसका अदृश्य सारथि। व्यर्थ ही यह जोड़ा, निष्काम कर्मयोगी से सकामी बन फूल-पिचक रहा था। व्यर्थ ही स्वयं को स्वयं से अभिशप्त कर रहा था। पाप का भार बढ़ा रहा था। तख्त को सारथि स्वयं लिये जा रहा था।

तख्त आया पुरोहित के घर। गरीब ब्राह्मण के यहाँ दो छोटी कोठरियाँ और एक खुला आंगन। तख्त भीतर जा नही सकता था। खुले आंगन में डाल दिया गया। पंडित जी गायत्री, संध्या, जप, तप उसी पर बैठ करने लगे। तख्त बने रामलाल के पाप छंटने लगे। बरसात में गला,

धूप में जला, बदरंग हो गया तख्त। लड़के आये होली की लकड़ी मांगने। पंडिताइन को हाथी सा तख्त फूटी आंख नहीं भाता था, झाड़ू लगाने में और आगंन लीपने में उसके नीचे घुसना पड़ता था। बाल नुच जाते थे। एक दो बार धोती भी तख्त में फंसकर फट गई थी। लड़कों ने होली का चन्दा मांगा। पंडिताइन ने तख्त उठवा दिया।

पंडित जी को पता चला तो बरस पड़े। पंडिताइन भी कम न थीं, तमककर मुंह तोड़ जवाब दिया, "क्या है! बड़े धर्मात्मा की दुम बने फिरते हो। दान लेना ही जानते हो? देना नहीं।"

दोनों पुन: महापापी बन बैठे जबकि तख्त को लिये जा रहा था सारथि उसका। होली में जला तख्त रामलाल! बदल गया रूप भस्मी में। भस्मी ने पानी का संग किया; खाद बनी!

उधर बम्बई में रामलाल के ही वशंजों में एक नवदम्पत्ति ने लखनऊ घूमने का प्रोग्राम बनाया। पति सोच रहा था कि वह कितना दयालु और महान है कि पत्नी के मनोरंजनार्थ उसे लखनऊ घुमाने लिये जा रहा है। पत्नी सोच रही थी कितनी सुन्दरी है वह तभी तो उसका पति सब कुछ छोड़ उसकी गुलामी कर रहा है, दुमछल्ला बना। दोनों ही घमंड से फूल रहे थे। व्यर्थ ही महापापी बन रहे थे; जबकि उन्हें अनजाने ही खींचे लिये जा रहा था सारथि रामलाल का। दोनों लखनऊ आये। उधर भस्मी खाद बन वनस्पति का रूप ग्रहण कर चुकी थी। दोनों ने भोजन स्वरूप उसे ग्रहण किया। बेचारे क्या जानें कि खा रहे हैं अपने पुरखा को। भोजन शरीर में रक्त, मांस बना और गर्भ में बालक का रूप धारण करने लगा।

यूं लौटा रामलाल अपने सारथि के द्वारा। बेकार में छह व्यक्ति महापापी बन बैठे। सकाम कर्मयोगी न बन; जो बनते निष्काम कर्मयोगी तो क्यों बढ़ता पाप का भार। कर्मयोग है महान! कर्म ही परमेश्वर है! आत्मा अनादि है! मोक्ष ही मात्र लक्ष्य है! दशरथ ही मात्र मार्ग है!

हरि ॐ नारायण हरि!
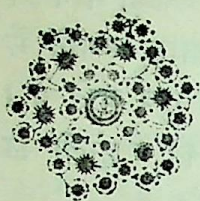
सप्तम अध्याय

धर्म : संस्कृति और इतिहास

भक्तगण !

आत्मा की न तो 'इति' है; न ही ह्रास ! तो इतिहास मिलेगा नहीं। वेद तो आत्मा की पुस्तक हैं। आत्मा नित्य है; सनातन है ! वह न तो मरता है; न ही जन्मता है ! इसलिये वेद में इतिहास नहीं है। वेद तो आत्मज्ञान की पुस्तक होने से नित्य सनातन ज्ञान की चर्चा करते हैं।

शरीर तो यन्त्र मात्र हैं। स्वप्न की भाँति हैं। इनका ज्ञान भी इनके अस्तित्व की भांति ही मिथ्या है। इसलिये सनातन की पुस्तकों पर लेखकों के नाम नहीं दिये जाते हैं।

आत्मा-रहित शरीर तो बोलने, लिखने में असमर्थ हैं। सुनने, चलने, सोचने में असमर्थ हैं ! उनकी यह सब क्रियायें तो आत्मा के रहते ही सम्भव हैं; अन्यथा नहीं ! तो लेखक, वाचक, सृजक, श्रोता आदि तो आत्मा ही हुआ; यह यन्त्र नहीं !

इतिहास तो आपलोग भी राष्ट्रपति का ही लिखते हैं न ! उसकी कारमोटर का इतिहास लिखते नहीं हैं। यही परम्परा सनातन की है। वह भी मोटरकार का इतिहास लिखने का आदी नहीं है। राष्ट्रपति का ही इतिहास लिखने में महत्व देखता है और सनातन का राष्ट्रपति तो मात्र आत्मा है। शरीर तो मोटरकार आदि जैसा यन्त्र है उस राष्ट्रपति आत्मा का। परन्तु सनातन, इतिहास अपने राष्ट्रपति आत्मा का लिखे कैसे ? वह न तो मरता है और न ही जन्मता है। उसकी न तो 'इति' ही है; और न 'ह्रास' ही। इतिहास लिखे कैसे। इसलिये, सनातन के

वेदों में इतिहास नहीं, नित्य सनातन आत्मा का ज्ञान ही खोजो । इतिहास मिलेगा नहीं !

यही परम्परा पौराणिक काल में भी निभाई गई । लेखक पुराणों के, अपना शारीरिक नाम न देकर; लेखक के स्थान पर अपने इष्टदेव आत्मा का ही नाम देते रहे । शरीर पुराण लिखते नहीं हैं । कर्म तो आत्मा से ही होता है, तो लेखक आत्मा है ! उसी को सम्मान दो !

पाश्चात्य प्रभाव आने से व्यक्ति-पूजा और पाखण्ड को बढ़ावा मिला । अज्ञान ही नाना सम्प्रदायों का सृष्टा बना । प्राचीन परम्परा, सनातन की धूमिल होने लगी । व्यक्ति के लिये सम्मान और नाम की लिप्सा ही प्रेरक होने लगी । निष्काम कर्मयोग की सनातन परम्परा लुप्त होने लगी । लिप्सा से प्रेरित हो कर्मयोगी, कोरे धन्धेबाज बनने लगे । भ्रम फैलने लगा 'गुरुडम' की लिप्साओं से प्रेरित नाना समाज और सम्प्रदाय सनातन की ही पृष्ठभूमि से उभरकर बाहर आने लगे । रोशनी के नाम पर अन्धकार फैलने लगा । दिशा के नाम पर जन-जातियाँ दिशाहीन हो भटकने लगीं । धर्म के नाम पर ज्ञान के पाखण्ड पूजे जाने लगे । मनुष्य प्रकृति के धर्म सनातन से दूर हट स्वांतः सुखाय मनभावन सिद्धान्तों वाले सम्प्रदायों में बंटता चला गया । एक बार भी सोचा नहीं कि अरे ! क्या गोभी, बैंगन, आलू, कुत्ता, सुअर, शेर भी तेरा अनुसरण कर नाना सम्प्रदायों में बंट रहे हैं अथवा तू ही एक महामूर्ख है, प्रभु की धरा पर !

अलग-अलग व्यक्तिगत नामों से मिशन चलानेवालों ! सोचो कि क्या कर रहे हो तुम ! आने वाले कल में क्या होगा ? एक-एक व्यक्ति अलग-अलग एक सम्प्रदाय होगा । कितनी गद्दियाँ बनाओगे ? कितने 'गुरुडम' फैलाओगे ? रामकृष्ण मिशन ! विवेकानन्द मिशन ! तुमने गुरू से उसका प्रिय शिष्य तोड़कर अलग कर दिया । कल होंगे यह रामकृष्ण सम्प्रदाय और विवेकानन्द सम्प्रदाय ! फिर रुके जल के पोखर, वक्त के साथ सड़ेंगे । रामकृष्ण सम्प्रदाय वाले, विवेकानन्द सम्प्रदाय वालों से घृणा करेंगे ।

शास्त्रार्थ कालान्तर में शस्त्र-अस्त्र में परिणत होगा। भयंकर साम्प्रदायिक घृणा, हिंसा, प्रतिहिंसा को जन्म देगी! सोचो मेरे नानादेवाधिदेवों! अनजाने में कर रहे हो पाप भयंकर!

क्या महात्मा रामकृष्ण का एक ही जन्म था? सम्भव है रामकृष्ण ही महर्षि संजय रहे हों। सम्भव है महात्मा रामकृष्ण ही भगवान वेद व्यास के रूप में अवतरित हुए हों! क्या ऐसा हो नहीं सकता? बताइये? इन सब पिछले जन्मों में प्रभु रामकृष्ण का एक ही नाम उभय रहा है— आत्मा! यह नाम उनके पिछले तथा अगले जन्मों में भी उभय है जबकि रामकृष्ण नाम तो उस यन्त्र का था, जिसे त्याग गये थे प्रभु आत्मा रामकृष्ण! तब एक व्यक्तिगत शारीरिक नाम से उन्हें सागर सनातन से तोड़कर सम्प्रदाय का पोखर क्यों बनाते हो? रामकृष्ण मिशन क्या है? महात्मा रामकृष्ण के जीवन का मिशन क्या था? आत्मा को प्राप्त हो परम् होना! परम् + आत्मा = परमात्मा स्वरूप हो जाना! तब भाई जो महात्मा रामकृष्ण का आत्मप्राप्ति मिशन था उसी के नाम से मिशन क्यों नहीं चलाते हो? क्यों इस मनुष्य जाति को सम्प्रदायों के पाप में भटकाना चाहते हो? रामकृष्ण का एक ही मिशन था—सनातन मिशन! आत्मा-प्राप्ति मिशन! यही मिशन विवेकानन्द देवात्मा का भी था। जब दोनों का मिशन आत्मप्राप्ति ही था तो उन्हें सम्प्रदाय बनाकर आप लोग धिक्कारते क्यों हो? क्यों नहीं उनको सागर सनातन के संग लहराने देते? सब को मिलाकर एक मिशन—सनातन मिशन आरम्भ कर देते? यदि आप चाहते हैं कि सनातनजगत पुनः सम्प्रदायों में न बंटे तो कृपया आज ही सबको एक सूत्र में बांध दो। एक में सबको समेट दो। अन्यथा जिसे तुम महापुण्य समझ कर; एक पवित्र यज्ञ जानकर; कर रहे हो वही महापाप है! भावी पीढ़ी के अभिशाप का कारण बनेगा और अभिशप्त होंगी तुम्हारी ही सन्तानें! हे नाना-नाना भक्तगण! मेरी इस प्रार्थना को हृदयंगम करें तथा इस पर गम्भीर मनन करें! नारायण आपको पुनः एक सूत्र में बांध दें! साम्प्रदायिक घृणा, द्वेष और नाम के लिप्सारूपी पापों से छुटकारा दिलावें आपको!

आप नाना प्रभुओं के मन में प्रश्न उठता है कि हम इतनी महान संस्कृति; विज्ञान के चरम काल एवं दिशा का इतना महान ज्ञान रखने वाले, क्यों और किस प्रकार इस अति शोचनीय स्थिति को प्राप्त हो गये ? क्यों दिशाहीन हो यह महान संस्कृति नाना सम्प्रदायों में बंट गई? कैसे महान विज्ञान इसके लुप्त हो गये ? इसका उत्तर है—महाभारत। जी हाँ ! महाभारत ही के कारण हम सब कुछ लुटा बैठे। बर्बाद हो गये !

आप सोचेंगे कि महाभारत क्या इतना भयंकर हुआ, जो सब कुछ बर्बाद हो गया ? भला कुरुक्षेत्र जैसे छोटे से स्थान पर लड़ा गया युद्ध, क्या सम्पूर्ण जाति को नष्ट कर सका ?

इस प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व मैं आपसे ही एक प्रश्न पूछना चाहूंगा। इस समय भारत में गांधी-ग्राम लगभग दो हजार हैं। इसका अर्थ कल यदि कोई भयंकर विनाश हो जावे तो लोग यह भी तो लगा सकते हैं कि शायद भारत में दो हजार गांधी हुए होंगे। परन्तु सत्य क्या है ? हमने पूज्य महात्मा गांधी की अमर स्मृति में उस स्थान का नाम गांधी ग्राम रखा है ! ठीक है न। इसी प्रकार कुरुक्षेत्र, पाण्डवकिला आदि स्मृति प्रतीक मात्र हैं। महाभारत एक अन्तर्ब्रह्माडीय युद्ध हुआ था। जिसमें खुलकर, पशुपतास्त्रों (cosmic warheads) ब्रह्मास्त्रों (atomic warheads) का प्रयोग हुआ। इस भयंकर युद्ध में ग्रह के ग्रह, सम्पूर्ण सौर-परिवार; यहां तक कि देवलोक मण्डल भी जनविहीन हो गये। कहीं-कहीं पर तो सौर-परिवार के सारे ग्रह ही पशुपतास्त्रों (cosmic warheads) द्वारा बिन्दु-बिन्दु होकर लुप्त हो गये। ग्रहों, सूर्यों का भी अस्तित्व ही मिटा दिया इन पशुपतास्त्रों ने ! इस युद्ध में माया-मुक्त-यानों (gravity controlled space ships) का भी भयंकर सर्वनाश हुआ। यूं नष्ट हो गया सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान इस धरा का ! यूँ संस्कृति तबाह, बरबाद हुई इस ग्रह की ! इस प्रकार पुरानी संस्कृति और मान्यतायें लुप्त हो गईं और विश्व का एक मात्र धर्म—सनातन धर्म, किसी प्रकार विश्व से एक भाग में स्वयं को जीर्ण-शीर्ण अवस्था में जीवित रख सका।

महर्षि वेदव्यास लिखते हैं कि महाभारत समाप्त हो चुका है। वेद-रूपी वृक्ष की सहस्त्रों शाखायें इन्द्र ने ध्वस्त करा दी हैं। मैं पुनः वेद की शाखाओं का स्मृति से उद्धार करता हूँ।

देखिये उस सन्यासी की सोचने की दिशा कितनी सशक्त एवं महान है, कि युद्ध का दोष कौरव अथवा पाण्डव समुदाय पर न मढ़, दोष दे रहा है इन्द्र को! इन्द्र का अर्थ है दस इन्द्रियों का समूह—मन! इस मन की लिप्साओं के कारण ही तो यह भयंकर युद्ध हुआ। योद्धा शरीर तो यन्त्र-मात्र हैं। चाहे कौरव हैं अथवा पाण्डव हैं। दोषी तो इन्द्र मन और उसकी लिप्सा रूपी अप्सरायें हैं; जिनके कारण यह भयंकर युद्ध हुआ। यदि यह लिप्सायें बुद्धि का हरण न करतीं तो युद्ध होता कैसे ?

आपके मन में पुनः शंका उठेगी कि क्या यह धर्म कभी सम्पूर्ण विश्व का धर्म रहा है ? क्या सबूत है इसका ? आपका भक्त पहले इस शंका का ही निवारण करना चाहेगा। महाप्रभु ध्यानपूर्वक सुनें एवं मनन करें।

आज से कुछ सौ वर्ष पूर्व इस देश में छोटे-छोटे राज्य एवं रियासतें थीं। ठीक है न! प्रत्येक सौ मील पर धर्म अलग, संस्कृति अलग, यहाँ तक कि भाषा भी अलग। जैसे-जैसे आवागमन के साधन तीव्र होते गये—वे अपनी कुरीतियां फेंक, हमारी अच्छाईयाँ धारण करने लगे; हम अपनी कुरीतियां फेंक, उनकी अच्छाइयां धारण करने लगे। धीरे-धीरे, दूर-दूर तक समाज में एकरूपता, एकरसता आती गई। जैसे-जैसे आवागमन के साधन तीव्र होते गये—समाज की एकरूपता फैलती चली गई, बावजूद सम्प्रदायों और अन्धविश्वासों के—समाज निरन्तर घुलमिलकर एक हो गया। ठीक है न!

कल यदि विद्युत की गति पर नियन्त्रण हो जावे। हम ऐसी यान्त्रिक प्रणाली का उद्धार कर लें कि एक क्षण में व्यक्ति लाख मील चल सके तो सारे ग्रह पर क्या अलग-अलग समाज रह सकेंगे ? क्या तब इस ग्रह पर स्वयं में युद्ध करना सम्भव हो सकेगा ? जो एक क्षण में अपने

यानों द्वारा आक्रमण कर पुनः-पुनः लौट भी सकता है। स्पष्ट है ऐसे यान गोली-तोप से भी ध्वस्त नहीं किये जा सकते। बमों द्वारा भी नष्ट किये नहीं जा सकते। तब अलग-अलग राष्ट्र भी क्या रह सकेंगे ? तब तो पृथ्वी पर युद्ध करना चूहा मारने के जैसा खेल हो जावेगा न ! ऐसी स्थिति में जब तीव्र गति से संस्कृति का आवागमन होने लगेगा तो क्या पूरब क्या पश्चिम सर्वत्र लोग अपनी बुराइयां फेंक अनजाने ही दूसरों की अच्छाइयां धारण करने लगेंगे ! ठीक है न !

मान लें कि हम प्राप्त हो चुके थे इस विज्ञान-ज्ञान के महान चरम को ! तभी शुरु हो गया, अन्तर्ब्रह्माडीय (inter-glaxy) महायुद्ध ! जिसमें खाली पृथ्वी ही नहीं सारे सूर्यादिक-मण्डल कूद पड़े। यह युद्ध ग्रहों के बीच नहीं, वरन् ब्रह्माण्डों के बीच हुआ था। (This was inter-glaxy war not inter-planetary war) पशुपतास्त्रों का प्रयोग हुआ। ग्रह के ग्रह सूक्ष्म बिन्दुओं में बदले। (Planets were disintegrated into splitted radio -active atoms) जहाँ ग्रह के ग्रह नष्ट हो रहे हों वहां जन-जीवन, संस्कृति की क्या बात करें ?

इन पशुपतास्त्रों का वर्णन करते हुए वेद बतलाते हैं कि इनका अधिकार केवल देवलोक को प्राप्त था। धरावासियों को यह अस्त्र नहीं दिये गये थे। यह पशुपतास्त्र वस्तुतः युद्धास्त्र नहीं थे। वरन् भटकते हुए भारी उल्का-पिण्डों अथवा भटकते हुए महाग्रहों (stray planets) से सूर्य परिवारों (complexes) की रक्षा के लिये इन्हें इस्तेमाल में लाया जाता था। इसे यूं समझिये कि हमारे सूर्य-परिवार की ओर तेजी से एक अति दानवाकार भटकता ग्रह बढ़ने लगा। यदि यह परिवार के अधिक करीब आ गया तो इसकी माया (gravity) के प्रभाव से पूरे परिवार का सन्तुलन गड़बड़ा सकता है। इसके बढ़ते प्रभाव से ग्रहों पर जीवन नष्ट हो सकता है; उसमें गतिरोध आ सकता है; अथवा कोई भयंकर दुर्घटना हो सकती है। ऐसी ही स्थिति के लिये पशुपतास्त्र प्रयोग में लाये जाते थे। देखा देवलोक ने—आ रहा है असंख्यों मील प्रति मिनट की गति से दहाड़ता

हुआ महादानवाकार ग्रह ! चला पशुपतास्त्र देव का, उससे भी दुगनी गति से । पशुपताग्नि (Cosmic fire) ने नष्ट कर दिया सम्पूर्ण ग्रह को बिन्दु-बिन्दु में । उसके बिन्दु छितरा गये अनन्त क्षीरसागर में । अब कालान्तर में यह बिन्दु जुड़ते हुए पुनः एक अथवा अनेक ग्रहों, उल्काओं आदि में परिवर्तित होंगे । देवलोक के अधिपति भी इन्द्र कहाते हैं । उन्होंने लगता है पशुपतास्त्र पाण्डवों को दे दिये थे । अर्जुन, जो कि महाभारत का महारथी था, उनसे (पिता इन्द्र से) पशुपतास्त्र ले सका ।

गीता के कृष्ण, अर्जुन महर्षि संजय की पूजा के पात्र हैं । इन पात्रों का चयन संजय ने महाभारत के योद्धाओं से ही किया है । संजय महाभारत युद्ध के लगभग एक हजार वर्ष उपरान्त हुए हैं । महर्षि वेदव्यास के प्रपौत्रों में आते हैं । गीता महाभारत के बहुत बाद लिखी गई है । यदि उसी समय लिखी जाती तो इसकी संस्कृत भी वेद की ही होती । पाणिनि का व्याकरण तो महाभारत के उपरान्त लगभग नौ सौ वर्ष बाद बनाया गया । गीता का पाणिनि की संस्कृत में आना ही इस बात को सिद्ध करता है कि यह युद्ध काल में नहीं लिखी गई ।

यहाँ एक बात और स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि गीता का पुनः लिखा जाना ही गीता का आरम्भ नहीं है । वरन् कहने का तात्पर्य मात्र इतना ही है कि उस महान ज्ञान का, जो महाभारत में लुप्त हो गया था; पुनः उद्धार हुआ महर्षि संजय द्वारा, आत्म-मार्ग से । इसी प्रकार पुराणों के पुर्नरुद्धार का समय भी हम जान सकते हैं । उन पुस्तकों से उनकी सृष्टि का समय जानना एक मूर्खतापूर्ण कदम है । प्रत्येक इतिहासकार ने इसी भूल का आश्रय लेकर अतीत को अधिक भ्रमित कर दिया है ।

यज्ञोपवीत के रहस्य जो आप महाप्रभुओं को मैंने सुनाये हैं— उनका काल तो महाभारत पूर्व का है तथा यह परम्परा महाभारत पूर्व, अनन्तकाल से चली आ रही थी । महाभारत के उपरान्त लुप्त हो गया इसका मूल ज्ञान; परन्तु परम्परा के रूप में निरन्तर चलता रहा । आज प्रभु आत्मा, राम, की कृपा से; यज्ञेश्वर ऊँ ! सारथि कृष्ण की प्रेरणा से

इसका पुनरुद्धार कर सका आपका भक्त सनातन ! इसका अर्थ कल का इतिहासकार यदि यह लगाने लगे कि यज्ञोपवीत की परम्परा आज की है तो यह उसकी भयंकर भूल होगी।

सइलिये जो समय और काल का आपको आगे भी ज्ञान दूंगा उसे उन पुस्तकों का सृजन काल न जानिये। वरन् योग मार्ग से उनके पुनः प्रकट होने का समय है।

जी हाँ। तो इतने भयंकर युद्ध हुए ! ग्रह नष्ट हो गये ! अस्तित्व खो बैठे ! जो ग्रह कम मार खाये—वे जनविहीन हो गये ! कहीं-कहीं पिर इक्का-दुक्का परिवार बच गये तो कहीं कोई गाँव बच गया। ज्ञान वज्ञान ध्वस्त हो गया। युद्ध ने वेद अर्थात ज्ञान रूपी वृक्ष की सहस्त्रों-शाखायें ध्वस्त कर दीं। भक्तगण ! कल्पना करें उस दृश्य की। एक रात की सुबह—न जाने कितनों की तो, हुई ही नहीं। जिनकी हुई; उनकी सुबह, कैसी लगी होगी उनको ? अवाक, स्तब्ध—कितने पागल हो गये होंगे ! कितने इस दुर्घटना के आघात से घुट गये होंगे। शहर नहीं हैं ! गांव लुट गये ! स्वजन गये सारे ! डोलता है विक्षिप्त वेदव्यास हिमालय पर ! अरे क्या हो गया ! अरे इन्द्र, देवलोक के अधिपति ! यह क्या भयंकर मूर्खता कर बैठा ! हा ! ! पशुपतास्त्र चलवा दिये तूने ! और तब वेदव्यास अभिशप्त करते हैं इस देवराज इन्द्र को और उसे वेद में मन की संज्ञा देकर अपमानित करते हैं। आप सब भक्तगण जानें कि देवराज इन्द्र को शरीर में इन्द्रियों का अधिपति लिप्सा-रूपी मन क्यों बनाया गया ? कृष्ण ! जो इस सम्पूर्ण भूलोक एवं ऐसी असंख्यों पृथवियों पर अधिकार रखते थे—आत्म प्रतीक बने ! उसी परम्परा को उनके वंशज संजय ने भी निभाया। कृष्ण, 'अहं ब्रह्मास्मि' प्राप्त महामहेश्वर हो गये थे ! इसलिये अमर हो विष्णु का प्रतीक बने। स्वयं महाविष्णु हो सनातन लोक के यज्ञकुण्ड के अधिष्ठाता कहाये। क्योंकि परम हो—परमात्मा हो गये थे इसलिये उन्हें आत्म प्रतीक बनाना ही सर्वथा उचित था। यहाँ एक बात और भी स्पष्ट कर दें कि टखने में तीर कृष्ण को नहीं, वरन संजय

को लगा था । कृष्ण भक्त संजय को, लोग कृष्ण का ही अवतार मानने लगे थे । इसे यथासमय सविस्तार बतावेगा भक्त आपका !

सब कुछ लुट गया । ज्ञान, विज्ञान, भौतिक उपलब्धियां नष्ट हो गईं । विनष्ट जाति, जो यहाँ-वहाँ इक्का-दुक्का बच गई, भयभीत स्तब्ध असस्हाय बनी देखती रही, यह विनाश लीला अति भयंकर ! पुनः कर्म-योगी स्वयं को समय काल के अनुरूप ढालने लगे । समृद्ध विद्युतगति को प्राप्त समाज सारे माध्यम खोकर जंगली जीवन बिताने की स्थिति में आ गया । इन्द्र ने इस धरा पर वेद रूपी वृक्ष की सहस्त्रों शाखायें कटवा दीं । वेदव्यास अब उससे बदला लेगा, उसे जन-जन का अभिशप्त प्रतीक बनावेगा दस इन्द्रियों की लिप्साओं का अधिपति मन इन्द्र बनाकर ! वेद लिख रहा है वह ! वेद रूपी वृक्ष की शाखाओं का पुनः प्रतिरोपण कर रहा है, मेरा प्रभु !

इक्का-दुक्का परिवार पीढ़ी-पीढ़ी बढ़ते चले, कबीले बने । प्राचीन ज्ञान-विज्ञान इनसे लुप्त हो चुका है । पुरानी सत्य घटनायें अब कपोल कल्पित दंत कथाओं का स्वरूप ले चुकी हैं । सत्य जो था कल का; आज कोरी गप्प बनकर रह गया है । भाषा के स्थान पर नई-नई प्रादेशिक भाषायें प्रचलन को प्राप्त हो चुकी हैं । वेद भाषा संस्कृत का ज्ञान लुप्त हो चुका है । उसका व्याकरण अब नहीं है किसी के पास । उन परि-स्थितियों में इस व्याकरण को सम्भाला भी कैसे जा सकता था । यह तो ऐश्वर्य बन बैठी उस काल में ! कारण ? स्पष्ट है कि यदि कोई इसका शिक्षक भी बचा होगा तो उसकी जीविका का साधन स्कूल तो नष्ट हो चुका है । बालक पढ़ने वाले हैं ही नहीं । उसे तो स्वयं दूर-दूर भटक कोई जीवन का सहारा ढूंढना है । व्याकरण से तो पेट भरेगा नहीं । जंगली फल खाता है खोज-खोज कर । अर्ध विक्षिप्त है ! सारे स्वजन उसके मारे गये हैं ! भक्तगण उन स्थितियों की कल्पना करने का प्रयास करें !

क्या युद्ध से पूर्व हम सब भूलोकवासी एक ही समाज थे ? इस प्रश्न के उत्तर में मैं आपसे एक प्रश्न पूछना चाहूंगा !

यदि हम एक नहीं थे तो, आप ही बताइये कि सारे विश्व मे अद्-भुत समानतायें क्यों हैं ? उदाहरण के लिये; आज से कुछ ही काल पूर्व अमरीका, इंग्लैण्ड, रूस, चीन, जापान सब एक दूसरे से अनभिज्ञ थे। माध्यम भी आवागमन के नहीं थे। ठीक है न ! फिर क्यों कर धार्मिक समानतायें एक सी रहीं ? मुस्लिम सात-आस्मां, क्रिश्चियन सेविन-हैविन, सनातन सात-लोक ! उनका अल्लाह—अलिफ + लाम + हे ! उनका गाड—जी + ओ + डी ! हमारा ऊँ—अ + उ + म् ! यह सब सर्वशक्तिमान के लिये तीन अक्षर ही क्यों प्रयोग करते आये ? सात ही दिन का सप्ताह क्यों बनाया सारे विश्व ने ? दिनों का क्रम और देवता भी वही क्यों रखे ? फिर दिनों का नाम रखने का यही अटपटा ढंग सबने एक सा ही क्यों अपनाया ? यदि गोचर क्रम से रखते तो रविवार, बुधवार, शुक्रवार, सोमवार, मंगलवार, गुरुवार, शनिवार ! यही क्रम गगन में है ग्रहों का; परन्तु इस क्रम का अनुसरण सम्पूर्ण विश्व में किसी भी व्यक्ति ने नहीं किया। क्यों ? फिर मंगल ग्रह ही सेनापति, वृहस्पति को ही देवगुरु, शुक्र को ही वासना मयी आदि संज्ञायें सारे विश्व ने एक सी क्यों दी ? बुध को किसी ने वासना का ग्रह क्यों नहीं बनाया; चन्द्रमा भी इसके लिये अति उपयुक्त हो सकता था।

गेहूं सारे विश्व की जातियों के पास आया कहाँ से ? सबने गेहूं और चावल को ही क्यों विशेष भोजन बनाया ? गेहूं और चावल अपने आप उग नहीं सकते हैं। यह उन्नत और नाजुक वनस्पति है। यदि एक बार उग आवे तो पुनः स्वतः यह उग ही नहीं सकती है। इसे उन्नत किया किसने ? सारे विश्व में यह उन्नत फसल तथा इसका ज्ञान उन लोगों को एक सा दिया किसने ?

आप अपने आस-पास ही देखें ! ऐसे सहस्त्रों सबूत आपको स्वयं मिल जावेंगे जो मेरी इस कथा के अकाट्य प्रमाण हैं। इसलिये पूरे विश्वास एवं श्रद्धा से मेरे द्वारा कहलायी जा रही यह कथा, कृपापूर्वक सुनें ! मन में संशय नहीं—उत्सुकता हो, श्रद्धा हो, उत्कंठा हो !

कबीला जाति बना ! जाति देश बनी ! धर्म नया सा—कुछ पुराने से मिलता सा ! नाना सम्प्रदाय ! राजा, जातियां, आदि। अज्ञान, दिशाहीनता, भटकाव ! अन्धकार ! गहन अन्धकार !!

सारे विश्व की यही स्थिति थी । सम्पूर्ण विश्व डूब गया था विनाश से, अज्ञान के गहन अन्धकार में। कर्मयोगी बाहर आने के लिये निरन्तर छटपटाते रहे। युगों तक इस अज्ञान से जूझते रहे । कहीं सत्य के विपरीत को ही सत्य मान लिया; कहीं सत्य की ही दिशा में सत्य से हटकर—एक नया सत्य बना बैठे। यह संघर्ष आज भी निरन्तर है।

यह स्थिति थी सारे जम्बूद्वीप की ! वेद व्यास ने वेद लिखे ! तपस्या का समय वेदों की रचना में लगा। वेद की रचना भी स्वयं में एक तप-यज्ञ था ! वेदव्यास मोक्ष को प्राप्त हो न सके, देवलोक का अति सम्माननीय पद पाया। परन्तु अधिक समय देवलोक में न रह सके और पुनः देवेन्द्र से कुपित हो भूतल पर लौट आये।

इस बीच में, काल के गहन अन्धकार को चीरता पाणिनि नामक चर्मकार महाप्रभु महाशिवशंकर की तपस्या करता हुआ; उनका साक्षात्कार प्राप्त कर सका और महाप्रभु के डमरू से उसने पुनः नये सिरे से संस्कृत भाषा का उद्धार किया। व्याकरण के सूत्र बनाये, जो पाणिनि सूत्र कहलाये। संस्कृत को पुनर्जन्म मिला और चर्मकार पाणिनि, तप द्वारा सन्यासी कुल-भूषण तिलक का महान सम्मान पाया।

परन्तु पाणिनि का व्याकरण वेद को न पढ़ पाया ! भाषा वही; लिपि वही; परन्तु व्याकरण नहीं है, इसलिये इसका ज्ञान हो कैसे ! वेद की संस्कृत; नाना-नाना जीवधारियों, ग्रहों, नक्षत्रों, ब्रह्माण्डों के संस्कारों से संस्कृत है। उसका व्याकरण तो वही बना सकता है जिसे असंख्यों सृष्टियों के असंख्यादिक ग्रहों के संस्कारों का पूर्ण ज्ञान हो। यह एक जन्म तो क्या, सहस्त्र जन्म में भी सम्भव नहीं है।

विचार करें भक्तगण ! वर्तमान संस्कृत भाषा ही विश्व की एक

ऐसी भाषा है जिसे सम्पूर्ण विश्व नेपरिपूर्ण (Perfect) की संज्ञा प्रदान की है। यह विश्व की महानतम भाषा संस्कृत; वेद की व्याख्या करने में पूरी तरह असमर्थ है। वेद की एक ऋचा का भी अनुवाद कर सकती नहीं है। सोचिये ! इतनी महान देवभाषा, वेद की संस्कृत,क्यों लुप्त हो गई ? हम इतनी महान भाषा से वर्तमान संस्कृत पर क्यों उतर आये ? इतनी महान भाषा वेद संस्कृत बनाई किसने ? यदि लोहा-पत्थर युग रहे—जैसा कि पाश्चात्य विद्वान कहते हैं तो यह भाषा आई कहाँ से ? जंगली निश्चय ही इस भाषा को बना सकते नहीं हैं।

वेद व्यास लौटे देवलोक से धरा पर ! युग बीत चुके थे ! अपने ही कुल में महर्षि पुनः जन्म को धारण किये और संजय कहाये ! बीतते युग के साथ, अब वेद का ज्ञान लुप्त हो चुका था। वेद, रहस्यमयी पुस्तकें बनकर रह गये थे। संस्कृत, पाणिनि के व्याकरण की, ज्ञान का मात्र माध्यम बन चुकी थी। ब्रह्मचारी वेद का सस्वर पाठ नित्य करते थे— भक्ति, श्रद्धा एवं आस्थापूर्वक ! परन्तु उस भाषा के रहस्य को जानते नहीं थे ! व्याकरण नहीं था ! संजय भी गुरुकुल में ज्ञानार्जन करने हेतु गये। पाणिनि के व्याकरण का ज्ञान प्राप्त किया। वेद के प्रति उनके मन मे अस्सीम उत्कण्ठा थी। उन्हें अन्तरात्मा से आभास होता था कि वेद को वे पढ़ सकते हैं परन्तु बुद्धि-रूपी संजय तो मात्र दस इन्द्रियों के ज्ञान के अर्जन का स्वरूप था। उस बुद्धि ने तो मात्र पाणिनि के व्याकरण को ही पढ़ा था। बुद्धि संजय वेद के ज्ञान से अनभिज्ञ है। आत्मा संजय, उस बुद्धि संजय को पुनः-पुनः प्रेरित करता है। विचित्र कहानी है न ! क्यों ? ठीक कहता हूँ न !

बालक संजय निरन्तर वेद का सस्वर पाठ करता है ! उसे उसमें अस्सीम आनन्द मिलता है ! जैसे कोई कवि स्मृति नष्ट होने के उपरान्त अपनी ही कविता को पढ़ अन्जाने में ही आत्म-विभोर हो उठता है ! जैसे अन्धी माता को, खोये बालक का सामीप्य मिलते ही छातियों से दूध ललछला आता है ! अभी बेचारी जानती नहीं कि यह ऐसा हुआ क्यों ?

क्या जाने अन्धी आंखें कि सामने उसके खड़ा है उसका खोया लाल !

काल की धूल से; सनातन से नाना सम्प्रदाय निकल आये हैं। मन भावन सिद्धान्तों के नाना धर्म बना लिये हैं! यह सम्प्रदाय मूल सनातन को टिड्डयों की तरह चाटने लगे हैं। बालक संजय के लिये, न जाने क्यों यह सब असह्य है। अन्जाने में ही उसके हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला धधक उठती है। गुरुकुल में उसका रहना असम्भव है। उसे बाहर निकाल दिया जाता है।

बालक संजय सब ओर से अपमानित होता हुआ; नाना सम्प्रदायिक गुरुओं द्वारा धिक्कारा हुआ; यमुना नदी के किनारे; नन्द के गांव के समीप, पर्णकुटी बनाकर रहने लगता है। वेद का पाठ करता हुआ तपस्या करने लगता है। ग्वाल-बाल उस नन्हे से योगी को देखते हैं; गाँव में चर्चा होती है। नन्दबाबा ग्रामवासियों सहित वहां आते हैं। तो बालक सन्यासी संजय का देदीप्यमान चेहरा देख हर्ष एवं आश्चर्य से झूम उठते हैं। बालक अपनी मधुरवाणी से प्रवचन देता है। उसके भोजन आदि का भार नन्द गांव वासी ग्वाल-बाल उठा लेते हैं। बालक संजय उन्हें आत्मारूपी 'कृष्णा:' आत्मा हवनकुण्ड का ज्ञान देता है। कथाओं के द्वारा सूक्ष्म दर्शन को समझाता है। जब कथा सुनाता है तो मुग्ध आत्म-विभोर हो कन्हैया से जा लिपटता है। अतीत के नन्दबाबा की कथा और कन्हैया की कहानी द्वापर युग की, महाभारत की कथा बहुत रोचक लगती है। उस मोहक माधव घनश्याम के दर्शन कैसे हों—बालक योगी संजय उन्हें योग मार्ग का सहज रूप में दर्शन कराता है। दुर्लभ दर्शन ब्रह्म का ग्वाल-बाल एवं बालायें सहज ही उस बालक से अन्तर्मुखी हो, प्राप्त कर लेते हैं। बन्द आंखों में वे बालकादि कृष्ण के ग्वाल बन, अपने अन्तर में, उसे ढूंढने लगते हैं। पाते हैं, उसके संग खेलते हैं; उसके संग रास-रचाते हैं। खेल-खेल में बालक संजय-रूपी वेदव्यास, उन्हें दुर्लभ योग के मार्ग पर, तीव्र गति से लिये जा रहा है। नन्हें बालक-बालिकायें योग के चरम को खेल-खेल में ही प्राप्त हो रहे हैं। सब समाधि लगाते हैं; कन्हैया संग रास रचाते हैं;

गोपिकायें और गोप बनते हैं। अनायास इन्द्रियों के चिन्तन को एवं कर्म की क्रियात्मकता को अन्तर्मुखी किये जा रहे हैं। कभी वे ग्वाल-बाल समुदाय बालक संजय को ही कृष्ण मान बैठते हैं। उससे कसम देकर पूछते हैं। सच-सच बताने को कहते हैं। यह बाल लीला करते वे भोले बालक नहीं जानते हैं कि वे सब कृष्ण को पाकर कृष्ण हो रहे हैं।

बालकों के साथ अब बड़े लोग भी शामिल होने लगे हैं। अब तो संजय के अन्तर में स्थापित हो; स्वयं में स्वयं को, खोजने वाली गीता; सबको मोहित कर रही है ! क्या पुरुष, क्या स्त्रियां इस सहज मार्ग से आत्मा को प्राप्त हो, आत्मानन्द में झूम रहे हैं ! हर चेहरे पर खुशी है; हर कोई मस्त है ! गीता और कन्हैया रंग ला रहे हैं। न चिन्ता है; न दुख ! संजय का जादू छाता जा रहा है ! चेहरे दमकने लगे हैं। आत्मवाद का जादू छाने लगा है ! अब उन लोगों को भीतर-बाहर भी कन्हैया दिखने लगा है ! हर क्षण संग है कन्हाई है, ! जिसे देखो ! देदीप्यमान चेहरा ! संजय का प्रचार बढ़ रहा है ! बालक को लोग जादूगर मान बैठे हैं ! तभी तो देखो गांव के गांव, क्या बालक क्या बूढ़े ! मस्त कन्हैया-कन्हैया गाते फिर रहे हैं ! मस्ती है; तेज है; कर्म में भी बढ़ गये हैं आगे, रोते हैं तो सिर्फ कृष्ण के विरह में; अन्यथा उनकी मस्त झिलमिलाती मुस्कान कभी लुप्त होती ही नहीं है ! आत्मविभोर जन-जन, कभी संजय को ही कन्हैया पुकार उठता है ! क्यों न पुकारे ! उसी जादूगर ने तो छला है जन-जन को ! दूर-दूर से लोग उस मायावी बालक संजय के दर्शन एवं उसका प्रवचन सुनने आ रहे हैं ! कैसा विचित्र है यह बालयोगी ! जो एक बार उसका संग कर लेता है उसके सब दुख दूर हो जाते हैं उसके आंगन में कन्हैया के घुंघरुओं की मधुर ध्वनि सदा के लिये झंकृत हो उठती है !

हां ! बालक संजय, जब वेद के रहस्य को न जान सका था, तो उसने वेद के रहस्य को जानने का एक विचित्र माध्यम ढूंढ़ निकाला ! उसने वेद की ऋचाओं को गोपियों का रूप दिया और योग मार्ग से आत्मा

कृष्ण के संग रास रचाई उनकी; तो बिना जाने व्याकरण उनका, निचोड़ दिये वेद; श्रीमद्‌भगवत गीता में ! यही मात्र मार्ग है वेद का, सही ज्ञान प्राप्त करने का ! दस इन्द्रियों का अर्जित जो बुद्धि है, वह स्थूल इन्द्रियों का अश्रित होने के कारण स्थूल है। स्थूल होने से सूक्ष्म ज्ञान ले पाती नहीं है। वेद तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म ज्ञान है। स्थूल इन्द्रियों का ज्ञान सदा भ्रामक रहता है। सूक्ष्म ज्ञान तो संजय मार्ग से ही मिल सकता है। आपको मेरी कथा अति विचित्र लग रही है ! है न ?

महात्मा संजय का प्रचार दावानल सा फैलने लगा ! मस्त झूमते गोपों के समूह जन-जन मोहित करने लगे ! साम्प्रदायिक धर्माचार्यों के कान खड़े हो गये। संजय के विरुद्ध नाना प्रकार के दुष्टतापूर्ण प्रचार होने लगे।

शास्त्रार्थ हुए ! धर्माचार्य और गुरुडम को बार-बार मुंह की खानी पड़ी। संजय का प्रचार जंगल में लगी आग की भांति फैलता जा रहा था। साम्प्रदायिक "गुरुडम" की दुकानों से माल बिकना बन्द हो रहा था। खरीद्‌दार संजय के कन्हैया पर ही मुग्ध थे। देखो उसका कृष्ण भगवान होकर भी गुरू नहीं बनता है। वह तो मित्र है मेरा ! सखा है मेरा ! मैं गोप हूँ उसका ; वह गोपाल है मेरा ! फिर बैठा भी है, भीतर मेरे ! भला यह तोंदवाला साम्प्रदायिक गुरू बराबरी कर सकता है कन्हाई की ! संजय हमारा दोस्त है ! संजय हमारा लाल है ! संजय हमारा भाई है ! एक बार फिर चोट खाई सम्प्रदायों ने और सागर सनातन लहराने लगा ! सम्प्रदायों के स्वरूप सिमट कर छोटे होने लगे। गीता निगलती जा रही थी उनके विष को और बिखेरती जाती थी अमृत प्रत्येक भक्त के हृदय में ! संजय की गीता ! संजय की गीता !! अरे कौन है यह संजय ? मानो चाहे न मानो स्वयं भगवान वेदव्यास हैं। अरे वह तो स्वयं कन्हैया है ! आदि-आदि चर्चायें सर्वत्र थीं !

साम्प्रदायिक गुरु चोट खाये नाग की तरह फुंफकार रहे थे। बालक संजय अब युवा अवस्था को प्राप्त हो चुका था। बचपन से कंस बने नाना

साम्प्रदायिक गुरु उसके प्राण हरने का प्रयास कर रहे थे। परन्तु हर बार विफल रहे और अपमानित एवं कलंकित होना पड़ा उनको !

समय की गति, धर्म युद्ध की पृष्ठभूमि बन बैठी, श्रीमद्भगवत गीता ! गुरुओं से प्रभावित राजाओं ने हिंसा का सहारा लिया। सेनाओं से लड़े मस्त ग्वाले। फिर बज उठे बिगुल युद्ध के। संजय कीस नातन वाहिनी धर्मयुद्ध का आवाहन कर, अश्वमेघ यज्ञ को निकल पड़ी।

भक्तगण ! आज इस युग में कुछ धर्मगुरु कृष्ण का स्वांग भर, भांड़ों की तरह चेहरे पोत कर भोली सनातन जनता को गुमराह कर रहे हैं ऐसा कर, वे महागुरु स्वयं तो नीच योनियों में जाने को आतुर हैं ही, साथ में भोले प्राणियों को भटकाकर पशु, कीट योनियों में ले जावेंगे। प्रत्येक सनातन जन को इनसे दूर रहना चाहिये। ये गुरु लोग, स्वयं कृष्ण बन, जनता को अपना भक्त बना; बहिर्मुखी बनाते हैं। अन्तर्मुखी कन्हैया की राह न दिखा; रंगे सियार से भांड़ रूपी गुरु में आस्था लाने को प्रेरित कर, उन्हें आत्ममार्ग के विपरीत ले जाकर आत्मद्रोही, कृष्ण द्रोही, सनातन द्रोही बना रहे हैं। ये गुरुलोग, अपने पिछले जन्म के तप का तेज इन प्रपंचों और पाखण्डों में लगाकर नाना-पापयोनियों को प्राप्त होंगे। इसमें संशय नहीं है क्योंकि ये वेद द्रोही हैं, ये आत्मद्रोही हैं, यह कृष्णद्रोही हैं;। ये राम द्रोही हैं, ये ब्रह्मा-विष्णु-महेश द्रोही हैं। इनका संग भी महापाप है। जिस प्रकार गान्धी के त्याग का, नाम का, नाजायज फायदा उठाने वालों ने—उस महासन्त को अपने देश में ही जन घृणा का पात्र बना दिया है। उसी प्रकार निर्दोष, निष्पाप सनातन, इन पाखण्डी गुरुओं और अज्ञानी भक्तों के कारण कलंकित हो रहा है। ऐसे भक्त एवं गुरु ही सनातन को अपमानित कराने, उसकी खिल्ली उड़वाने के महापाप के अधिकारी हैं। निश्चय ही उन्हें इस महापाप का दण्ड मिलेगा।

जानें मेरे नाना देवाधिदेव ! राम, कृष्ण, ॐ ! रूपी नाना भक्त समुदाय ! कि स्वयं संजय भी कभी कृष्ण बनने का दुस्साहस नहीं कर सके। वे सदा प्रत्येक भक्त को उसे अन्तर में देखने का ही आदेश देते रहे। कभी

भी सामूहिक रास लीलायें उन्होंने नहीं होने दीं। प्रत्येक व्यक्ति को यही आदेश दिया कि समाधिस्थ हो, इन्द्रियों की सम्पूर्ण क्रियाओं को अन्तर्मुखी कर, वाह्य रूप से किसी भी इन्द्रिय अथवा भुजा आदि को चलायमान किये बिना, मात्र ध्यान द्वारा अन्तर में अपने आत्मा कन्हाई संग रास रचावें ! यदि वहिर्मुखी हो इन्द्रियों द्वारा ही उसने रास रचाई तो उसमें और एक वेश्या में अन्तर ही क्या है ? आवाज हो नहीं और झूम-झूम कर गाये जावे तू, आंख खुले नहीं और मस्त निहारे जावे तू ! कान हों बन्द और वाँसुरी की तान पर झूमता जावे तू। हाथ हिलें नहीं, शरीर में कम्पन न हो और मस्त झूमता नाचता फिरे तू संग कन्हाई के ! चाँद सितारों पर ! लोक लोकान्तरों में ! यह दर्शन है सनातन संजय का ! इसे अपमानित मत करो हे जन-जन ! इसे कलंकित मत करो ! यह महापाप है ! इस पाप को सहस्त्रों योनियों में भी मिटा पाओगे नहीं ! कृष्ण का स्वांग भरना छोड़ दो ! अवतार के प्रपंच करना त्याग दो अन्यथा अब रावण और हिरण्य-कश्यप की भांति ही तुम्हारी बारी है ! कृष्ण बन रासरचाने वाले रे अवतार ! एक फन वाला नाग फेंकता हूँ तुझ पर ! जरा नथ के दिखा दे। दस फन वाला तो क्या नथ सकेगा तू ! महात्मा संजय के दर्शन को अपमानित कर रहा है रे नीच ! चेत जा समय रहते ही ! अपने आप को अवतार कहने वालों ! क्यों रिकार्डों पर गाते फिरते हो कि तुम अव-तार हो ! शंकर का अवतार हो तुम ! यदि तुम शंकर हो तो इन रिकार्डों का सहारा क्यों लेते हो ? क्यों नहीं भीतर से प्रत्येक की आत्मा से नाद उत्पन्न करते कि तुम भगवान का अवतार हो। क्यों जन-जन को अपने पीछे लगाकर, उन्हें बहिर्मुखी कर, आत्मद्रोही, सनातनद्रोही, बना रहे हो ! रे जन-जन ! जाओ भीतर अपने ! बाहर नहीं हैं कोई गुरु तुम्हारा ! गुरु तो कन्हाई है जो भीतर है तुम्हारे ! मैं पुजारी हूँ तुम्हारा ! मैं भक्त हूँ तुम्हारा ! तुम्हारे शरीर रूपी, गुरु मन्दिर का मैं सेवक हूँ ! फूल माला मुझ पर नहीं चढ़ेगी ! फूलमाला चढ़ाओ मन्दिर में रखी मूर्तियों पर ! आरती उतारो उनकी ! वे मूर्तियां ही तो आत्म प्रतीक हैं ! अद्वैत हैं ! मोक्ष का मात्र मार्ग हैं ! वेदों को सम्मान दो ! आत्मा का धर्म ग्रहण

करो ! धर्म + आत्मा-धर्मात्मा हो जाओ रे भक्तों ! भीतर जाओ ! भीतर जाओ ! बाहर तम अति भारी है ! भटक जाओगे साम्प्रदायिक गुरुओं के संग; फिर महानिकृष्ट योनि तुम्हारी है ! हरि ॐ !

इस प्रकार महात्मा संजय का और नाना सम्प्रदायों का घमासान युद्ध छिड़ गया। धार्मिक कुरीतियाँ सम्प्रदायों की टकराईं और चूर-चूर होती चली गईं। सेनायें आगे बढ़ीं; टक्कर लेने सनातन-वाहिनी से तो स्तब्ध रह गईं। उनके सामने उनकी पत्नियाँ, पुत्र, माता-पिता शस्त्र धारण किये खड़े थे। गीता के कर्मयोगी देख, सैनिकों के पैर जड़ हो गये ! कैसी अद्भुत लीला है महर्षि संजय की ! ब्राह्मण सन्यासी आज बाघम्बर से तन ढके त्रिशूल लिये सनातन-वाहिनी का मात्र एक सैनिक बन खड़ा है। कमाल देखिये कि अब तो इस सनातन-वाहिनी का प्रत्येक सैनिक सनातन है। महारथी अर्जुन है। आत्मा कृष्ण को अपना सर्वस्व अर्पित कर मस्त मुस्कराता खड़ा है युद्ध करने। उन्हें शस्त्र चलाने भी ठीक से आते नहीं हैं। परन्तु भयभीत नहीं हैं वे ! हर्ष से उनके मुख मण्डल कान्तिमान हो रहे हैं। सैनिक स्तब्ध हैं। आवाक हैं। संजय की खामोश आवाज, गीता के श्लोकों को प्रत्येक शरीर में उच्चारित कर रही है !

"......धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः......"

प्रत्येक शरीर पुराने अतीत के महाभारत की पुनर्सृष्टि कर महारथी अर्जुन की भांति युद्ध करेगा। कौन जीत सकेगा उसे ! राजा हैरान है। उसका सम्प्रदायिक गुरु स्तब्ध है। कैसी विचित्र परिस्थिति है।

तभी सेनाओं में भगदड़ मच गई। सेना विद्रोही हो गई है। शेष भाग रही है। संजय की सनातन-वाहिनी उन्मत्त हो शंखनाद कर रही है। गुरु खिसक गये हैं। राजा ने आत्म-समर्पण कर दिया है। विचित्र योद्धा ! विचित्र युद्ध !! चार घड़ी में ही हो गया हार-जीत का फैसला ! राजा सनातन का शरणागत हो गया है ! सेनायें सनातन-पताका के नीचे आ गई हैं। सनातन-आंधी में पड़े झाड़-झंखाड़ से सम्प्रदाय उखड़-

उखड़ कर उड़ते चले जा रहे हैं। महाभारत के युद्ध की पुनरावृत्ति धर्म-युद्ध के रूप में हो रही है। सागर से सागर तक! पर्वत से पर्वत तक महात्मा संजय की गीता आधिपत्य स्थापित कर चुकी है। कर्म के मर्म का ज्ञानकर सम्पूर्ण जन-जाति आत्मिक एवं भौतिक समृद्धि को निरन्तर प्राप्त हो चुकी है। संजय तपस्या में लीन हैं। उनकी समाधि निरन्तर है। संजय रूपी महर्षि वेदव्यास समाधिस्थ हो चुके हैं। शरीर यज्ञ की सामग्री बन आत्मा-कुण्ड में यज्ञ होने लगा है! तेज ही तेज प्रकट हो रहा है। परन्तु माँ प्रकृति अपने लाल को रोके रखना चाहती है। साम्प्रदायिक गुरु चोट खाये घायल नागों की भांति भूमिगत हो चुके हैं। मायायें उनके शरीरों को माध्यम बनाती हैं। बहेलिया मान जाता है। योग-निद्रा में स्थापित योगी के टखने में बाण लगता है। सम्पूर्ण शरीर धधककर ज्वालाओं में बदल जाता है, तेज का पुंज हो, योगी चल देता है! अतीत की कहानी आपकी ही, सुना रहा हूँ आपको!

रामायण का काल, महाभारत युद्ध से लगभग नौ लाख वर्ष पूर्व का है। राम-रावण महायुद्ध इतनी ही प्राचीन घटना है; जबकि बाल्मीकि का युग अधिक पुराना नहीं है। बाल्मीकि महर्षि ने भी संजय ही की भांति आत्मा और प्रकृति का युद्ध, मायाओं का महासमर दिखाने के लिये अति प्राचीन सत्य घटना को पृष्ठभूमि बनाया और रामायण अर्थात् राम पक्ष अथवा आत्मा-पक्ष की कथा सुनाई जन-जन को! बाल्मीकि का काल संजय से कितने उपरान्त का है यह बताना अब सम्भव नहीं है। हाँ, रामायण का काल, महाभारत काल से लगभग नौ लाख वर्ष पूर्व का है यह निश्चित सनातन मत है।

रामायण काल के लगभग नौ लाख वर्ष उपरान्त ही बाल्मीकि का जन्म हुआ है। यदि बाल्मीकि रामायण की संस्कृत भाषा पर विचार करें तो स्पष्ट हो जाता है कि यह भाषा तीन हजार वर्ष से अधिक पुरानी नहीं है। बाल्मीकि रामायण पाणिनि की संस्कृत में है जबकि महाभारत समाप्ति काल तक वैदिक संस्कृत का ही प्रचलन था।

महाभारत उपरान्त कई पीढ़ियाँ अन्धकार में ही भटकती रहीं। जब विनष्ट पीढ़ियों को पुनः कुछ स्थायित्व मिला, सामाजिक जीवन में पुनः प्रवेश कर सके, तो भाषा के पुनः उद्धार की प्रेरणा हुई। इस प्रकार एक ही समय में वर्तमान पाणिनि संस्कृत, पाली, प्राकृत आदि भाषाओं का जन्म हुआ। किसी का प्रसार अधिक हुआ किसी का कम। इसी प्रकार अन्य भाषायें भी विश्व में प्रचलन में आईं। लैटिन, ग्रीक, अरबी, फारसी आदि भाषाओं का भी जन्मकाल लगभग वही आता है।

एक समय में पुनः सनातन से नाना सम्प्रदायों का जन्म होने लगा था—संजय से कुछ सौ वर्ष बाद में। यह काल संजय के कितना उपरान्त था; ठीक से न बता सकूंगा आपको!

द्वैतवाद का जन्म हुआ। उनका कहना था कि ज्ञान बाहर से ही लिया जा सकता है। दस इन्द्रियों को ही दस मुख बना दशानन बनना धर्म है। दशरथ मार्ग अद्वैतवाद का ढकोसला है, पाखण्ड है। यह साम्प्रदाय सनातन की ही पृष्ठभूमि से उभरे थे। उपरान्त यह द्वैतवादी; द्वैत से दैत्य बना दिये गये, प्रतिशोधवश। यह माया महर्षि बाल्मीकि की थी। एक अति प्राचीन सत्य घटना; राम-रावण युद्ध की; उनके प्रवचन की पृष्ठभूमि बनी थी और वे राम को आत्म प्रतीक मानकर सनातन भक्त समुदाय, को द्वैत एवं अद्वैत के; भौतिकवाद एवं आत्मवाद का अन्तर समझाते थे। उस सत्य कथा के पात्र महर्षि ने ज्यों के त्यों रखे। रावण को द्वैत वादियों के दशानन का प्रतीक बना दिया तो उसका नाम भी कालान्तर में दशानन रावण हो गया। उस सत्य धटना के प्रतीक चिन्ह के रूप में, विश्व में अनेक स्थानों पर अयोध्या, सरयु नदी, लंका आदि स्थान बनाये गये। भारत में भी ऐसा ही हुआ था। ऐसे स्मृति प्रतीक स्थानों के भग्नावशेष आज भी विश्व में हैं। कुछ तो खोज भी लिये गये हैं तथा शेष खोजे जा सकते हैं। आशा है भक्तगण इस तथ्य से परिचित हो गये हैं! थाईलैन्ड में भी ऐसे प्रतीक चिन्ह मौजूद हैं। कम्बोडिया के अंगकोरवाट के मन्दिर भी आज ध्वस्त हो रहे, लोन नोल और

अमरीका तथा सिंहानुक और चीन की कृपा से। इसी दर्शन के दुर्लभ प्रतीक चिन्ह हैं।

तनन्तर दशरथ और दशानन मार्गियों में भयंकर युद्ध हुए। राम-रावण युद्ध की पुनरावृत्ति हुई। द्वैतवाद दैत्यवाद बना, दशाननमार्गी रावण कहलाये ! सनातन की टक्कर एक बार फिर फोड़े की भांति उभरते इन सम्प्रदायों से हुई। सनातन जीते और गुरुडम का पाखण्ड; व्यक्ति-पूजा, सब धूल में मिल गई। भौतिकवाद पर आत्मवाद की विजय हुई। यही कथा सर्वत्र प्रचलित हुई। कथाकारों ने इसे विस्तार दिया और यह महर्षि बाल्मीकि की रामायण के नाम से प्रसिद्ध हो गई।

इस प्रकार मेरे सनातन जन-जन ! देखेंगे कि राम-रावण युद्ध एक अलग घटना है तथा दर्शन एक अलग वस्तु है। परन्तु दोनों सदा-सदा के लिये सिमटकर एक हो चुके हैं। क्योंकि राम और कृष्ण आत्म प्रतीक होने से अमर हैं। यह पुस्तकें इतिहास का खण्ड कदापि नहीं हैं वरन् ऐतिहासिक सत्य घटनाओं को पृष्ठभूमि में रखकर, वेद की ही सरल एवं सरस व्याख्यायें हैं। इसलिये इन पुस्तकों को कभी भी तर्क अथवा मीन-मेख का विषय नहीं बनाना चाहिये। मूल वेद हैं ! उन्हीं पर शास्त्रार्थ हो सकता है। यह पुस्तकें तो मार्ग हैं। मार्ग चला जाता है न कि तर्क-कुतर्क किये जाते हैं। गीता और रामायण दोनों आत्म-मार्ग की पुस्तकें हैं। यह शास्त्रार्थ का विषय नहीं हैं। इनको लेकर शास्त्रार्थ और तर्क करना तो रावणवाद है। इसलिये इनको समझना चाहिये न कि इन पुस्तकों पर ही लदकर, अपनी विद्वता का सिक्का जमा और जीवन का स्वर्ण शास्त्रार्थ में ही छितराकर, चन्द मुट्ठी राख में बदल—नाना पापयोनियों में भटक जाना !

तुलसीकृत रामचरितमानस, कदापि तर्क एवं शास्त्रार्थ का विषय नहीं हो सकता है। इस पुस्तक पर 'रामचरितशास्त्र' न लिख 'रामचरित मानस' इसीलिये लिखा है कि यह पुस्तक शास्त्र का विषय नहीं है। इस पुस्तक को आत्मविभोर हो पढ़ना चाहिये। मन को आत्मप्रेरित करने

वाला मानस है यह ! शास्त्र नहीं है । इस पर शास्त्रार्थ करना वर्जित है । यह महापाप है । नीच कर्म है !

ऐसा क्यों किया गया ? इसका उत्तर आपको इस पुस्तक को लिखने के 'समय' और 'कारण' की पृष्ठभूमि से ज्ञात होगा ! यह पुस्तक मुस्लिम-काल में लिखी गई । तलवार का युग था । सनातन जन गुलाम हो गये थे, इस्लाम भक्त मुगलों के । तलवार की धार पर हिन्दू मुसलमान बनाये जा रहे थे । प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष भय, लालच, धमकी आदि दी जा रही थी । खेतिहर-किसान एवं अपढ़ जन-जातियां तेजी से मुस्लिम सम्प्र-दाय में बदलती जा रही थीं । हमारी कोई भी पुस्तक बोलचाल की भाषा में नहीं थी । ऐसे समय में सनातन धर्माचार्यों, विद्वानों एवं महामण्डलेश्वरों की एक गुप्त सभा हुई । धर्म के प्रचार के लिये कथाओं एवं कहानियों का प्रचार एवं व्रत आदि के नियम बनाये गये, जिससे सनातन-जन भटक कर उस सम्प्रदाय में शामिल न हों तथा अपने धर्म के प्रति उनमें आस्था श्रद्धा भरी जा सके । येन-केन-प्रकारेण सनातन धर्म को जीवित रखा जाये । यह समय और स्थिति के अनुरूप एक महान पवित्र यज्ञ था ; जिसके कारण आज भी आपलोग बहुमत में हैं । अन्यथा इस देश में सर्वाधिक अल्प संख्यक सनातन-धर्म होता और सम्प्रदाय उसे निगल रहे होते ।

ऐसे ही समय में आशुकवि महात्मा तुलसी बुलाये गये और उनसे प्रार्थना की गई कि वे चालू भाषा में बाल्मीकि रामायण का विस्तार गीतों में करें । पहले तो महात्मा तुलसी माने नहीं ! अन्तर्मुखी हो तप, ध्यान में मगन रहने लगे थे वे महापुरुष ! सबने मनाया ! मान गये ! उनसे साथ में यह प्रार्थना भी की गई कि अपनी पुस्तक में किसी प्रकार की भी अतिशयोक्ति लाने में हिचकिचायें नहीं । समय की मांग को ही ध्यान में रखें । साथ ही मनुष्यों के अतिरिक्त वन्य-पशु-पक्षियों को भी पात्र बनावें तथा उनका अति विस्तार करें, जिससे इस पुस्तक के प्रचार में सहयोग मिल सके ।

"हे तुलसी ! तेरी कोई शिष्य परम्परा नहीं होगी ! तेरी कोई

गद्दी नहीं होगी। तू घर-घर अमर होगा। हम प्रतज्ञा करते हैं।" सम्पूर्ण धर्माचार्यों ने प्रतिज्ञा की। इस प्रतिज्ञा में सनातन ही नहीं—सनातन से निकले अन्य सम्प्रदायों के गुरू भी शामिल थे। ऐसे सम्प्रदाय जो अब किसी प्रकार भी सनातन नहीं हैं; न ही सनातन मूर्तियों अथवा मान्यताओं में अपना विश्वास रखते हैं। जिनके पूज्य देवता एवं मूर्तियाँ भी अलग हैं। खतरा उनके भी अस्तित्व को भारी था। भय-काल में शत्रु भी मित्र हो उठते हैं, अपने ही हित में। इस प्रकार महात्मा तुलसी ने रामचरित-मानस रचा। गांव-गांव ब्रह्मचारी हस्तलिखित पुस्तक की स्थापना कराने लगे। रामलीला का प्रचलन हुआ। मुस्लिम जागीरदार भड़का, तो उसे समझा दिया गया कि "हुजूर बच्चों का मनोरंजन हो रहा है। धर्म का प्रचार नहीं है यह। देखिये आदमी बन्दर, भालू बने नाच रहे हैं। आपके किसी ने गलत कान भरे हैं—आदि आदि।"

इस प्रकार तलवारों की धारों के नीचे जिया सनातन! तुलसी के रामचरितमानस द्वारा! नत-मस्तक हो रे सनातन जन-जन! इस पुस्तक ने तुझे जीवन दिया है! प्राणाधार है तेरी! इस पुस्तक को इसकी ही पृष्ठभूमि में देख! संदेह, संशय मन से निकाल—और आत्म-विभोर हो, गाये जा गीत आत्मा राम के!

रोटी और कमल की क्रान्ति, जिसे लोग १८५७ का गदर कहते हैं—धर्मप्रेरित था। पृष्ठभूमि थी पुनः एक धर्मयुद्ध की। जिसमें भारत माँ के रणबांकुरे विदेशी सत्ताधारियों का इस देश से सदा-सदा के लिये सफाया कर देते। इस महासमर को कन्धा दे रहे थे सनातन सन्यासी। इसमें हाथ था एक गढ़वाली सभासद का। बहादुरशाह ज़फर का अत्यन्त विश्वासपात्र था वह! समय से पूर्व ही बात खुल गई। क्रान्ति की विकरालता से भयभीत अंग्रेज, बहादुरशाह ज़फर को मारने का दुस्साहस भी नहीं कर सकता था तथा भारत में नजरबन्द कर रखने का साहस भी न था उसमें!

गली-गली घूमते थे सन्यासी—एक हाथ में रोटी; एक हाथ में

कमल ! प्रतिज्ञा लो रोटी लेकर हाथ में, और पुष्प की भांति खिलो यह आशीष हमारा है ! शहर जाग उठे। गली-कूचों में आजादी की भैरवी नृत्य करने लगी। हर घर में तैयार थे बलिदानी। इन्तजार थी शुभमुहूर्त की। उससे पूर्व ही जोश में आकर पाण्डे ने तोप के मुंह गड़गड़ा दिये। क्रान्ति अपने कच्चे पैरों पर मसल दी गई। भयंकर नरसंहार हुआ। हत्यारा भी बुरी तरह मारा गया। उसका आततायी हृदय कांप उठा। इंग्लैन्ड छोड़कर यहाँ आकर बसने और अपनी संख्या बढ़ाकर इस देश को सदा के लिये गुलाम बनाये रखने की कल्पना उसकी चूर-चूर हो गई। भारी संख्या में उसके देशवासी मारे गये। जो बचे सो काम-धन्धा बन्दकर भाग खड़े हुए। भय सदा के लिये व्याप्त हो गया। नौकरियों में फंसे लोग ही रह सके। इस प्रकार सनातन सन्यासी-मण्डल ने एक बार पुनः इस संस्कृति को जीवन प्रदान किया।

आज के भौतिकवादी राजनीतिक नेता गली-गली चिल्ला रहे हैं कि धर्म को राजनीति से अलग रहना चाहिये। यह नारा देते समय वे भूल जाते हैं कि आज, वे जो अपने पूर्वजों का नाम तथा उस महान संस्कृति का गर्व, धारण किये हैं—वह मात्र इसी धर्म के कारण है।

इन नारों को वे स्वयं मानते भी नहीं हैं। धर्म में घुसकर सम्मान पाने की; अपने घिनौने राजनीतिक हथकन्डों से धर्म को कलंकित करने से बाज नहीं आते हैं। बद्रीनाथधाम आज इसी घृणित राजनीति का शिकार है। धर्म की नींव उखाड़कर फेंक देना चाहते हैं। एक पुजारी को ब्रह्मचारी होना चाहिये तथा पुजारी से ऊपर जो मेम्बर और अध्यक्ष आदि पद हैं, उनके लिये ब्रह्मचारी के उपरान्त पद है कि वे एम० एल० ए० और एम० एल० सी० होने चाहिये। जब राजनीति धर्म से अलग रहना चाहती है तो अपने इस अस्तित्व को दूर क्यों नही रखती, धर्म से। वहां सम्मान पाने की अनाधिकार चेष्टा क्यों करती है ? जब आप नारा लगाते हैं कि राजनीति धर्म से अलग रहे तो आपका यह नारा हमें सहर्ष स्वीकार है। आप मर्यादा विधान सभा की क्यों नष्ट करते हैं, धार्मिक

पुस्तक के पन्ने फाड़कर ? ये आपके अपने सिद्धान्तों का अपमान है, संविधान को दी गई गाली है। प्रजातन्त्र को थोथा तन्त्र साबित करना है तथा अपनी ही पीढ़ियों को गाली देना है।

यदि आपको उस पुस्तक पर आपत्ति थी तो धार्मिक स्टेज पर अपने विचार रखते। भले ही सारी पुस्तक फाड़ डालते, सनातन धैर्यपूर्वक आपकी सारी बात सुनता और उचित कार्यवाही करता। परन्तु जहाँ उसकी चर्चा भी वर्जित है, वहाँ उसका अपमान करना, नौटंकी के भांड की तरह नाटक दिखाना, कहाँ तक उचित है ? भक्तगण स्वयं निर्णय करें उसका।

सनातन तो जन-जन का भक्त है। अभावों में मुस्कराना सिखाता है जन-जन को। सनातन तो इन राजनीतिज्ञों का परम भक्त है। पुजारी है इनका। सनातन किसी राजनीतिक दल अथवा किसी व्यक्ति विशेष से न तो घृणा करता और न ही अपमानित ही करना चाहता है। सनातन किसी को सत्ताहीन कर दूसरे को सत्ताधारी नहीं बनाना चाहता है। सनातन मनुष्य बदलने में विश्वास नहीं रखता है। सनातन का अटल मत है मनुष्य नहीं, उसकी भावनाओं को बदल दो। उसे रावण से राम बना दो। सनातन विघटनवादी नहीं है, उसका नारा है-"ऐकोविश्व, ऐकोब्रह्माण्ड, ऐको सनातन; द्वितीयो नास्ति !"

इसलिये मेरे नाना प्रभु; जन-जन में समाये मेरे नाना देवाधिदेव, सनातन द्वारा दिये गये सत्य दर्शन को किसी दल अथवा व्यक्ति विशेष की निन्दा मानकर अपने भक्त को पापी न बनावें। सनातन जन-जन का भक्त है। सनातन हर चेहरे में कान्ति एवं आत्मतेज देखना चाहता है। सनातन द्वारा राजनीति के प्रति कहे गये शब्द सनातन की प्रार्थना, भक्ति के रूप में स्वीकार किये जाने चाहिये। सनातन स्वयं अपने ही महात्माओं से कदापि टकराना नहीं चाहेगा। जिसने अपना विरोध भी प्रार्थना, भक्ति के साथ अर्पित कर दिया, उससे टकराव कैसा ?

सनातन व्यक्ति परिवर्तन का मार्ग नहीं चलता है, वह तो हृदय

परिवर्तन की बात करता है। साथ ही वह अन्धी दौड़ को प्रगतिवाद मान नहीं सकता है।

अभी कुछ समय पूर्व रेल द्वारा यात्रा कर रहा था, भक्त आपका! गाड़ी गंगाजी के पुल से गुजरी। कुछ व्यक्तियों ने नमस्कार किया। उसे देख कुछ पाश्चात्य सभ्यता से रंगे प्रगतिवादी व्यंग करने लगे।

आज मेरे सामने मेडिकल सर्वे रिपोर्ट है। इस देश की अस्सी प्रतिशत जनता सड़ रही है, पेट के कीड़ों से। कारण ? नदियों में सीवर खोल दिये गये हैं। ऐसा लिखा है इस रिपोर्ट में।

प्रगतिवादियों ने दौड़ लगाई है, पीढ़ियाँ मानवों की सड़ रही हैं, पेट में कुलबुलाते कीड़ों से। यही सीवर यदि नदियों में न डालकर अलग सैप्टिक-प्रॉसेस कर लिये जावें तो यही अभिशाप उर्वरक बन खाद की पूरी समस्या हल कर देता तथा इससे निकलने वाली गैस को ईन्धन के रूप में प्रयोगकर, बिजली और पेट्रोल की खपत को बचाया जा सकता है। व्यंग से मुस्करा रहे हैं, जो उन्ही को पेट के भीतर खाये जा रहा है; भौतिकवाद, प्रगतिवाद उनका, बनकर—कीड़े।

कितना दूरदर्शी रहा होगा वह महात्मा, जिसने जन-जन को नदियों की पूजा करने का आदेश दिया। पवित्र भावनाओं से प्रेरित होकर कोई इन नदियों के जल को गन्दा नहीं करेगा, तो अभिशप्त होगी नहीं मानव जाति प्रत्युत्तर में। उनकी व्यङ्ग भरी मुस्कान, आज भी याद है आपके भक्त सनातन को!

हे जन-जन! पहचानो कि यह सनातन ही है, जो बाँधे है तुम्हें एक सूत्र में। सम्प्रदाय तो सदा लड़ाते आये तुमको। नाना सम्प्रदायों के विष से निकालकर, लाया यह तुमको! नाना प्रहार सहकर भी जिसने, तुम्हारी वंश परम्परा न मिटने दी। तुम्हारी पीढ़ियों का क्रम; तुम्हारी संस्कृति को; बनाये रखा। वह सनातन ही था। यह बात और है कि राजनीतिज्ञों की भांति यह सब गीत गाये नहीं उसने! गाल बजाये नहीं

उसने ! जब मार खाकर सो गये थे और तलवार की धार पर धर्म परिवर्तन हो रहे थे; तब संग बना था यह तुम्हारा; जिसके कारण आज तुम सम्मान पा रहे हो। जागो हे सनातन देवाधिदेवों ! पहचानो स्वयं को और सनातन सागर भजो; तजकर पोखर सम्प्रदायों के।

यहाँ आपका भक्त एक बात और भी स्पष्ट कर देना चाहेगा कि वह गुरु प्रथा के कदापि विपरीत नहीं है, भक्त सनातन तो आपके गुरुओं का परम् भक्त है। उनकी चरणधूलि से अपना भाल सुशोभित करता है। उनके चरणों में स्थान है उसका। वह तो उन देवाधिदेवों का, उन महाप्रभु महामण्डलेश्वरों का अन्ध भक्त है। यदि आपके भक्त ने उन महात्माओं के विषय में भी कुछ अनजाने में अज्ञानवश कह दिया है, तो उसके लिए बारम्बार क्षमा प्रार्थी है। उसके द्वारा कहे हुए किसी भी शब्द का अन्यथा अर्थ न लगावें मेरे महाप्रभु ! आपका भक्त सनातन तो आत्मा मात्र का भक्त है। जो कुछ भी उसने कहा है, उसे इस अज्ञानी भक्त की स्तुति एवं प्रार्थना के रूप में स्वीकार करें कोटि-कोटि महाप्रभु ! गुरुडम के विषय में जो कुछ कहा है आपके परम् भक्त ने—वह तो मात्र प्रार्थना है उन महाप्रभु गुरुजनों के चरण कमलों में। स्तुति है भक्त सनातन की ! जन-जन के हित में; धर्म सनातन के हित में, भीख मांगता है भक्त आपका ! लिप्सा का प्रतीक न बने गुरुजन ! त्याग की अमर मूर्ति के रूप में प्रकट हो जन-जन को ज्योतिमय करें मेरे परमेश्वर ! सनातन का रोम-रोम अन्ध भक्त है उनका !

सनातन के दो तन्त्र हैं। सनातन-राजतन्त्र एवं सनातन-तपतन्त्र। सनातन-राजतन्त्र में मण्लेश्वर, महामण्डलेश्वर, विश्वगुरू आदि महान पद सुशोभित हैं। जिस प्रकार राजा अपनी जनता से राज्य के कानून एवं नियम का पालन करवाता है—उसी प्रकार सनातन राज-राजेश्वर—महामण्डलेश्वर; जनता को पूजा-पाठ, दान-धर्म, नियम-संयम, नूतन देवालयों का निर्माण, समाज में धार्मिक आस्थाओं को बनाये रखना; समाज को कलुषित, विक्षिप्त होने से रोकना आदि महत्वपूर्ण कार्य को निष्ठा-

पूर्वक निभाते हैं। जिस प्रकार राजा ऐश्वर्य का अधिकारी है, उसी प्रकार वह अधिकार इनको भी है। इसीलिये लक्ष्मी स्वतः इनके पास जाती है क्योंकि ये महाप्रभु-महामण्डलेश्वर वरद हैं, राज-राजेश्वर त्रैलोकेश्वर महाविष्णु से। यदि सनातन का राजतन्त्र समाप्त कर दिया जाये तो अनर्थ हो जावेगा।

सनातन-तपतन्त्र भी उसी का आश्रित है। यदि यह जन-जन को धर्म का ज्ञान नहीं देंगे तो तप पर चल सकेगा कौन ? इसलिये इन महात्माओं और राज-राजेश्वरों के प्रति भक्त सनातन की अनन्य अन्धभक्ति है, इन्हीं की कृपा से तो आपका भक्त सनातन अन्तर्मुखी हो कन्हैया को ढूंढ़ने का मार्ग जान सका है—रोम-रोम ऋणी है। इन्हीं की कृपा से तो झूम रहा है भक्त आपका—मस्त; उन्मुक्त; संग कन्हाई के !

सनातन तपतन्त्र में एक ही गुरू है। देवगुरू बृहस्पति ! देव अर्थात् आत्मा ! आत्मागुरू बृहस्पति इस महान पद पर आसीन हैं। इसके उपरान्त सनकादिक सनातन ऋषियों की बारी आती है। किसी भी देहधारी को इस मार्ग में गुरू बनने का अधिकार नहीं है। केवल ब्रह्मर्षि ही इस महान पद पर आसीन हो सकते हैं। इस प्रकार इस मार्ग में गुरू से ज्ञान भी इन्द्रियों के द्वारा नहीं लिया जाता है। मरणशील इन्द्रियों के द्वारा अमर ज्ञान लिया भी कैसे जा सकता है। इस मार्ग में योगी दिव्यमार्ग से ही गुरूमन्त्र प्राप्त करता है एवं अन्तर से मार्गदर्शन लेता हुआ शरीर सामग्री को आत्माहवनकुण्ड में यज्ञ करते हुए ब्रह्मर्षि के पद को प्राप्त हो; पृथ्वीमाया के गर्भ से बाहर निकल; स्वप्न से जागृति को प्राप्त हो, लोक-लोकान्तरों में भ्रमण करता, मोक्षपद को प्राप्त होता है।

हरि ॐ नारायण हरि !
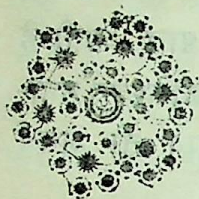
अष्टम अध्याय

अहं ब्रह्मास्मि

भक्तगण !

आज आप सब महात्माओं के प्रति अर्पित करुंगा ज्ञान अहंब्रह्मास्मि प्राप्ति का। श्रीमद्‌भगवत्‌गीता का सम्पूर्ण आठवां अध्याय ही इसका परम् लक्ष्य है।

"शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥" (गीता ८।२६)

क्योंकि जगत के यह दो प्रकार के शुक्ल और कृष्ण अर्थात् देवयान और पितृयान (स्पष्टार्थ आत्माहवनकुण्ड-मार्ग और चिता-हवनकुण्ड-मार्ग) सनातन माने गये हैं। (इनमें) एक के द्वारा (आत्माकुण्ड में सम्पूर्ण यज्ञ करके गया निष्काम योगी) पीछे न आने वाली परम्‌गति को प्राप्त होता है तथा दूसरे द्वारा (शरीर सामग्री को चिता-हवनकुण्ड में यज्ञ कर, अर्थात् धूममार्ग से गया सकाम कर्मयोगी) पीछे आता है अर्थात् जन्म-मृत्यु को प्राप्त होता है। पुनः—

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव
दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥ (गीता ८।२८)

योगी पुरुष इस रहस्य को तत्व से जानकर वेदों के पढ़ने में तथा यज्ञ, तप (और) दानादिकों के करने में जो पुण्यफल कहा है उन सबको निःसन्देह उल्लंघन कर जाता है और सनातन परमपद को प्राप्त होता है।

स्वयं महाप्रभु कृष्ण, जो आत्मा हवनकुण्ड के प्रतीक हैं, सृष्टा ! यज्ञेश्वर हैं, आत्मा के परम् स्वरूप होने से परमात्मा हैं, बीच महाभारत में बुद्धि प्रतीक रूप महारथी अर्जुन को अहंब्रह्मास्मि का उपदेश करते हैं। बुद्धियों में सर्वश्रेष्ठ बुद्धि अर्जुन हैं एवं दुर्बुद्धि दुर्योधन हैं।

भक्तगण ! कृपया आप महाप्रभु जानें, 'अहंब्रह्मास्मि' के बिना कोई मोक्ष नहीं है। ब्रह्म के सूक्ष्म रहस्य के ज्ञान के बिना आप यज्ञ के रहस्य को जान ही नहीं सकते हैं; यज्ञ के रहस्य को जाने बिना आप यज्ञ कर ही नहीं सकते हैं। यज्ञ से अनभिज्ञ होने से यज्ञ का फल पायेंगे नहीं; तो आपको मोक्ष देगा कौन ?

जब तक आत्मा यज्ञेश्वर से ब्रह्म का ज्ञान इस बुद्धि को प्राप्त नहीं होगा; यह बुद्धि कैसे जान पायेगा कि भस्मी कैसे वनस्पति बनी तथा वनस्पति किस प्रकार रक्त मांस के कणों में परिवर्तित हो बालक रूप बन बैठी।

जिस दिन मैं आत्मा से योग कर सका; आत्मा यज्ञेश्वर से, मैं यज्ञ के रहस्य जान सका तथा द्वैत; बुद्धि और आत्मा का, अद्वैत करके स्वयं यज्ञ कर सका; सूक्ष्म-ब्रह्म के ज्ञान का अधिकारी होने से मैं 'अहं-ब्रह्मास्मि' को प्राप्त होता हुआ ब्रह्मर्षि के सर्वोच्च पद पर आसीन होता हूँ। तब मैं जन्म एवं मृत्यु, सृजन एवं विसर्जन, का परम् ज्ञाता होने से, खिलौने से खिलाड़ी बन जाता हूँ। वायुमण्डल में अणुओं को सृजन-यज्ञ से स्वरूप देता हूँ और योगमाया से उसमें प्रविष्ट होता हूँ।

चूंकि गर्भ-मार्ग से मेरा लौटना होता नहीं है इसलिये बार-बार मेरा ज्ञान नष्ट नहीं होता है। गर्भ के क्षीरसागर में प्रविष्ट होने से पिछली सम्पूर्ण माया (ज्ञान, रूप, रस गन्धादि) नष्ट हो जाती है। परन्तु जो योगमाया से प्रकट हो रहा है, उसका ज्ञान कदापि नष्ट नहीं होता है। वह तो इच्छाधारी हो, नाना स्वरूप क्षणमात्र में धारण कर सकता है।

भक्तगण ! मैं आप महाप्रभुओं को पहले भी बता चुका हूँ कि वेद

ने तीन गर्भ कहे हैं। प्रथम गर्भ वनस्पति का है, जिससे मैं भस्मी रूप से सुन्दर वनस्पति में पुनर्जन्म को प्राप्त होता हूँ। दूसरा गर्भ माता का है, जिसमें मैं वनस्पति रूप तजकर बालक रूप में पुनर्जन्म को प्राप्त होता हूँ। तीसरा गर्भ पृथ्वी-माया का है। इस तीसरे गर्भ से जन्म को प्राप्त होना ही 'अहंब्रह्मास्मि' है।

सोचो हे मेरे नाना महात्माओं ! क्या हमारी स्थिति उस गर्भस्थ पिण्ड की सी नहीं है, जो गर्भ में विचरण करता नाना स्वप्न देखता है और पुनः चिता रूपी मायाग्नि से बिन्दु-बिन्दु हो, गर्भ में ही बिखर जाता है। दुकान, मकान, बीबी, बच्चे सब स्वप्नमात्र बन जाते हैं। ज्ञान, सम्मान भी थोथा पाखण्ड बनकर रह जाता है। पुनः बिन्दु जुड़कर पिण्ड रूप हो स्वप्न में ही खेल देखते हैं। स्वप्न, से स्वप्न यह पिण्ड रूपी मनुष्य पृथ्वी-माया में भटकते रहते हैं। जन्म 'अहं ब्रह्मास्मि' हो तो जागृति मिले। बार-बार लुटे न ज्ञान तेरा, अतीत मात्र भ्रम सपना बन कर न रह जाये; रे जन्म तो तब है ! जागृति उसी का नाम है !

रे मायागर्भ में भटकते पिण्डरूपी मनुष्य ! तज शेखचिल्ली की स्वप्नमयी भ्रामक दुनिया को। अंतर के नेत्र खोल ! रोम-रोम को पिण्ड-रूप से पुनर्जन्म को प्रेरित कर ! तोड़ दे बन्धन इस पृथ्वी-माया के ! प्राप्त होकर अहं ब्रह्मास्मि, ब्रह्मर्षि पद पाकर, हो जा रे इच्छाधारी ! स्वप्न से जागृति हो तेरी ! सृष्टि से सृष्टा बने तू ! मोहरा; बने खिलाड़ी ! जाग रे बन्धु, जाग ! मत भटक इस माया के भ्रम में ! हरि ॐ ! नारायण हरि !!

मेरी स्थिति उस व्यक्ति की है जो झोला लिये हाथ में, लौट रहा है घर। रास्ते में एक खेत में रखवारे को न देख कुछ फल तोड़कर चुपके से झोले में रख, आगे खिसक लेता है। आगे बढ़ता है दूसरे खेत में सुन्दर फल देखता है। वहां छोटा बालक बैठा है। उसे घुड़ककर फल तोड़कर भाग खड़ा होता है। तीसरे खेत में रखवारों से मिन्नत करके कुछ फल प्राप्त कर लेता है। चौथे खेत में काम करके कुछ फल प्राप्त कर लेता

है। बहुत प्रसन्न है। सोचता है आज तो खूब माल इकट्ठा कर लिया है। अब मजा करेंगे। मंजिल पर पहुंचकर झोला उलटता है तो स्तब्ध रह जाता है! झोला खाली है। पेंदा फटा था। माल तो सब बिखर गया। खाली झोला है। फल नहीं हैं साथ में। जो कुछ साथ है वह यह कि चोरी का पाप है; ठगी और गुन्डागर्दी के अभिशाप हैं; लिप्साओं के महापाप हैं; सकाम कर्म के दोष रूपी पाप हैं। फलों के स्थान पर यही बटोर सका है तू—छितरा के स्वर्ण जीवन का। स्वप्न में विचरण करता मात्र छलावा है, जो न था कभी; न है ही।

इससे पहले कि इस झोले में कुछ भरे तू—सी ले पेंदे को इसके, 'अहं ब्रह्मास्मि' की सुई से। निष्काम कर्मयोग का मजबूत तागा लगा। सकाम कर्मयोग की डोरी चलेगी नहीं। बीच राह में फट जायेगा पेंदा पुनः।

अहं ब्रह्मास्मि! अहं ब्रह्मास्मि!! घोष कर रे सनातन! ब्रह्म के मार्ग का अनुसरण कर! ब्रह्म के मार्ग का आचरण कर—ब्रह्मचारी हो! तज दे मार्ग दशानन! चल दे मार्ग दशरथ पर! मैंने ब्रह्म के रहस्य को जान लिया है! मैं ब्रह्म के रहस्य में पारंगत हो गया हूँ! मैं ब्रह्मा हूँ। अहं ब्रह्मास्मि! अहं ब्रह्मास्मि!! मैं ब्रह्मर्षि हो गया हूँ! यज्ञकर्ता हूँ! जानता हूँ रहस्य सारे यज्ञ के! अहं ब्रह्मास्मि! अहं ब्रह्मास्मि!! आत्मारूपी यज्ञकुण्ड में, शरीर रूपी यज्ञसामग्री को—हे बुद्धि रूपी पुजारी यज्ञ कर! नित्य कर! प्रतिक्षण कर!! निकल बाहर पृथ्वी-माया के गर्भ से तेजस्वी सूर्य बनकर! मुक्त, उन्मुक्त, मस्त झूमता चल लोक लोकान्तरों में! अहं ब्रह्मास्मि! अहं ब्रह्मास्मि!!

भक्तगण! किस प्रकार मैं पृथ्वी-माया के गर्भ से उद्धार को प्राप्त हो सकता हूँ? किस प्रकार मैं उस मार्ग का अनुसरण करूं कि 'अहंब्रह्मास्मि' की प्राप्ति हो मुझे!

विद्वानों ने अनेक मार्ग दिखाये हैं। नाना प्रकार के योग-मार्ग

दशाये हैं। हे नाना देहधारी महात्माओं ! आपके सामने असत्य भाषण करने की सामर्थ्य नहीं है मुझ भक्त सनातन में ! इस मूढ़ भक्त ने कोई पुस्तक पढ़ी नहीं ; इसलिये इन पुस्तकों का ज्ञान भी नहीं है आपके भक्त से पास ! झूठा मुखौटा लगाकर बैठूंगा नहीं आपके सामने ! वेद और शास्त्र, पुराण और उपनिषद् कुछ भी पढ़ नहीं पाया हूँ, हे नाना महा-प्रभुओं ! और अब दशानन मार्ग से अर्थात् इन्द्रियों के मार्ग से पढ़ भी नहीं सकता हूँ। श्रीमद्‌भगवतगीता तथा कुछ वेदों की टीका ही कभी यहाँ, कभी वहाँ पढ़ने को मिली है। संस्कृत का विद्वान तो दूर, उसका साधारण ज्ञान भी नहीं है मुझे ! विद्वता के नाम पर मेरे पास सिर्फ एक नाम है उसका ! अन्ध भक्ति है बाकी !

एक बालक मन्दिर में कथा सुनने गया था। बहुत छोटा था। लालच सम्भवतः प्रसाद का भी रहा होगा। कथाकार के कुछ वाक्य मन में गढ़ से गये, "यज्ञोपवीत के बिना ब्राह्मण भी शूद्र होता है।" उसके मन को ठेस लगी। ब्राह्मण होते हुये भी मैं शूद्र हूँ। छिः !! मन में यज्ञोपवीत धारण करने की इच्छा बलवती हुई, परन्तु धारण करावे कौन ? सब समय, मुहूर्त आदि की बात करें; तब तक विशुद्ध उच्च ब्राह्मण से शूद्र बने रहना असह्य था उस बालक के लिये। चुपके से यज्ञोपवीत खरीदा और मन्दिर में जाकर स्वयं धारण कर लिया। सब लोग हसे। मजाक बना। भला बिना गुरु के कभी यज्ञोपवीत हुआ है ? अब प्रश्न उठा गुरु कहाँ से आयें ? कथायें और धार्मिक चर्चायें नित्य ही सुनने को मिलती थीं। पर यह देहधारी गुरु तो समय और मुहूर्त तक उसे अछूत बनाये रखना चाहते

हैं । मन में एक विचार आया कि एकलव्य की तरह काहे नहीं गुरु धारण करते । बस देवगुरु वृहस्पति का बैठ ध्यान करने लगे । यज्ञोपवीत के रहस्य का ज्ञान हुआ । तबसे जो लिपटा है वह भक्त—फिर न पढ़ सका कुछ भी ! यह अन्तर्प्रेरणा बचपन में दी स्वयं उन्होंने ! वरना क्या बालक ध्यान के योग्य था उन महाप्रभु देवगुरु वृहस्पति का ! इसलिये हे महात्माओं ! इस मूढ़ अज्ञानी के पास भी जड़ भरत की नाईं पुस्तकों का ज्ञान नहीं है ! विद्वता के नाम पर ठूंठ है यह ! यह आपके किसी सम्मान का भी अधिकारी नहीं है । सम्मान यदि देना ही चाहते हैं तो दीजिये मेरे देव गुरु वृहस्पति को, आत्म प्रतीक मूरत कन्हाई को ! पुष्प चढ़ाइये उन पर ! लाद दीजिये फूल मालाओं से ! स्तुति झूम-झूम कर गाइये उनकी ! सर्वस्व न्यौछावर कर दीजिये उनपर ! अगर देना ही है मुझे कुछ तो दीजिये आशीर्वाद कि लिपटा रहूँ मैं उनसे !

नाना योग मैं जानता नहीं हूँ ! नाना व्याख्या आती नहीं मुझको ! एक रास्ता चल रहा हूँ जो; सो बताये देता हूँ आपको ! सही है अथवा गलत; इसका भी ज्ञान नहीं मुझको ! जाने आत्मा कन्हाई ! जाने आत्मगुरु वृहस्पति ! जो अन्तर से प्रकट होता है सो सुना रहा हूँ आपको !

गायत्री मन्त्र ही अहं ब्रह्मास्मि का गुरु मन्त्र है । गायत्री—ध्यान सन्ध्या ही उस सीढ़ी का प्रथम चरण है ।

गायत्री मन्त्र में मैं आत्मा का साक्षात्कार करता हूँ । 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' अर्थात् सूर्य रूप है । यज्ञ कुण्ड है । वही ब्रह्मा + विष्णु + महेश है । मर्यादा पुरुषोत्तम राम है । सारथि कृष्ण है । प्रातः ब्रह्मस्वरूप हो आत्मा सामग्री को ग्रहण करता है, अरूणोदय के सूर्य सा स्वरूप धारण करके । दोपहर को प्रलयंकर रुद्र का रूप धारण करता है, दहकता सूर्य बनकर । तथा सायंकाल विष्णु स्वरूप धारण कर सृजक होता है, अस्ताचल को जाते सूर्य सा स्वरूप हो । इस प्रकार गायत्री मन्त्र, जो सन्ध्या का मन्त्र है, तथा सम्पूर्ण वेदों की जननी आत्मा का मन्त्र है, उसका साक्षात्कार मैंने आप

सब महात्माओं को कराया। इस प्रकार इष्टदेव का स्वरूप एवं ध्यान बिन्दु जाना आपने !

योग का अर्थ है मिलन ! बुद्धि पुजारी का आतमा हवनकुण्ड से। ध्यान मार्ग में मैं उस आत्माकुण्ड को, जो सूर्य सा तेजस्वी स्वरूप है, भृकुटी के मध्य में धारण करता हूँ। एक तेज बिन्दु। तदनन्तर गायत्री-मन्त्र द्वारा मैं उसकी निरन्तर स्तुति करता हूँ । उस तेज-बिन्दु को ध्यान द्वारा मैं अधिक से अधिक प्रकाशवान बनाता हूँ । सहस्त्रों सूर्यों के तेज से भी अधिक तेजस्वी है न मेरा कन्हाई ! लगता है मेरे मस्तक में तेजस्वी सूर्य जैसा आत्माकुण्ड प्रज्जवलित हो उठा है । तब मैं अंगों को हिलाये बिना, ध्यान मार्ग से सर्वाङ्गन्यास करता हूँ, अपने शरीर के रोम-रोम को पुकारता हूँ कि हे कण-कण ! आज मिलन की मधुर बेला है । आतमा कृष्ण आज कृपालु हो उठे हैं। मुझे, यज्ञेश्वर बनाने को महाप्रभु आ गये हैं। रे रोम-रोम आज मिलन होगा कन्हाई से ! स्वयं प्रेरित हो ! स्वयं आहुति होकर जा गिरो आत्मा हवनकुण्ड में । जागो हे ! मेरे रोम-रोम ! कहीं मिलन के क्षण न रह जावें रीते ! कहीं पुनः रूठ के न चल दे छलिया ! मत करो देरी ! हे अग्ने ! मेरे रोम-रोम में प्रकट हो ! सहस्त्रों-सहस्त्रों तेजस्वी हवनकुण्ड स्वरूप हो मेरे रोम-रोम से प्रकट हो ! कोई सूक्ष्म-बिन्दु तेजहीन न रह जावे ! अरे आज तो दीपावली है ! कण-कण में दीप जलाओ रे ! अग्ने ! आज सर्वस्व अर्पित है तुझे ! ले भक्ष्य ! स्वीकार हो तुझे यह सम्पूर्ण सामग्री ! हे अग्ने ! हे प्राणाधार ! हे सम्पूर्ण लोकों को तेज देने वाले ! सम्पूर्ण तम का; पाप का; मायाओं का नाश करने वाले, आज सब कुछ अर्पित है तुम्हें ! सारे मार्ग इन्द्रियों के त्यागकर, हे मधुसूदन आज आया हूँ शरण तिहारी ! तुम्हीं ने तो कहा था गीता में—

"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।"

हे तेज ! हे 'कृष्णाः' हे प्राणाधार ! आहुति स्वीकार हो । सामग्री अर्पित है ! श्रद्धा, भक्ति एवं आस्थापूर्वक सर्वस्व अर्पित कर रहा

हूँ आपको ! हे नारायण ! आपने ही तो मुझे यह मार्ग दिखाया है ! यह सब ज्ञान आपने ही तो मुझे दिया है ! आपने ही तो मुझ अज्ञानी को अपना महिमा स्वरूप स्पष्ट कर दिखाया है ! नदियों में महान गंगा, पर्वतों में महाहिमालय, ब्रह्मों में परंब्रह्मा, रुद्रों में शंकर, वैष्णवों में महाविष्णु हैं ! परंब्रह्म एवं परंब्रह्मा भी आप हैं ! मेरा रोम-रोम भी महाप्रभु स्वयं आप हैं तथापि मैं सम्पूर्ण आपका अणुमात्र भी नहीं हूँ। आप ही सम्पूर्ण सृष्टियों के सृष्टा हैं। आप ही उनके पालक एवं संहारक हैं। हे नारायण ! आपके इस विराट स्वरूप में, मैं स्वयं को समाया देखता हूँ। सम्पूर्ण सृष्टियों को आप ही में समाया देखता हूँ। हे 'कृष्णाः' हे अग्ने ! मुझे सामग्री रूप स्वीकार करें। मुझको, पुजारी रूप यज्ञ का फल प्रदान करें; यज्ञ के, परंब्रह्म के रहस्य प्रकट करके ! मैं शरणागत हूँ !

रोम-रोम पुलकायमान है ! रोम-रोम में तेज की ज्वाला अनुभूत होने लगती है। जिस बिन्दु को मस्तक पर प्रकट किया था, वही अब विस्तार को प्राप्त हो चुका है। उस तेज के चक्र के मध्य में मैं स्थापित हो चुका हूँ। मेरा अस्तित्व अब बिन्दु मात्र है। उस तेजचक्र के मध्य में मैं बैठा निरन्तर जप, स्तुति करता, रोम-रोम का आवाहन करता, तीव्रतम ज्वालाओं में परिवर्तित होता जा रहा हूँ ! तेज ही तेज है ! इस प्रकार शरीर के रोम-रोम में मन्त्र का वास करके सनातन गुरुओं का विनियोग करें। ध्यान द्वारा अहं ब्रह्मास्मि प्राप्त उन ब्रह्मर्षियों का आवाहन करें। तदनन्तर समाधिस्थ स्थिति को प्राप्त हुआ स्वयं को आत्मगुरू बृहस्पति को अर्पित कर दें। आगे का मार्ग क्या है ? सो इन स्थूल मरणशील इन्द्रियों

द्वारा ग्राह्य नहीं है। उस मार्ग का ज्ञान उसे दिव्य मार्ग से समाधिस्थ हो आत्मगुरू बृहस्पति तथा अन्य अमर ब्रह्मर्षियों से लेना पड़ेगा। उस ज्ञान को कोई तपस्वी स्थूल मार्गों से नहीं दे सकता है। इसलिये आप सब महात्माओं से प्रार्थना है कि इस मार्ग पर केवल इतना ही चलकर देख लें। मेरे कथन में सच्चाई जंचे, तो डटे रहें और सनातन-पद को प्राप्त होने का प्रयास करें, अन्यथा इसे त्याग दें। मैं आपका गुरू नहीं हूँ, इसलिये आपको गुरुद्रोह का पाप भी नहीं लगेगा।

ध्यान लगाने के सुन्दर-सुन्दर वर्णन विद्वानों ने किये हैं। नाना प्रकार के योगिक व्यायाम भी बताये हैं। मैं आपको 'फिज़ियोलाजी', 'एनाटमी' पढ़ाकर कोई विचित्रता दर्शाने में विश्वास नही रखता हूँ। मेरी मान्यता में यह क्रियायें, यम-नियम, आहार तब तक व्यर्थ हैं जब तक मैं स्वयं को नहीं जानता हूँ। यदि मैं चिन्तित, दुखी, वासनामय तथा अन्य लिप्साओं में लिप्त हूँ तो व्यायाम, शरीर में अधिक गर्मी उत्पन्न कर कोई भी भयंकर रोग लगा देगा। इसलिये कोई भी क्रिया अथवा प्रयोग करने से पूर्व श्रीमद्‌भगवत्‌गीता के रहस्य को पूर्णरूपेण जान लेना चाहिये तथा प्रथम निश्चिन्त और कर्मफल की वासनाओं से मुक्त होने का निरन्तर प्रयास करते हुये, केवल ध्यान ही करना चाहिये। ध्यान द्वारा स्वयं में तेज को स्थापित करना, उपरान्त तेज का चारों ओर विस्तार करना और स्वयं तेज का स्रोत हो, तेज में ही स्थापित होना; सम्पूर्ण शरीर का ध्यान द्वारा प्रज्ज्वलित हो, यज्ञ को प्रस्तुत होना इत्यादि। इन क्रियाओं में, शरीर को सहज भाव में ही रखते हुए, अर्थात् सीधे लेटकर अथवा सीधे बैठकर, निर्विघ्नरूप से ध्यान करना चाहिये। कोई ऐसा आसन नहीं लगाना चाहिये जिससे शरीर को कष्ट हो और ध्यान न लग सके। भोजन हल्का लेना चाहिये जिससे शरीर में आलस्य न हो।

नौली, नेती, बस्ती आदि क्रियाओं को तब तक नहीं करना चाहिये जब तक ध्यान कुछ देर तक स्थिर न होने लगे। जल आदि क्रियाओं से जलोदर, फेफड़ों में जल रोग तथा मस्तिष्क में विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

ऐसी किसी क्रिया से पूर्व शरीर पर ध्यान का नियन्त्रण अवश्य कर लेना चाहिये। ध्यान उठते-बैठते, चलते-फिरते, लेटे किसी भी सहज स्थिति में किया जा सकता है।

मेरे इस कथन का भक्तगण यह अभिप्राय कदापि न लें कि मैं इन सबका विरोधी हूँ। ऐसा सोचना सर्वथा असत्य होगा। यह क्रिया बचपन से ही यदि बालक ने ग्रहण कर ली है तथा नियमपूर्वक इन्हें कर रहा है तब तो ठीक है। अन्यथा जब मध्य आयु में आया शरीर सकाम कर्म एवं कर्मफल की वासनाओं से दग्ध हो चुका है तथा अब भी हो रहा है—इन क्रियाओं को सहन नहीं कर पावेगा। इसके दुष्परिणाम ही अधिक होंगे। ऐसी स्थिति में मानसिक वृत्तियों का नियन्त्रण तथा ध्यान की एकाग्रता ही सर्वप्रथम आनी चाहिये। और जब आपका एक बार ध्यान आत्माहवन-कुण्ड में स्थापित हो गया और तीसरे यज्ञ से साक्षात्कार हो गया—फिर किसे सुधि है नौली-नेती-बस्ती आदि क्रियाओं की। जो तेज से आत्मा के, सर्वशुद्ध हो रहा है वह क्यों पड़ेगा इन 'फिज़ियोलाजी' 'एनाटमी', मूलाधार, सहस्त्रधार आदि के मानसिक व्यभिचारों में। वह तो बैठा है आत्मकुण्ड में तेज की पवित्र आत्म गंगा में नहा रहा है। मस्त झूमता डूबकियाँ लगा रहा है। किसे सुधि है मन्त्र-जप-ध्यान की। मस्त झूमता है और यज्ञ किये जा रहा है। आहुतियाँ दे रहा है—मान की, सम्मान की, ज्ञान की, अज्ञान की, शरीर की—सर्वस्व की ! सर्वस्व की !! हरि ॐ ! नारायण हरि !!

ऐसी स्थिति में जब स्थापित हो जाता है योगी, तो आत्मासारथि स्वयं उसका मार्ग दर्शक बन बैठता है। अपने आप उसके आसन लग जाते हैं। अपने आप श्वास नियन्त्रित हो उठती है। अनजाने में ही वह स्वयं को गुरू के समीप पाता है और उसके मार्ग पर चल देता है।

इसी योग-मार्ग को सनातन महाप्रभुओं ने सर्वत्र दर्शाया है—प्रत्येक दर्शन में ! व्रत में, तीर्थ में ! कोई भी पर्व सनातन का, रीता नहीं है इनसे।

देखिये दशहरा और दीपावली भी इसी योग-मार्ग के प्रेरक हैं—नवदुर्गा; नवरात्र का रहस्य बताता हूँ आपको ! दुर्गासप्तशती में दुर्गा के नौ रूप दिखाये गये हैं । प्रथम जानें हम कि दुर्गा क्या हैं ! दुर्गा दैवी हैं । दैवी अर्थात् आत्मा । इसलिये दुर्गा नाम पुनः आत्मा का ही हुआ । यहाँ आत्मा को स्त्री रूप में दर्शाया है, सनातन महात्माओं ने !

दुर्गा सप्तशती में दुर्गा जी कहती हैं कि सृष्टि के आदिकाल में ब्रह्मा विष्णु, महेश ने मिलकर मुझे बनाया । आगे चलकर दुर्गा भिन्न रूपों में इनका वरणकर उनकी पत्नी बनती हैं ब्रह्माणी, लक्ष्मी, पार्वती आदि । आगे चलकर कहती हैं कि मैंने ही इनकी, अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश की, सृष्टि की तथा आगे और चलें तो कहती हैं कि मैं आदिकुआंरी हूँ । इस पुस्तक को लेकर कुछ सनातन द्रोही व्यङ्ग भी करते हैं कि यह सब क्या है, जिसकी बेटी हैं उसी की पत्नी बन बैठती हैं फिर उसकी माँ होने का दावा करती हैं और फिर आदिकुआंरी बताती हैं स्वयं को ?

सृष्टि के आदिकाल में अ + उ + म जब जुड़े, तो मुझ ॐ रूपी आत्मा की सृष्टि हुई । इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों अक्षर जब जुड़े तो मैं प्रकट हुई ।

पुनः हम देखते हैं कि सृष्टिचक्र में पति एवं पत्नी दोनों में आत्मा है । इस प्रकार मैंने आत्मा होकर आत्मा का पति रूप में वरण भी किया । इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, महेश की पत्नी भी बनीं और ब्रह्माणी, दुर्गा, पार्वती, लक्ष्मी आदि नाम धराये ।

तदनन्तर जो सन्तानोत्पत्ति इस दाम्पत्य से हुई, उन बालकों में भी आत्मायें थीं । तो मैंने पुनः ब्रह्मा, विष्णु, महेश की सृष्टि भी की । इस प्रकार मैं आत्मा माता भी बनी । क्योंकि मैं आत्मा ही तो भस्मी को ग्रहण कर वनस्पति को जन्म देती हूँ; वृक्ष अथवा पौधे नहीं ! मैं आत्मा ही तो वनस्पति को ग्रहण कर रक्त-मांस आदि को जन्म देती हूँ तथा स्वयं उन्हें जोड़कर बालक का रूप बनाती हूँ; कोई शरीर रूपी माता बना सकती

नहीं। इसीलिये मैं आत्मा ही जगत-जननी हूँ ! आदि शक्ति हूँ ! इस सम्पूर्ण जगत का कारण हूँ।

मैं सम्पूर्ण जगत की जननी होते हुए भी आदिकुआंरी हूँ। क्यों? क्योंकि आत्माओं के सम्भोग नहीं होते हैं। वे रिश्ते तो शरीरों के हैं। आत्मा से आत्मा का सम्भोग होता नहीं है। आत्मा तो निर्लिप्त है। सबका सृष्टा होते हुए भी परे है। इस प्रकार दुर्गा सप्तशती एक ब्रह्माण्ड व्यापी सनातन दर्शन है।

यहाँ एक आश्चर्यजनक बात यह भी है कि ईसा और मूसा भी कुआंरी कन्याओं से ही उत्पन्न हुए हैं, यह बात कुछ ऐसी जान पड़ती है कि मानो प्राचीनतम दर्शन को स्पष्ट करने में ही ये काल्पनिक पात्र ढूंढ़ लिये गये हों। वहां 'एडम' और 'ईव' और यहाँ 'आदम' और 'हव्वा'; वहां सेव खा लिया, तो यहाँ गेहूँ खा लिये ! वहाँ भी भेंड़ चराने वाला, यहाँ भी वही ! कहीं ऐसा तो नहीं कि विनष्ट जाति ने उपरान्त महाभारत के (सदियों उपरान्त) जब पुनः स्वयं को संवारना चाहा हो तो प्राचीन विश्व दर्शन इस प्रकार के पात्रों के कथा रूप में पात्रों का चयन कर (यहां की भांति ही) प्रकट किया गया हो। यही कथाऐं कालान्तर में इतिहासकारों की अद्वितीय विद्वता के कारण रूप ही बदल बैठी हों ?

इतिहासकारों की अद्वितीय विद्धता का एक उदाहरण देता हूँ। आपने कुतुबमीनार दिल्ली का देखा होगा। इसका असली नाम मेरू-स्तम्भ है तथा विक्रमादित्य ने वराहमिहिर की प्रेरणा से इसे बनवाया था। यह स्तम्भ सूर्य के राशि-संक्रमण (संक्रान्ति आदि) का ज्ञान करने के लिये बनवाया गया था। इसके चिह्न (कीलें) आज भी ज्यों की त्यों हैं।

भारत पर जब बाहरी आक्रमण हुए और दिल्ली का अधिपत्य यवनों को जाता रहा तो उन्होंने जानना चाहा कि यह क्या बला है ? ज्योतिष का ज्ञान उन सेनानियों को था नहीं। उनके पास तो कुतुबनुमा (कम्पास) होते थे। उन्होंने इसका नाम 'कुतुबनुमा मीनार' रखा। नुमा

अधिक एवं अनावश्यक होने से स्वतः उड़ गया और इसका नाम कुतुबमीनार पड़ गया। आधुनिक अतिविद्वता प्राप्त, विलक्षण बुद्धि इतिहासकारों ने, जो पन्ने पलटे इतिहास के, तो मिल गया एक बादशाह कुतुबुद्दीन ऐबक ! ऐलान कर दिया कि यह मीनार उसने बनवायी है। बलिहारी है इनकी !

अब हम चलें पुनः अपने विषय पर कि नवरात्र क्यों और कैसे मनाते हैं हमलोग। दशमी को रावण, दशानन क्यों जलाया जाता है ?

मेरी प्रतिज्ञा एवं प्रार्थनाओं द्वारा मेरी आत्मा दुर्गा प्रकट होती है एवं प्रतिदिन एक-एक इन्द्रिय की लिप्साओं का भक्षण करती है। नवरात्रों में प्रतिदिन मैं लिप्सारूपी, मन रावण की एक-एक इन्द्रिय की सम्पूर्ण लिप्साओं को भस्म करता हूँ, आत्मा रूपी दुर्गा यज्ञकुण्ड में। नवें दिवस में नौ इन्द्रियों की लिप्साओं को नष्टकर; विजयादशमी को दशानन रावणरूपी मन, आख़िरी इन्द्रिय की लिप्साओं को भी नष्ट करता हुआ, मायापति रावण को जलाकर नष्ट कर देता हूँ और दसों इन्द्रियों को जीतकर दशरथ हो, आत्मा राम का मार्गी बनता हूँ। मेरी तपस्या का मूल जो है; जीवन का लक्ष्य जो है; वही पर्व है दशहरा—दशों का हरण करना। दसों पर विजय पाना—विजयादशमी। जब तक रावणी मायायें नष्ट नहीं होंगी यज्ञ होगा कैसे ? मैं जो बीजता हूँ यह देखने के लिये ही कि मैं किस हद तक रावणी मायाओं को नष्ट कर सका। फूटते अंकुर और उठते पौधे मुझे बताते हैं; मायामुक्त-क्षेत्र की सृष्टि कर; यज्ञ निरन्तर है। माया महासमर में बीजों से पौधों का निकलना ही तो रावण की हार है। यज्ञेश्वर राम की जीत है। मायाओं को निरस्त्र किया तभी तो क्षीरसागर की सृष्टि हुई, यज्ञ हो सका। बीज मायाओं द्वारा सड़े नहीं। नष्ट नहीं हुये। आत्मा राम की जीत हुई और बीजों से अंकुर फूट चले। विजय पताकायें प्रभु राम की जीत की, फहराने लगीं। दशानन रावण को मुंह की खानी पड़ी। दशहरा मनाओ रे मित्रो ! नाचो-गाओ रे मित्रो ! पटाखे और फुलझड़ियां; उन्मुक्त मतवाले भक्तों की टोलियाँ ! झूमो, गाओ गीत राम के ! लीला गाओ रे मित्रो ! विजया-

दशमी है आज ! जीते हैं प्रभु राम ! आत्मा की जीत हुई है ! आत्म-द्रोही होगा, जो अब भूल गया राम को। प्रतिज्ञा-द्रोही होगा, जो अब बहक गया लिप्साओं में। बता दो उन आत्मद्रोहियों को कि जूते तुमने अपने मुंह पर मारे हैं। राम तो भीतर बैठे हैं तुम्हारे ! जुलूस में मूर्तियों को जूते मारने वालों! बैठा जो भीतर है मारते क्यों नहीं उसको ? इन जूतों को भीतर ले जाओ अपने और करतब दिखाओ रे रावणों ! हरि ॐ ! नारायण हरि !

तब आती है कार्तिक अमावस्या की गहन अन्धकारमयी रात्रि ! अन्धकार ! घोर अन्धकार !! वर्ष की सर्वाधिक गहन कालरात्रि ! मैं मनाता हूँ दीपावली ! कालिमा ढूंढ़ती है अपने प्यारे रावण को। डोलती पुकारती है हर डगर, हर गली। मैदानों, पहाड़ों, जंगलों में भटकती फिरती है। पुकारती है कालिमा, अपने कलुषित बेटे रावण को। ढूंढ़ती आती जब मेरी गली—तो ठिठक कर रह जाती है। मुस्करा रहे हैं दीपक ! मारा गया है उसका रावण ! एक राख का ढेर बना है। खिलखिला रही हैं फुलझड़ियां। मायापति की देह लोट रही है नन्हें बालकों के पैरों में राख बनी ! भयभीत है कालरात्रि ! हैरान है ! परेशान है ! जहाँ-जहाँ दृष्टि जाती है वहाँ-वहाँ मुस्कराता तेजस्वी राम है ! सहस्त्र-सहस्त्र राम मुस्करा रहे हैं, हर गली स्तब्ध है कालिमा ! दशों इन्द्रियों की लिप्साओं का हरणकर प्रत्येक बुद्धि आत्मसंगी हो राम बन बैठा है ! उसकी प्रतिज्ञा है कि अब लिप्साओं की कलुषित रात्रि न होने देगा। अब आत्म-ज्योति जलेगी ! भीतर ! बाहर !! सर्वत्र !! अरे ! देखो रे ! ढूंढ़ो !! कोई कोना न रह जावे अंधियारा !! आत्मा की ज्योति जलाओ रे भक्तवृन्द ! आत्मा राम रूपी यज्ञकुण्ड प्रज्ज्वलित करो भयंकर ! तेज ही तेज हो ! तेज ही तेज हो !! राम की जय हो ! जय हो भक्त तुम्हारी !! यही है तेरा दशहरा; यही तेरी दीपावली है ! झूम-झूमकर मनाओ ! मस्त झूमो ! महिमा प्रभुराम की गाओ ! पाओ जहाँ मूरत—चरण में लिपट उनके; चरण बन जाओ ! छूटे न संग मेरे अवधेश का ! लिपटें न कलुषित लिप्सायें अंधियारी ! कह दो हर सांस से कि

राम का नाम सुनाये ! कह दो हर धड़कन से कि राम ही राम गाये !! हरि ॐ ! नारायण हरि !!

भक्तवृन्द ! देखा आप महात्माओं ने कि प्रत्येक पर्व भी उसी अहं ब्रह्मास्मि मार्ग का प्रतीक है ! राम तक पहुंचने के लिये न तो तेरा मार्ग चलेगा; न मेरा मार्ग चलेगा ! अरे ! राम तक पहुंचने के लिये राम के ही मार्ग तू चलेगा ! वह मार्ग आत्ममार्ग है ! आत्मा ही प्रभु राम का प्रतीक है ! न मेरे मार्ग चल; न उसके मार्ग चल ! मरणशील इन्द्रियों के मार्ग, अमर हो सकते नहीं हैं ! भीतर चल और पूछ आत्मा अमर से; कर स्तुति उसकी ! याचना कर उससे ! मार्ग-दर्शक बने आत्मा तेरी ! आत्म-मार्गी होकर प्राप्त हो अपनी आत्मा को जो राम का प्रतीक है ! कृष्ण का प्रतीक है ! नवदुर्गा का प्रतीक है ! ब्रह्मा, विष्णु, महेश का प्रतीक है ! एक मात्र मार्ग है ! एक मात्र माध्यम है, जिससे तू जुड़ा है उन लोकों से जो दृश्य नहीं हैं। जुड़ा है उन देवताओं से, जो इन इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य नहीं हैं। जुड़ा है उन अमर-गुरुओं से, जो मात्र ज्ञानी हैं ! जुड़ा है उनसे जो सत्यरूप स्वजन हैं तेरे ! इसी आत्मा माध्यम से ही तू उनसे बोल सकता है। उनको सुन सकता है। उन तक पहुंच सकता है। जो वे हैं सो तू भी हो सकता है ! राम मार्गी हो ! कृष्ण मार्गी हो ! रे आत्म मार्गी हो !! तज मार्ग दशानन !

एक ही मार्ग है सनातन मार्ग ! अमर मार्ग ! दशरथ मार्ग !! अन्तर्मुखी होना। इस बुद्धि का आत्मा से योग कर अद्वैत हो जाना तब इस अद्वैत का परमात्मा से योग—अद्वैत हो जाना। स्वयं यज्ञेश्वर हो, ब्रह्मर्षि हो, पृथ्वी-माया के गर्भ से उद्धार को प्राप्त हो जन्म लेना। स्वप्न से जागृति में आना।

नाना प्रकार की योग की व्याख्यायें और नाना सिद्धान्त ही नाना सम्प्रदायों के सृजक बन बैठे। योग अपने आत्मिक मार्ग से हटकर, पूर्ण भौतिक और दशरथ से, दशानन मार्गी हो गया। योग भी मानसिक भटकाव और इन्द्रजाल में फंस, मानसिक व्यभिचार और मानसिक सम्भोग

का कारण बन बैठा। यहाँ तक कि पूर्ण बहिर्मुखी वीभत्स रावण मार्ग भी योग कहाने लगा। एक निकृष्ट कोटि के व्यभिचार को भी एक योग में गिना जाने लगा और एक नया सम्प्रदाय उपजने लगा है—सम्भोग से समाधि। एक नग्न सम्प्रदाय के गुरू उसके प्रेरक बने हैं। योग के नाम नग्नता का सिद्धान्तवाद उनके ही अनुयायियों को, जितेन्द्रियों से अति निकृष्ट कोटि का सम्भोगी बना बैठा। वेश्यावृत्ति और व्यभिचार, अप्राकृतिक सम्भोग योग की श्रेणी में आ गये। सनातन से भटकता सम्प्रदाय अब कहाँ तक भटक चला है, आप लोग स्वयं देख रहे हैं। स्वामी, योगी एवं सन्यासी लोग अब सम्भोग द्वारा समाधि लगाया करेंगे। भारत की पावन भूमि पर अब आपको एक नयी रामायण सुनने को मिलेगी। आने वाले कल की रामायण आज सुना दूं आपको !

रावण ने देखा कि राम को युद्ध में लड़कर हराना असम्भव है; तो फेंक दिये धनुषबाण ! बहुरुपिया तो था ही। बहुरुपिया बन सीता का हरण किया था उसने। फिर एक स्वांग भरा योगी का और राम की नगरी में कुत्सित व्यभिचारी बना, अब राम की सेनाओं को दुराचारी, व्यभिचारी, कामी बना नष्ट कर देना चाहता है—फिर शायद जीत सके राम को। दुस्साहस उसका इतना बढ़ गया कि महात्मा गांधी को भी गाली देने लगा। वस्तुतः उनके सहारे सीढ़ी लगा अब सम्भोगी, कुत्सित मनोवृत्ति वाले मनुष्यों का राष्ट्रपिता बनना चाहता है ? यह सब आप महाप्रभुओं से इसलिये निवेदन कर रहा हूँ कि महाप्रभु भटकें नही। वह योग-मार्ग नहीं है। दशानन मार्ग है। अन्यथा मुझे उन योगी महापुरुषों से कोई वैमनस्य नहीं है। उनके भीतर भी मेरे प्रभु आत्मा राम हैं। मैं उनका भी उपासक, भक्त हूँ। उनके भीतर स्थापित आत्मा राम उन्हें सद्बुद्धि दें !

एक सनातन योगी भी एक सम्प्रदायिक गुरू के चक्कर में पड़ गये थे। यह कथा भी आपको योग का मार्ग स्पष्ट करने हेतु ही सुना रहा हूँ, अन्यथा न जानियेगा।

सनातन धर्म प्रचारक एक योगी को; नग्न सम्प्रदाय के वस्त्र-धारी भक्त; अनजाने में ही बहेकाकर अपने गुरू के पास ले गये। उनके गुरू ने (जो कि दिशाओं को ही वस्त्र मानते हैं) उन्हें कहा था कि सनातन को योग सिखायेंगे !

जब सनातन योगी कक्ष में प्रविष्ट हुए तो सामने तख्त पर एक नग्न महात्मा को बैठे पाया। नीचे दरी पर स्त्रियां और पुरुष बैठे उनके उपदेश का ज्ञान लाभ कर रहे थे। मुनि ने सनातन योगी को इशारे से बुलाकर अपने पास बिठा लिया। योगी ने भक्तिपूर्वक मुनि को प्रणाम किया एवं उनके द्वारा इंगित स्थान पर बैठ गये। मुनि ने उनसे साधारण वार्तालाप शुरू किया। योगी श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक मुनि जी से वार्ता करने लगे। वार्ता का रुख घूमने लगा और मुनि लक्ष्य की ओर आने लगे। बोले, "आप योगी की क्या व्याख्या करते हैं ? आप मानते हैं न, जो निश्चिन्त नहीं वह योगी नहीं ? क्योंकि योगी तो वही है जो निश्चिन्त है। निश्चिन्त हुये बिना अन्तर्मुखी होना असम्भव है। जो अन्तर्मुखी नहीं वह योगी कैसा ?"

"सत्य है !" सनातन योगी ने स्वीकार किया।

"जो जितेन्द्रिय है वही अन्तर्मुखी है। जो इन्द्रियों की लिप्साओं से मुक्त है वही जितेन्द्रिय है। जितेन्द्रिय को योग में स्थापित होने के लिये पूर्णतः विरक्त एवं निश्चिन्त रहना पड़ेगा। यदि बाहर की चिन्ता किसी प्रकार की भी रह गई तो वह अन्तर में स्थापित ही न हो पावेगा। ठीक है न ?"

"निस्सन्देह ! महामुनि !!"

"तब जो वस्त्र धारण किये है उसे वस्त्रों के फटने की चिन्ता है। उनके मैले होने और धुलने की चिन्ता है। नये कपड़ों के आने और सिलने की चिन्ता है। इन चिन्ताओं से घिरा व्यक्ति निश्चिन्त कहां ? जो निश्चिन्त नहीं वह योगी कैसा ?"

भक्तिपूर्वक उस सनातन भक्त ने मुनि को इस प्रकार उत्तर दिया,—

"महामुने ! सर्वप्रथम तो यह, कि नंगा होना यदि योग है तो अवश्य कुत्ते, बिल्लियां, गधे, योगी हो मोक्ष प्राप्त कर जाते होंगे ? वे तो कभी वस्त्र धारण करते ही नहीं है !

दूसरा प्रश्न, जो इस दास के मन में है कि आप तो नंगे होकर मोक्ष को प्राप्त हो गये। परन्तु यह भक्त आपके जो मुझे अन्धेरे में रखकर यहां लाये हैं; यह नंगे क्यों नहीं हुए ? क्या इनको मोक्ष नहीं चाहिये ? इनकी धर्मपत्नी कब आपका अनुसरण कर रही है ? सो कृपापूर्वक बतायें।

तीसरा प्रश्न, मेरे मन में यह है कि वह धर्म कैसा जिसका आचरण ही न हुआ। वह दर्शन कैसा जिसका उनके अनुयायियों द्वारा धारण ही न हुआ ? आप कृपया बतायें कि आपके अनुयायी क्यों आपका अनुसरण नहीं करते हैं ? तथा जब तक इन भक्त महोदय के घर के सारे सदस्य नंगे न हो जायें, क्या मेरा धर्म परिवर्तन उचित है ?

चौथा प्रश्न, जो मेरे मन में उठ रहा है कि निश्चिन्त होने के लिये आप नंगे तो हो गये। परन्तु भोजन ग्रहण करना एवं मलमूत्र त्याग करना आपने अभी तक त्यागा नहीं। आप इनसे क्यों नहीं निश्चिन्त हुए ? क्या आप इनसे निश्चिन्त होने का मार्ग जानते हैं ?

पांचवी शंका, महाप्रभु, मेरे मन में यह है कि यह कपड़ा जो मेरे तन पर पड़ा है मैंने इसे कमाया नहीं। मैंने इसे सिलाया नहीं। समाज ने मुझसे कहा कि रे सनातन ! जब तक तू हमारे समाज में है, नग्नता का अशिष्ट एवं अभद्र प्रदर्शन मत कर ! हम तुझे ढके देते हैं। इनके फटने की चिन्ता, इनके सिलने की चिन्ता, इनके धुलने की चिन्ता हमको है। जब तू हमारे समाज से बाहर, जंगल में, जावेगा तो जैसा उचित समझना, करना। परन्तु हमारे समाज में रहकर हमारी मर्यादाओं का पालन कर (जो वे स्वयं कराते हैं) इसमें रोड़ा मत अटका। आत्माओं से अभिशप्त

होना, नंगे होकर उनकी घृणा का पात्र बनना, तुझे अनुचित है तथा पाप है। नंगा ही रहना है तो हमारे समाज से बाहर जा। मर्यादाहीन, निर्लज्ज तथा जन-जन की गाली का भागी मत बन !

ऐसी स्थिति में महामुने ! कृपया बतायें कि मुझे क्या करना उचित है ? क्या यह उचित होगा कि समाज द्वारा अर्जित, रक्षित एवं पुनः अर्जित किये इन वस्त्रों को फाड़कर फेंक दूं और कहूँ कि 'दिशा ही अम्बर है। क्या यह ढोंग नहीं होगा ? क्या यह योग न हो 'साइन बोर्ड-बाजी' नहीं होगी ? आप कृपया इस भक्त की शंका का समाधान करें। छठा प्रश्न, जोआप के चरग सेवक के मन में है, कि योग तो बुद्धि और आत्मा का मिलन है, इसमें नग्नता का साईन बोर्ड लगाना क्यों जरूरी है?

इस वार्ता का अन्त क्या हुआ होगा, इससे हमको क्या लेना। मेरे प्रभु जानें कि योग के नाम पर इस प्रकार के भ्रम से बचें। योग के रहस्य को जानें। सनातन से निकले ये सम्प्रदाय इन्हीं भ्रमों के कारण प्रकृति के धर्म, आत्मा के धर्म से हटकर नाना स्वान्तः सुखाय प्रतिपादित सिद्धान्तों वाले धर्म में फंसकर स्वयं तो भटक ही गये, आने वाली पीढ़ियों को भी भटकाने लगे हैं और अब भटकाव जितेन्द्रिय मार्ग से हटकर 'सम्भोग से समाधि' मार्ग पर आ गया है।

इसी प्रकार कुछ महाप्रभु शारीरिक व्यायाम को योग बताते हैं। यह भी सही नहीं है। यदि व्यायाम ही योग होता, तो सरकस के सारे नट मोक्ष पहुंच गये होते। एक इन्द्रिय मात्र का नियन्त्रण भी योग नहीं है। यदि ऐसा होता तो सर्वप्रथम हिजड़े ही मोक्ष के अधिकारी होते। इन भ्रमों से दूर रहना चाहिये।

श्रीमद्भगवत्गीता में भगवान कृष्ण स्वयं अपने अतिशय प्रिय सखा अर्जुन को योग-मार्ग का दर्शन कराते हैं, उसे ही योग-मार्ग जानें। स्वस्थ एवं स्वच्छ हो ऊँचे स्थान पर आसन पर बैठें। गर्दन सीधी रहे। पीठ एक-दम सीधी रहनी चाहिये, जिससे रीढ़ के भीतर का जल-प्रवाह मस्तिष्क में

निरन्तर रहे। रुके नहीं, अन्यथा मस्तिष्क को भारी नुकसान हो सकता है। नेत्रों को बन्द रखें। यदि ऐसा करने से ध्यान में चंचलता आती हो तो नेत्र को थोड़ा खुला रहने दें। ऐसी स्थिति में नेत्र पूरे खुले नहीं रहने चाहिये तथा निगाहें नीची रहनी चाहिये। पलकें अधिक से अधिक भाग को ढके रखें। ऐसा करना इसलिये आवश्यक है कि ध्यान में गया योगी, वाह्य जगत की सुधि नहीं रख पाता। अचानक तेज रोशनी का झम्माका अथवा कोई अन्य दुर्घटना नेत्रों को हानि पहुंचा सकती है। इनका मुंदा रहना ही सर्वोत्तम है। मुंदी आँखों में भी आलस्य न आवे तथा मन भटके नहीं, इसका निरन्तर प्रयास करते रहना चाहिये। प्रयास करते रहने से ध्यान का एकाग्र करना सर्वथा सम्भव है।

कुछ विद्वान त्राटक करने की बात करते हैं। उस मार्ग को हम सही नहीं पाते हैं; कारण योग में तो दसों इन्द्रियों को माध्यम से त्यागा जाना आधार भूत सिद्धान्त है। त्राटक द्वारा तो मैं पुनः बहिर्मुखी होता हूँ तथा नेत्रों को माध्यम बनाता हूँ। यह मार्ग तो योग के सर्वथा विपरीत हुआ। योग-मार्ग दसों इन्द्रियों के मार्ग से रहित है।

गायत्री मन्त्र ही मूल ध्यान का मन्त्र है। उपरोक्त प्रकार से बैठकर योगी प्राणायाम कुम्भक, रेचक, पूरक आदि करे जैसा कि सन्ध्याविधि में बताया गया। विनियोग तथा सर्वाङ्गन्यास करता हुआ ध्यान में स्थापित हो, मन्त्र का निरन्तर जप करता हुआ सूर्य जैसे तेजस्वी हवनकुण्ड आत्मा का ध्यान भृकुटी के मध्य में करे। ध्यान और जप दोनों ही साथ-साथ चलने से मन भटकता नहीं है; क्योंकि मन तीव्रतम घोड़ों से भी तीव्रतम है। इसलिये विचारोंका नियन्त्रण तभी सम्भव है जबकि ध्यान उस आत्मा हवनकुण्ड का करता हुआ, उसकी सुन्दरता एवं अलौकिकता का वर्णन करता रहे, जो कि गायत्री मन्त्र है। इस प्रकार ध्यान पर दोहरा अंकुश रहने से, तेज से भटका ध्यान गायत्री मन्त्र में मंडराने लगेगा तो दुबारा उसे तेजकुण्ड पर लाने में आसानी रहेगी। इस प्रकार दुहरे अंकुश में रखते हुए विचारों को नियन्त्रित करते रहने से ध्यान एकाग्र होने लगता

है। यहाँ एक बात विशेष ध्यान देने योग्य यह है कि मूल ध्यान ही है आत्मा हवनकुण्ड का। उपरान्त मन्त्र है उस महान पवित्र आत्मा की स्तुतिरूप।

इस स्थिति में चार से छह माह तक लग सकते हैं, जबकि इस दुहरे अंकुश में यह ध्यान कभी मन्त्र में, तो कभी तेजकुण्ड में विचरण करता रहे; फिर धीरे-धीरे यह ध्यान तेजकुण्ड में, भृकुटी में ही स्थिर हो जावेगा।

जब तक ध्यान पूर्ण रूप से स्थिर नहीं हो जाता, तब तक विनियोग एवं अंगन्यास, सर्वाङ्गन्यास, दिग्न्यास आदि कदापि नहीं त्यागने चाहिये। ये परमावश्यक हैं। इन क्रियाओं को नित्य श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक करना चाहिये, जिससे ये आदत सी बन जावे तथा इनको दुहराने में बुद्धि की आवश्यकता न पड़े, अर्थात् सुशुप्ता अवस्था में भी शरीर स्वतः इन क्रियाओं को करता रहे।

इनको योग में अत्यधिक महत्व दिया गया है तथा एक बात, योग-मार्ग में जाने वाले भक्तजन कदापि न भूलें कि योग में स्थापित हो जाने के उपरान्त तर्कबुद्धि निर्मूलप्राय हो जाती है तथा चिन्तन की दिशा में भी भयंकर विपरीतता आ जाती है। ऐसी स्थिति में यदि ये क्रियायें आदत रूप में शरीर ने ग्रहण नहीं की हैं, तो योगी आगे नहीं बढ़ पाता है और उसकी मृत्यु तक होना सम्भव हो जाती है। चूंकि ध्यान में मस्तिष्क स्तब्ध हो चुका है; योगी हवनकुण्ड के सामने बैठ गया है ; मस्तिष्क अब शरीर को प्रेरणा देने में समर्थ नहीं है। अब यज्ञ का अगला चरण किस प्रकार आरम्भ हो ? बुद्धि तो स्थिर हो यज्ञकुण्ड के सम्मुख है, उसे अब सुधि ही कहां है ? ऐसी स्थिति में यदि शरीर ने विनियोग, न्यास आदि क्रियाओं को अर्ध-चेतन में भी धारण कर रखा है तो यज्ञ स्वतः शुरू हो जावेगा। आदत के अनुरूप अब योगी ध्यान-मार्ग में स्वतः विनियोग द्वारा सनातन ऋषियों का अनजाने ही आवाहन कर उनका आशीर्वाद ग्रहण कर सकेगा तथा योग की अगली स्थिति का ज्ञान इन आत्मगुरुओं

से ग्रहण कर सकेगा। अंगन्यास आदि को आदत रूप ध्यान में; ध्यान द्वारा (अंगों को प्रयोग में न लाते हुए) स्वतः अनजाने में ही करते हुए यज्ञ को आरम्भ कर देगा और फलस्वरूप बुद्धिरूपी घट को यज्ञ के अमर ज्ञान से भर सकेगा। इसलिये विनियोग एवं सारे न्यास परमावश्यक हैं।

मित्रो ! याद रखो कि भक्ति एवं श्रद्धारहित ज्ञान तथा किसी विषय का अल्पज्ञान ही ढोंग व पाखण्ड है। विषय, न ढोंग है; न पाखण्ड है। तर्क द्वारा जग को जानने की चेष्टा वाला बकवादी स्वयं ही ढोंगी एवं पाखण्डी होता हुआ सर्वत्र ढोंग व पाखण्ड देखता फिरता है। जिस प्रकार कस्तूरी नाभि में होने से मृग उसे बन-बन ढूंढ़ता है; उसी प्रकार ढोंग, पाखण्ड नाभि में मस्तिष्क की, स्थापित होने से प्रत्येक कार्य में उसे ढोंग एवं पाखण्ड दिखने लगता है और वह स्वयं में एक महाढोंगी बन, अपने श्रद्धा-भक्ति रहित, तर्कवादी एवं बकवादी ज्ञान से, भोली, अपढ़, श्रद्धावान जनता को भी भटकाकर नरकगामी बना देता है। ऐसे विद्वानों एवं उनके समाज से सदा दूर रहें सनातनजन ! संगदोष अति भारी ! संग के दोष के कारण दानवीर कर्ण का मृत शरीर घोड़ों द्वारा कुचला जाता है। द्रोणाचार्य जैसा महातपस्वी-तेजस्वी महात्मा संगदोष के कारण अपना सिर कटवाता है और घोड़ों की ठोकरों पर महाभारत में नाचता फिरता है, कटा सिर उसका। संगदोष से सावधान रहें। पाखण्डी को सदा पाखण्ड मिलेगा; भक्त-श्रद्धावान को सर्वत्र भगवान मिलेगा।

द्रोणाचार्य ने दुर्योधन से कहा कि एक ईमानदार दोषरहित आदमी सारे जनपद से ढूंढ़कर ले आओ ! सारे दिन भटका दुर्योधन; न मिला एक भी ईमानदार व्यक्ति ! प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ दोष दिखा उसे। खाली हाथ लौट आया। गुरू ने युधिष्ठर को भेजा कि एक पूर्ण दोषी, पापमार्गी को ढूंढ़कर ले आओ। युधिष्ठर भी खाली हाथ लौटा ! उसे एक भी पूर्ण दोषी व्यक्ति न मिला; जबकि दुर्योधन के लिये सारा जनपद दोषी है।

इसलिये हे मित्र महान ! तर्कवाद को त्यागकर सनातन ऋषि-

महात्माओं द्वारा दिखाये मार्ग का अनुसरण करो। रहस्य स्वतः खुलने लगेंगे। तर्क से सिद्धकर त्याग दिया जिसे, वही मार्ग में सत्य सिद्ध हो और तुम्हारा एक जन्म नष्ट हो जावे—ऐसे महापाप से दूर रहो।

इस प्रकार सारे न्यास एवं विनियोग करते हुये ध्यान और जप को, दोनों सशक्त अंकुशों द्वारा मन को निरन्तर साधना पड़ता है। इसी साधने को भक्तिमार्ग एवं योगमार्ग में 'साधना' की संज्ञा दी गई है। 'साधना' 'जप' 'तप' क्या है ? सो मेरे भक्तवृन्द के सम्मुख स्पष्ट हो गया होगा। 'ध्यान' और 'जप' के द्वारा मन को साधने का नाम ही 'साधना' है। साधिये इस मन इन्द्र को कि दशानन से बने दशरथ ! लिप्साओं के संगदोष से छूटता हुआ, सम्पूर्ण इन्द्रियों के कर्म की बहिर्मुखी दिशा को अन्तर्मुखी करता हुआ, आत्ममार्गी हो, लोक-लोकान्तरों से नाना-सनातन ऋषियों से, सम्बन्ध स्थापित कर, उनका ज्ञान ले सके; उनका सामीप्य ग्रहण कर सके तथा इस धरा पर स्वर्ग का सुख प्रतिक्षण भोगता हुआ, मोक्ष को प्राप्त हो सके।

धीरे-धीरे ध्यान हवनकुण्ड में स्थापित होने लगता है। ध्यान की एकाग्रता के कारण जप की भी सुधि नहीं रहती है। पता ही नहीं जप चल रहा है अथवा नहीं। ऐसी स्थिति में जानने की चेष्टा नहीं करनी चाहिये। ऐसा करना मार्ग का विपरीत होगा। मूल ध्यान है, जप नहीं। जप तो सीढ़ी है ध्यान में स्थापित होने की। ध्यान को स्थिर करते रहना चाहिये। जप क्योंकि अर्ध-चेतन में गढ़ चुका है तथा आदत बन गया है, तो स्वतः चलता रहेगा। इसके लिये अब मस्तिष्क को चिन्ता नहीं करनी होगी; न अब चिन्ता करनी ही चाहिये।

यहाँ एक सावधानी भी विशेष है। इस मार्ग में कदापि-कदापि जल्दबाजी और जबर्दस्ती से काम नहीं लेना चाहिये। इसके परिणाम अति भयंकर हो सकते हैं। बहुत धीरे-धीरे चलना चाहिये इस मार्ग पर।

मस्तिष्क में, ध्यान से, आरम्भ में काफी तनाव आता है। स्नायु एवं केन्द्र 'वाल्व' सम्पूर्ण, जागृत हो क्रियाशील हो उठते हैं। एक साथ

सम्पूर्ण मस्तिष्क का क्रियाशील हो उठना घातक भी हो सकता है। यदि मेरूदण्ड से जल भी उसी प्रकार ऊपर तेजी से न पहुंच सका. तो मस्तिष्क के केन्द्रों के जल जाने की भी सम्भावना हो सकती है; जिससे मूर्छा, विक्षिप्तता, उन्माद, पागलपन अथवा सम्पूर्ण मस्तिष्क का ही जलकर बेकार हो जाना, जिससे मृत्यु तक सम्भव है। आपने बहुधा देखा होगा, कि इस मार्ग पर विकृत मस्तिष्क के व्यक्ति अक्सर देखने को मिल जाते हैं। ध्यान में एवं समाधि में रीढ़ तथा ग्रीवा का सीधा रहना परमावश्यक है। साथ ही अतिशीघ्रता नुकसानदेह ही अधिक होगी। धीरे-धीरे समाधि में प्रथम तेजकुण्ड में स्थापित हो निश्चल होना सीखिये। निश्चल रहने से मस्तिष्क जागृत होगा परन्तु क्रियात्मकता की प्रेरणा न रहने से जलने का भय कम रहेगा। मेरुदण्ड-जल ('Spinal fluid') जोमस्तिष्क को ठंडा रखता है, उसका मस्तिष्क की बढ़ती क्रियात्मकता के साथ बढ़ना आवश्यक है। जैसे कार के इन्जन में तेल (oil) न रहने से इन्जन के जल जाने का खतरा रहता है उसी प्रकार इस जल को वेदों में परमावश्यक बताया गया है। कार में पेट्रोल, शरीर में रक्त; कार में तेल, शरीर में मेरुदण्ड-जल परमावश्यक है।

इसलिये मस्तिष्क के प्रभावों को बदलते समय यह मत भूलिये कि यह सम्पूर्ण शरीर पर आश्रित है। मस्तिष्क के साथ-साथ शरीर में भी उसी अनुपात में परिवर्तन होना परमावश्यक है। शरीर में परिवर्तन बहुत धीमी गति से होता है। आप भी इस मार्ग पर धीमे चलिये।

मैं इस मार्ग पर ठीक चल रहा हूँ अथवा नहीं ? इस बात का निर्णय मैं किस प्रकार करूं ?

इसका उत्तर है कि यदि योग से मस्तिष्क में पीड़ा हो, नेत्रों में कष्ट हो अथवा शारीरिक रूप से कोई कष्ट हो तो रुक जाइये। सोचिये कि गल्ती कहां है ? खान-पान को संशोधित कीजिये। हल्का सात्विक भोजन लीज़िये। इन्द्रियों की लिप्साओं से मनसा, वाचा, कर्मणा दूर हट जाइये। कर्मफल की वासनाओं का उसी क्षण त्यागकर, निष्काम कर्मयोग के

मार्ग पर और अधिक कड़े हो जाइये तथा ध्यान और अधिक सहज एवं शान्त कर दीजिये। धीरे-धीरे सम्पूर्ण शरीर में परिवर्तन होने लगेगा तथा इच्छित जल मस्तिष्क को मिलने लगेगा। खतरा टल जावेगा। ध्यान-मार्ग पर धीरे-धीरे बढ़ते चलिये। स्वर्ग का आनन्द मिलने लगेगा। जीवन में रस आने लगेगा। आम के आम, गुठली के दाम ! मजा का मजा; अमर ज्ञान ऊपर से; साथ में लीजिये मोक्ष भी ! यही प्रत्येक मनुष्य का परम लक्ष्य है ! यह धरती निष्काम कर्मयोगी के लिये स्वर्ग के सदृश्य तपोभूमि है। सकाम कर्मयोगी के लिये रौरव नर्क है, यह जन्म ! कुम्भी पाक नर्क होगा, अगला जन्म ! भटका रहेगा इन्हीं नर्कों में युग-युगान्तर; जन्म; जन्मान्तर ! एक भूल और भटकते जन्म !

धीरे-धीरे ध्यान स्थिर होने लगता है। समाधि गहन होती जाती है। अब विनियोग एवं न्यास भी ध्यान द्वारा ही होने लगते हैं। अब इन क्रियाओं में पानी (जल) नहीं प्रयोग करता है योगी। आत्मगंगा रूपी तेजस्वी कुण्ड के जल से सर्वाङ्गन्यासादिक एवं विनियोग करता है। पवित्र तेज रूपी जल का विनियोग ग्रहण करने, सनातन ऋषियों को दर्शन देना पड़ता है। उनके दर्शन मात्र से उसका करोड़ों जन्मों का संचित ज्ञान उसे लौटने लगता है। आशीर्वाद प्राप्त करता हुआ, वह आत्म-मार्ग पर निरन्तर बढ़ता चलता है।

तेज रूपी जल से जब रोम-रोम का न्यास करता है तो प्रत्येक कोश-कोश तेजस्वी अमरता को प्राप्त हो, तेज में परिवर्तित हो, क्षीरसागर भजने लगता है। यज्ञ आरम्भ हो जाता है। योगी शरीर रूपी हवनसामग्री को यज्ञकर क्षीरसागर भेजने लगता है, उसका वजन घटने लगता है। तेज एवं अमरज्ञान रूपी अमरजल, बुद्धि रूपी घट में भरने लगता है। यहीं पर अधिकतर योगी पूर्णरूपेण निष्काम कर्मयोगी न होने से भटक जाते हैं। विक्षिप्त अथवा अन्य किसी प्रकार के विकार से ग्रसित हो जाते हैं। यहां पर योगी को चाहिये कि स्वयं में अन्धभक्ति एवं श्रद्धा को कूट-कूट कर भर लें और पूरी तरह से उसका शरणागत हो जावे। सम्पूर्ण इन्द्रियों की लिप्साओं से मुक्त हो। कर्मफल की वासनाओं से पूर्णरूपेण त्यक्त हो।

क्षणमात्र भी चिन्ता, लिप्सा, क्रोध, भय, आतंक, आशंका, ईर्ष्या आदि-आदि को त्याग दे। सम्पूर्ण इन्द्रियों के कर्म को अन्तर्मुखी कर दे। पूर्ण-रूपेण आत्मसंगी हो जावे। मस्त, उन्मुक्त, अल्हड़ झूमता फिरे। न सोचे कुछ! सोचे नहीं लक्ष्य को भी! अब तो सोचना छोड़कर; सोचने के स्थान पर ध्यान करे! जो कहलावे कन्हाई; कह दे! जो करावे मधु-सूदन, कर दे! तू तो मस्त ध्यान लगाये चल, उस तेजस्वी हवनकुण्ड में! दिये जा आहुतियां अपनी! अरे कत्ल करने में मजा क्या है; मज़ा तो कत्ल होने में है! बलि चढ़ाने में पुण्य नहीं है कुछ; रे भक्त! पुण्य स्वयं बलि चढ़ जाने में है। सुन! यह बलि तलवार की धार से नहीं चढ़ेगी! यह बलि चढ़ेगी आत्मा हवनकुण्ड में यज्ञ सामग्री बनकर।

इस स्थिति में आये योगी का शरीर घटता है। योग से पूर्व और योग के उपरान्त के वजन में निश्चित रूप से अन्तर आता है। २५० ग्राम से २ किलोग्राम प्रतिदिन वजन घटना इस मार्ग में साधारण बात है, अर्थात् इतनी सामग्री यज्ञ हो क्षीरसागर पहुंच जाती है, योग द्वारा। इस स्थिति को पहुंचा योगी धीरे-धीरे यज्ञ के रहस्यों में पारंगत होने लगता है। परमब्रह्म के रहस्य स्पष्ट होने लगते हैं, यज्ञ के महापुण्य क्षीरसागर में स्थिर होने लगते हैं। महाविष्णु का अतिशय प्रिय हो उठता है योगी!

जब योग में सामग्री का यज्ञ तीव्र हो उठता है अर्थात् वजन अधिक तेजी से घटने लगता है तो योगी को अधिक मायाक्षेव (higher gravity area) से कम मायाक्षेत्र (lower gravity area) में जाना अव-श्यम्भावी हो जाता है। कारण? अधिक मायाक्षेत्र में रहने से अचानक वजन घटने से, शरीर को माया निरस्त्रीकरण (gravity nutralisation) में भारी कष्ट उठाना पड़ता है; इसलिये भारी नुकसान अथवा यज्ञ की परम स्थिति में बाधा का कारण यह माया बन बैठती है। अधिक मायाक्षेत्र में शरीर, माया-निरस्त्रीकरण में अधिक संघर्षरत रहता है तथा कम माया क्षेत्र में, कम संघर्ष होने से काफी शान्त रहता है। इससे ध्यान समाधि यज्ञ में काफी सहजता रहती है। ऋषि-मुनियों का ऊंचे पर्वत शिखरों पर

जाकर स्थापित होने का यही मूल कारण है। केवल एकान्त भावना से योगीजन, वहां कदापि नहीं जाते हैं। योग में जब योगी स्थापित होता है, तो आत्माकुण्ड की तीव्रता के कारण माया दूर-दूर तक निरस्त्र होती रहती है, जिससे योग निर्विघ्न चलता है। परन्तु समाधि से बाहर आते ही माया का निरस्त्रीकरण का क्षेत्र घटते-घटते शरीर पर पुनः आ जाता है। शरीर अब दो किलो घट चुका है तो माया-निरस्त्रीकरण में कष्ट थोड़ा हो सकता है। साथ ही योग से समाधि में योगी जल्दी स्थापित नहीं हो पाता है ; माया के प्रभाव की अधिकता के कारण। योग से चैतन्य होने में भी योगी को धीरे-धीरे बाहर आना पड़ता है। यदि एक झटके से (किसी कारणवश) समाधि टूट जाये तो अचानक माया का भार, झटके से बढ़ने से, योगी की मृत्यु अथवा अन्य कोई विकार शरीर में उत्पन्न हो सकता है। इसलिये योगी को एकान्त एवं कम मायाक्षेत्र दोनों ही परमावश्यक हैं।

योग में स्थापित योगी का शरीर ऊपर को उठा रहता है। गहन समाधि में शरीर पृथ्वी तल भी छोड़ सकता है। माया के प्रभाव, योग द्वारा, घटने से ऐसा हो जाना कोई विशेष घटना नहीं है। ऐसी स्थिति में यदि समाधि किसी कारणवश भंग हो जाये, तो शरीर को अति भयंकर आघात पहुंचता है। मृत्यु हो जाना इसमें साधारण बात है। इसीलिये भी योगी का एकान्त एवं कम मायाक्षेत्र (पहाड़ों पर) जाना जरूरी हो उठता है। पुनः अन्तिम यज्ञ भी शरीर का इस धरा पर न होकर वायुमण्डल में ऊपर उठते हुये ही होता है। इसलिये भी योगी को ऊपर जाना पड़ता है। यह सब योग की विवशतायें हैं, जिससे योगी को ऊपर से ऊपर बढ़ते जाना पड़ता है। फिर जब जाना ऊपर (क्षीरसागर) ही है, तो ऊपर (पहाड़ों पर) बढ़ते चलना ही तो मार्ग है।

जैसा कि मैं आप महात्माओं से इससे पूर्व भी प्रार्थना कर चुका हूँ कि सनातन के दो स्पष्ट विभाग हैं। राजर्तन्त्र, जिसके गुरु शुक्राचार्य हैं, जिसका कृष्ण, पितृयान अर्थात् चितामार्ग है; जिसमें पुनर्जन्म अवश्य-

म्भावी है। सकाम मार्ग सनातन है। दूसरा मार्ग, तपमार्ग जिसके गुरु देवगुरु (आत्मगुरु) वृहस्पति हैं, शुक्ल अर्थात् देवयान अर्थात् आत्माहवन-कुण्ड द्वारा मोक्ष का मार्ग है। ये दोनों मार्ग सनातन हैं। ये दोनों ही महान हैं।

सनातन-राजतन्त्र में महामण्डलेश्वर, गुरुजन आदि राज-राजेश्वर महान हैं। समाज को सांसारिक नियम-संयम, सनातन धर्म के भक्त बनाना; जन-जन की सनातन में आस्था बनाये रखना; शादी, मुण्डन, रहन-सहन आदि का नियम मनवाना तथा अन्तर्मुखी कर इन्द्रियों की लिप्साओंको त्यागकर उन्हें तपमार्गी बनाना आदि महान एवं पवित्र कर्म हैं। मन्दिरों की रक्षा; मन्दिरों का निर्माण, धर्म की रक्षा आदि महान कार्य सनातन राज-राजेश्वरों के हैं।

इस देश में आज भी दो सरकारें चलती हैं। एक वह सरकार जिसे आप जानते हैं, जिसके पुलिस, कर्मचारी आदि-आदि हैं। जिस प्रकार यह सरकार देश की रक्षा; जन कल्याण, जनता को कानून सिखाना, मनवाना, नये-नये कानून बनाना आदि कर्म करते हुये राजसुख भोगती है; उसी प्रकार सनातन सरकार अपने राज-राजेश्वरों द्वारा धर्म की रक्षा, धर्म एवं कर्म के नियमों का ज्ञान तथा पालन सनातन जन-जन से कराना आदि महान कर्म कराती है।

परन्तु दोनों सरकारों में अन्तर आ गया है। एक जन-जन को विक्षिप्त करके; भौतिकवाद के थोथे नारावाद पर; उसका विश्वास प्राप्त करती है तो दूसरी ओर सनातन सरकार उन्हें अन्तर्मुखी कर, शान्त निश्चिन्त और धर्माचरणवाला बनाकर; उनका विश्वास प्राप्त करती है। इस प्रकार दोनों सरकारें चलती हैं। आप लोगों में बहुत से मित्रों ने धर्म के नाम पर पाखण्ड और ढोंग की बातें की हैं और इन पाखण्डों को दूर करने की बातें भी की है। आप स्वयं निर्णय करें कि कौन-सी सरकार ढोंगी और पाखण्डी है ?

One which frustrates the masses to win their wishes; or

one which consoles them and makes them internal to win their wishes ?

निर्माण सदा नीचे से ऊपर जाता है; नींव से ही दीवारें ऊपर उठती हैं। परन्तु संस्कार सदा ऊपर से नीचे आते हैं। पुताई सदा ऊपर से नीचे उतरती है।

मेरी सनातन सरकार आज भी वर्तमान भौतिकवादी सरकार से कहीं अधिक शुद्ध, पवित्र एवं जन कल्याणकारी है। जो थोड़ा बहुत आप भ्रष्टाचार देखते हैं, वह निर्माण का दोष नहीं है। पुताई की खराबी है। और यह संस्कार रूप पुताई, सारे देश और समाज को, वर्तमान भौतिकवादी कर्णधारों की ही देन है, सनातन की नहीं !

इन महाप्रभु महामण्डलेश्वरों, महात्माओं, सनातन गुरुओं द्वारा बताये मार्गों पर श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक चलते हुए, सनातन नियमों से एवं संस्कारों से सुदृढ़ होते हुए रे भक्त ! बढ़ता चल आत्ममार्ग पर। दोनों मार्ग देवयान और पितृयान सनातन कहे गये हैं, इन राजराजेश्वरों से भक्तिपूर्वक दीक्षा लेता हुआ, आत्ममार्गी हो और तपतन्त्र में सनातन के प्रविष्ट हो शुक्लमार्ग, देवयान को धारण कर ! आत्माकुण्ड ही चिता हो तेरी ! आत्माकुण्ड में ही यज्ञ करना मात्र लक्ष्य हो तेरा ! वाह्य सनातन क्रियाओं को अब अन्तर्मुखी हो भीतर करता चल ! आत्मा हवनकुण्ड में यज्ञ हो यह सामग्री शरीर ! मस्त झूमता चल रे योगी ! यह मार्ग है सुख का ! यह लोक है स्वर्ग से भी महान ! तप कर ! तप कर !!

निष्काम कर्मयोग की गाड़ी तीन पहियों वाली चले ध्यान मार्ग पर ! तीनों पहिये भक्ति-ज्ञान-कर्म के सशक्त हों ! बली हों ! बढ़ता चल रे योगी !! तू चल भीतर अपने ! मत सोच ! मत सुन ! मत देख !! बस ध्यान कर ! यज्ञ कर !! स्वतः बढ़ता चलेगा ! स्वतः उठता चलेगा ! ऊपर से ऊपर !! और फिर पृथ्वी-माया के गर्भ से बाहर जागृति हो !! जन्म हो ! स्वप्न से, सत्य में ! पुनर्जन्म हो ! जय हो !!

हरि ॐ नारायण हरि !
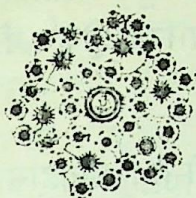
नवम अध्याय

मोक्ष : लक्ष्य

भक्तगण !

आपकी महान कृपाओं की बलिहारी है ! आपने इस अपढ़ मूढ़ को धैर्यपूर्वक एवं श्रद्धापूर्वक सुना ! आप अति महान हैं ! आपको कोटि-कोटि प्रणाम हैं !

आज इस सम्मेलन का नवां एवं अन्तिम दिवस है। हमारे मिलन का प्रथम दिन था रविवार। सूर्यदेव का दिन ! सूर्य आत्मा है जगत की ! हमने भी उस दिन 'यज्ञोपवीत' का दर्शन सुना; सुनाया ! आत्मप्रतीक दिवस में आत्मयज्ञ के रहस्य प्रकट किये !

दूसरा दिन सोमवार था ! चन्द्रमा का दिन था। चन्द्रमा मन का प्रतीक है। इसी मन की चंचलता एवं भटकाव के कारण मनुष्य की क्या गति होती है, सो 'दशानन मार्ग' का दर्शन सुना आप सब महाप्रभुओं ने।

तीसरा दिन था मंगलवार ! मंगल का दिन था। मंगल योद्धा है हठी है—हमने भी हठयोग का, 'दशरथ मार्ग' का दर्शन सुना। युद्ध, मायाओं का जीतकर, विजेता बनने के रहस्यों का अनावरण किया।

चौथा दिवस बुधवार था ! बुध बुद्धि के देवता माने गये हैं। नूतन अनुसन्धान के स्वामी हैं। हमने 'वेद चक्षु,' विज्ञान के रहस्यों का संक्षिप्त रहस्य जाना।

पांचवा दिवस वृहस्पतिवार था ! देवगुरु वृहस्पति का दिन—हमने 'यज्ञ : यज्ञेश्वर', आत्मा के यज्ञों के रहस्यों की चर्चा की। आत्मगुरु वृहस्पति के दिन हमने आत्माओं द्वारा रचे नाना यज्ञों के रहस्य को जाना।

छठा दिन था शुक्रवार। गुरु शुक्राचार्य का दिवस! शुक्र सांसारिकता के गुरु हैं। हमने 'कर्म : परमेश्वर' के रहस्य एवं सांसारिक होकर भी परमपद पाने के मार्ग का ज्ञान किया।

सातवां दिन शनिवार था! शनि भूत का स्वामी है। इतिहास, खण्डहर, विस्मृत रहस्य आदि का अधिपति माना गया है तो हमने 'धर्म, संस्कृति एवं इतिहास' की चर्चा उस दिन अनायास की।

आठवां दिन पुन: आत्मप्रतीक सूर्यवार अर्थात् रविवार था! नाना-प्रभुओं ने 'अहं ब्रह्मास्मि' द्वारा सूर्य के सदृश्य स्वरूप को प्राप्त होने के अमरमार्ग का ज्ञान किया।

आज नवां दिन पुन: चन्द्रवार है! आज इस चंचल मनरूपी चन्द्रमा को किस प्रकार नियन्त्रित कर हम 'मोक्ष : लक्ष्य' पर चल सकते हैं, इस पर विचार करेंगे तथा मनरूपी चंचल चन्द्रमा द्वारा उत्पन्न किये गये संशयों का निवारण करेंगे। आत्मा को संशय कहाँ? मन प्रश्नरहित, संशय—रहित हुआ किसका?

यह सब अनायास ही हुआ है। सब कुछ तो अनायास ही हुआ है। मायाओं की अदृश्य डोरों पर नाचते नर्तक, जुड़ते चले गये और अदृश्य की इच्छाओं के अनुरूप ही प्रवचन चलते रहे। कितना विचित्र है वह! कितनी विचित्र लीला है उसकी! हर क्षण का साथ है उसका! किसने जाना; किसने सुना; किसने देखा? मेरे साथ-साथ चलता है अदृश्य! कुछ भी तो छिपा नहीं पाता हूँ उससे! अन्धकार में घूरती तो अदृश्य आंखें! दिखती नहीं हैं! दिखें कैसे!

धर के धनुष पर बाण; खींच कर डोरी कान तक; दूं छोड़ नील गगन में; आ जावें कहीं प्राण उस बाण में। क्या जानेगा कि फेंका गया हूँ धनुष से; किसी के द्वारा? नहीं! सोचेगा कि मैं स्वयं ही उड़ता चला जा रहा हूँ!

आह ! स्थिति वही है मेरी ! बोल रहा था वह ! सुना रहा था वह ! सुन रहा था वह ! अरे तुम कहाँ; मैं कहां ? खिला रहा है वह ! चला रहा है वह ! रे गगन में तैरते बाण ! तू स्वयं को पहचान ! शक्ति-दाता कोई और है ! बुद्धिदाता कोई और है ! हे ! नाना देवों ! जानो, कि कुछ सुनाया नहीं है आपको । इसलिये जानिये नहीं मुझको ! मत पूछिये नाम, धाम मेरा ! बिसरा के मुझको, भजिये आत्मा कन्हाई को ! यही मार्ग है आपका ! गुरू तो आत्मा कृष्ण हैं ! भीतर बैठे हैं आपके ! राख के अम्बार, मार्ग दिखा सकते नहीं ! उनको जानने से फायदा क्या ? छोड़िये व्यक्तिगत चर्चा और वाद को ! भजिये मनमोहन को हर सांस में ! आपके मान-सम्मान, श्रद्धा, स्तुति का अधिकारी नहीं हूँ मैं ! अरे ! वह तो मेरा आत्मा कन्हाई है !

व्यक्तिपूजा में आस्था नहीं है मेरी ! मूर्तिपूजा ही मेरा मार्ग है ! तब कीजिये नहीं व्यक्तिगत चर्चायें ! यन्त्र का नाम लेने से फायदा क्या ? यन्त्र का इतिहास गाने से फायदा क्या ? आत्मा सनातन की बात करो ! लक्ष्य आत्मप्राप्ति का है । यही मिशन सनातन है। सनातन मिशन की नींव रखो ! सनातन ही मेरा नाम है ! सनातन ही मेरा लक्ष्य है ! सनातन ही मेरा धाम है ! सनातन ही मेरा धर्म है ! सनातन ही तप है; सनातन आनन्द है ! सनातनानन्द कह लो मुझको ! अतिरिक्त नाम नहीं कोई ! अरे ! भक्त सनातन कहो; मूढ़ सनातन कहो ! मात्र सनातन कहो मुझको ! व्यर्थ की जिज्ञासाओं को त्यागो ! व्यक्तिपूजा त्यागकर सनातन लक्ष्य को प्राप्त हो । अमर नहीं हो तुम ! थोड़े क्षण का जीवन है ! तप करना भारी है ! इन्हें व्यर्थ की भ्रामक जिज्ञासाओं में व्यर्थ करो मत ! सनातन भजो ! सनातन भजो ! !

दूसरा संशय जो भक्तवृन्द में व्याप्त हो गया है उसका निवारण भी कर दूँ । यदि श्रीमद्भगवत्गीता के कृष्ण, अर्जुन आत्मा और बुद्धि के प्रतीक हैं तथा प्रभुराम आत्मा; दशरथ और दशानन इस बुद्धि की स्थि-तियां हैं; तो क्या राम-रावण युद्ध मिथ्या है ? यह संशय बहुत से महा-त्माओं के मन में है ।

भगवान राम के लीला का काल यदि ज्योतिष की परिक्रमा प्रणाली से देखें तो नौ लाख वर्ष से भी कहीं पूर्व का काल है। यदि वही काल ही लीला मान लिया जाये तो भगवान राम तो इतिहास का अध्याय मात्र हो रह गये। 'इति' 'ह्रास' तो भगवान का होता नहीं, क्योंकि राम अवतार के राम बारह कला पूर्ण थे। कृष्ण को सोलह कला पूर्ण अवतार माना गया है। पांच से आठ कला तक मनुष्य जन्मधारी होते हैं। आठ कलाओं के उपरान्त नव कला से सोलह कला तक आत्मा परम स्वरूप होने से परमात्मा (परम् + आत्मा), परमेश्वर (परम् + ईश्वर) स्वयं अवतरित होते हैं ! इस प्रकार स्पष्ट है भगवान राम एक साधारण मनुष्य नहीं हैं वरन् घट-घट वासी प्रभु राम ने लीला दिखाई थी पाप का भार घटाने के लिये नौ लाख वर्ष पूर्व ! परन्तु प्रभु राम तो सृष्टि के आदिकाल से ही घट-घट वासी हैं। राम तो नित्य सनातन हैं ! प्रत्येक शरीर में राम-रावण युद्ध निरन्तर चलता रहता है।

जब यह बुद्धि सीता दशरथ (दश इन्द्रियों को 'रथ' लगाम लगाना) बनकर अन्तर्मुखी न हुई और लक्ष्मण रेखा (आत्मा राम की मर्यादा का नाम ही लक्ष्मण रेखा है) को पार कर गई अर्थात् अन्तर्मुखी हो आत्मा से योग कर, अद्वैत न कर, बहिर्मुखी हो मर्यादा से बाहर चल दी—हर ले गया दस इन्द्रियों की लिप्साओं का अधिपति दशानन रावण; जो मन इन्द्र है, ले चला वायु मार्ग से बांधकर इस अर्थी सीता को ! जी हां ! फिर तो कन्धों पर वायु मार्ग से ही गई न ! कट गये जटायु सारे ! ले चला दशानन सीता को बना अर्थी !

लकड़ियों पर डाल दिया सीता को ! राम की विरह में; चिता पर जल राख हुई सीता ! भस्मी ने जल का संग किया। जंगलों की नाना अशोकवाटिकाओं में डोलती फिरी यह भस्मी सीता; पुकारती हा राम ! हा राम !! हा राम !!!

तब एक-एक वृक्ष के; एक-एक पौधे के अन्तराल में प्रकट हुआ अवधेश मेरा ! मर्यादा पुरुषोत्तम राम ! सम्पूर्ण मायाओं को, सम्पूर्ण

रावणी, आसुरी शक्तियों को, परास्तकर यज्ञ करने लगा। भस्मी यज्ञ द्वारा तेज में परिवर्तित हुई। तेज ने पुनर्सृजन द्वारा सुन्दर वनस्पति का स्वरूप पाया। वनस्पति पुनः शरीर में जाकर तेज में परिवर्तित हुई। तेज ने रक्त आदि कणों का रूप पुनर्सृजन द्वारा प्राप्त किया। यही कण गर्भ में पुनः बालक का रूप धारण करने लगे। यूँ अग्नि परीक्षाओं द्वारा लौटी, यह भस्मी सीता ! पुनः वरण किया आत्मा राम ने इसका ! यह बुद्धि सीता शायद इस बार दशरथ बने और राम की हो जाय सदा-सदा के लिये।

यह नित्य रामायण है। जब भी मैं इन्द्रियों की लिप्साओं में फंस जाता हूँ, वीभत्स रावण हो जाता हूँ। जब भी अन्तर्मुखी हो उठता हूँ दशरथ सा स्वरूप होता है मेरा ! इस सांस में दशरथ से राम हूँ ! उस सांस में दशानन से रावण हूँ ! हर सांस में युद्ध है राम-रावण। प्रत्येक शरीर में; प्रत्येक घट में, चल रही है मूक रामायण मेरी ! पहचान स्वयं को रे इन्सान ! दशानन से दशरथ हो तो, रावण से राम बने ! हरि ॐ नारायण हरि !

भक्तगण ! इसी संदर्भ में एक घटना याद आ गई। सुना दूँ आप महात्माओं को ! एक अवसर जीवन में बनारस जाने का, नारायण की कृपा से, मिल गया। बहुत दिव्य नगरी है ! चलने लगा तो मित्रों ने पूछा, कि आपको कौन-कौन से स्थान अधिक पसन्द आये।

उत्तर दिया आपके भक्त ने ! यूँ तो सारी नगरी ही अति सुन्दर है ! इस स्थान का रोम-रोम लगता है सजीव है। परन्तु दो स्थान यहाँ के बहुत ही रास आये हैं। दोनों घाट हैं वे ! एक है हरिश्चन्द्र घाट और दूसरा घाट है, मणिकर्णिका ! दोनों ही श्मशान घाट हैं, गंगा के तट पर !

एक छोटा सा लड़का गोबिन्दा नाव खेता मेरी। दशाश्वमेध घाट से धीरे-धीरे नाव ऊपर को बढ़ती। रात्रि की खामोशी। चाँद की हल्की रोशनी। थोड़ी दूर बढ़ने पर सामने से रोशनी की लम्बी लकीर नदी के जल में खिंचती, नाव से आ टकराती। चौंककर उस लकीर का उद्गम

ढूंढ़ती मेरी आंखें, चिता पर आकर टिक जातीं। एक चिता जल रही होती। एक झटका-सा लगता।

सोचने लगता कि जब व्यक्ति प्रसन्न होता है तभी उसके चेहरे पर चमक आती है। अरे! आज यह अर्थी कितनी प्रसन्न है कि इसकी चमक से सब कुछ जगमग हो गया है। एक रेखा गगन को छू रही है तेज की; दूसरी एक रेखा सी बन गई है नदी के जल में। आज क्यों प्रसन्न है यह इतनी? अरे! इतनी प्रसन्न तो जीवन में कभी न थी!

हाँ! अब समझ पाया हूँ मैं! यह आज प्रसन्न है! अरे तेज-स्वरूप राम से मिलन है इसका! प्रसन्न क्यों न हो! देखते नहीं कि खिंच गई हैं लक्ष्मण रेखायें! गगन में! धरा पर!! जल में! मुझमें!! आज कोई भी रावण, कोई भी बहुरुपिया स्वजन लिप्साओं में भटका-कर इसका हरण न कर सकेगा! इसीलिये तो सारे रावण! इतने रावण! इतने रावण!! स्वजन का स्वांग भरकर भी उदास रो रहे हैं। कर नहीं सकते हैं पार, इन लक्ष्मण रेखाओं को! रे गोबिन्दा! रे गोबिन्दा!! खेकर ले चल नाव! देख! चलना इस रेखा के ऊपर ही! न उस पार! न इस पार!! तू तो रेखा-रेखा चल! भले भस्म कर दे यह मुझको!

रे गोबिन्दा! ले चल वहाँ, जहाँ सहस्त्रों लक्ष्मण रेखायें हों! आज रेखा-रेखा चलूंगा रे! मणिकर्णिका! पांच चितायें! पांच मिलन की वेदियाँ! सहस्त्र-सहस्त्र लक्ष्मण रेखायें! अरे आज बन रावण तोड़ूँगा लक्ष्मण रेखायें तेरी! सीताहरण को नहीं! कदापि नहीं!! तेरी लक्ष्मण रेखा को तोड़ूंगा कि बदल तेज में मुझे, मिला दे मेरे राम से!! इन सहस्त्र-सहस्त्र लक्ष्मण रेखाओं को कहे कोई कि उनका दीवाना हूँ मैं! हे सहस्त्रार की स्वर्ण रेखाओं! मुझमें समा जाओ!! सहस्त्रों चिताओं की अग्नि भर दो मुझमें! अग्नि से अग्नि हो, मैं जा मिलूं यज्ञेश्वर राम से! हरि ॐ नारायण हरि!

भक्तगण! नारायण आपका कल्याण करें! आप मोक्ष-मार्गी

हों ! देदीप्यमान हों !! आपके संशय निवारणार्थ रामायण का यह विषय सुनाया, मत कीजिये संशय ! न सोचिये अब कुछ ! भजिये राम का नाम, मूढ़ हो !

इसी प्रकार मेरे मधुसूदन मनमोहन ने द्वापर युग में अवतार लिया; इस धरा पर पाप का भार घटाने को। परन्तु 'कृष्णाः' अर्थात् आत्मा हवनकुण्ड का दर्शन तो सृष्टि के आदि काल से है। विष्णु के ही अवतार मर्यादा पुरुषोत्तम राम हैं। विष्णु के ही अवतार नीति पुरुषोत्तम कृष्ण हैं। विष्णु जी के ही कल्कि अवतार ग्रहण की चर्चा की गई है पुराणों में। उसे भी कल्पना अथवा मिथ्या कहना भूल होगी। क्योंकि योगमार्ग द्वारा पुनः प्रकट किये गये दर्शन का रचयिता कोई साधारण व्यक्ति नहीं होता है। योग द्वारा प्रेरित होकर जो श्रद्धा भक्ति एवं आस्था-पूर्वक प्रकट किये वेद में, असत्य भाषण करना उसके लिये सर्वथा असम्भव है। आप स्वयं को उसके समानान्तर रखकर जो संशय उत्पन्न करते हैं—क्या वे उचित हैं ? क्या यह आपकी अनाधिकार चेष्टा नहीं ? एक तपस्वी ने जो योग और तप द्वारा विस्मृत को प्रकट किया है, उस पर टीका-टिप्पणी करते समय; उसमें संशय और भ्रमात्मकता का नारा देते समय क्या आपने स्वयं से पूछा, कि जिस विषय की चर्चा और पांडित्य झाड़ने जा रहे हो उस मार्ग में कितना योग और तप किया है तूने ? अथवा दशाननमार्गी बन पत्नी के संग रात्रिशयन करता, बच्चों की भीड़ लगाकर, जग ठगता अब तू तपस्वियों से भी टक्कर लेने चल दिया है ? यह मुखौटा कोरी विद्वता और रावणी पाखण्ड का लेकर किसको

अभिशप्त कर रहा है ? इस महापाप से बचने का; चन्द मुट्ठी राख में बदल, नालियों में सड़ने से बचने का कोई उपाय सोचा है तूने ? रे विद्वान ! तुझसे तो चोर अधिक अक्लमन्द है कि जहां चोरी करने जाता है उसकी निकासी का, भाग निकलने का, मार्ग पहले ढूंढ़ लेता है। तूने इस दण्ड से; इस महापाप से बच निकलने का कौन सा मार्ग ढूंढ़ रखा है ? सोच रे समाजी सोच ! स्वयं को तो न ठग; अरे स्वयं को तो न अन्धा बना ! स्वयं को स्वयं से अभिशप्त मत कर ! यह मनुष्य जन्म अति दुर्लभ है ! भगवान बनने का पाखण्ड त्याग ! भगवान को; बराबर का करने के लिये; महापुरुष कहकर अपने पाखण्ड द्वारा जन-जन को पापी मत बना। अन्तर्मार्गी होकर इन्हें अन्तर के कन्हाई के संग रास रचाने दे ! विद्वता के ढोंग और पाखण्ड में फंसाकर इनको आत्मद्रोही न बना ! ये धर्मात्मा हैं ! इन्हें, इन्हीं के मार्ग पर चलने दे। प्रभु कल्याण करें तेरा ! सद्बुद्धि एवं अमर आस्था, भक्ति दें तुझको !

भक्तगण ! वेद में गति के तीन स्वरूप बताये गये हैं। सद्गति, परमगति एवं मोक्षगति। अहो। ये तीनों गतियां ही कल्याणकारी हैं ! जिस प्रकार सूर्यादिक ग्रहों को प्रकृति ने तीन गतियों में बांध रखा है उसी प्रकार प्रकृति के अंग, मनुष्य के लिये भी तीन गतियां कही गई हैं।

सूर्यदेव सद्गति से देवलोक की परिक्रमा करते हैं। यह गति पृथ्वी आदि ग्रहों की गति से कहीं-कहीं तीव्र है। यह इस सौर-परिवार की सद्गति है।

पुनः देवलोक इससे भी तीव्रतम गति से ब्रह्मलोक की परिक्रमा कर रहा है। इस गति को प्रकृति की परमगति की संज्ञा दी गई। यह गति सूर्य की गति से अतितीव्र है; फिर समय अधिक लगने का कारण परिक्रमावृत्त का कई करोड़ गुना अधिक बड़ा होना है। इस प्रकार सूर्य-परिवार देव की परिक्रमा सद्गति से करता है तथा देवपरिवार ब्रह्मलोक की परिक्रमा परमगति से करता है।

उपरान्त ब्रह्म भी सनातन की परिक्रमा करते हैं। ब्रह्मलोक परिवार की, सनातन की परिक्रमा की गति को मोक्षगति की संज्ञा दी गई है। इस प्रकार प्रकृति की तीन गतियां सद्‌गति, परमगति एवं मोक्षगति समझायी हैं आपको !
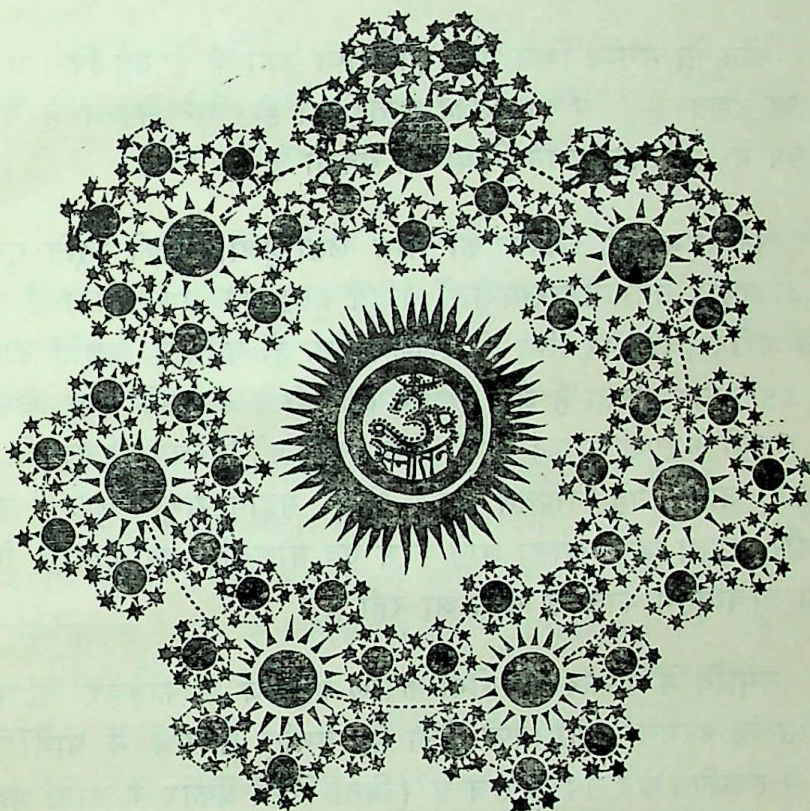
जिस प्रकार प्रकृति की इन गतियों के विभाग बने हैं, ऐसी ही तीन सुन्दर गतियां शरीर की हैं।

सद्‌गति को गया मनुष्य पुनः दुर्लभ मनुष्य जन्म को प्राप्त होता है। अपने तप के अनुरूप कुल में जन्म पाता है।

परमगति को गया मनुष्य स्वर्गादिक को भोगता हुआ, क्षीरसागर में विचरण करता, पुनः-पुनः यज्ञों द्वारा मोक्षगति को प्राप्त होता है; अथवा पुनः स्वर्ग को भोगकर दुर्लभ मनुष्य जन्म को प्राप्त होता है।

मोक्षगति को गया तपस्वी सृष्टा के महान पद को प्राप्त होता है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता है। ऐसा तपस्वी सदा योग-माया से प्रकट होता है और योग-माया से ही विलीन हो जाता है। गर्भ का मार्ग उसे इन क्रियाओं में अपनाना नहीं पड़ता है।

कौन सा मनुष्य किस गति को प्राप्त हुआ है? यह किस प्रकार जाना जा सकता है? यूं तो इसको अन्तर्दृष्टा ही जान सकता है परन्तु स्थूल रूप में भी इसका ज्ञान किया जा सकता है।

अन्त समय में श्रीहरि का नाम लेता हुआ, उनकी स्तुति सुनता हुआ, जो मनुष्य सनातन परम्पराओं सहित मृत्यु को प्राप्त होता है तथा जिसका शरीर चिता पर तीव्र हो जलकर भस्म हो जाता है, अर्थात् उसका शरीर इस प्रकार जलता है जैसे सूखी लकड़ी भी न जल सके तथा जिसका कपाल लकड़ी के स्पर्श से फट जाये; ऐसे मनुष्य को निश्चय ही सद्गति को प्राप्त हुआ जाने। यह निश्चित रूप से किसी महान मनुष्य कुल में जन्म लेगा और अगला जन्म इसका आगे परम एवं मोक्षगति का होगा। ऐसी मान्यता प्राचीनतम काल से चली आ रही है।

समाधि में बैठकर जो योगी कपाल ब्रह्मतेज से फाड़कर जाता है वह निःसन्देह परमगति को प्राप्त होता है, अर्थात् समाधि में प्राणों को कपाल में स्थापित कर तप के तेज से (बिना किसी प्रकार के वाह्य प्रहार से) कपाल को फाड़कर गया योगी परमगति को प्राप्त होता हुआ क्षीरसागर में स्थापित हो, पुनः तप यज्ञ कर मोक्षपद को प्राप्त हो जाता है; अन्यथा स्वर्गादिक भोगों को भोगकर तप का तेज क्षीण करके पुनः इस धरा पर मनुष्य जन्म को प्राप्त होता है।

शरीर सामग्री को आत्मा हवनकुण्ड में सम्पूर्ण यज्ञ कर, सम्पूर्ण को तेज में परिवर्तित कर, पीछे कुछ न रहे बाकी, ऐसे मार्ग से गया योगी पुनः लौटकर गर्भ का आश्रय नहीं लेता है। मोक्ष को प्राप्त हो स्वयं सृष्टा, त्रैलोकेश्वर महान हो उठता है।

इस प्रकार सद्गति में देव को भोग पुनर्जन्म तथा परमगति में ब्रह्म को भोगकर पुनर्जन्म का मार्ग अपनाना पड़ता है परन्तु आत्मा हवन-कुण्ड में शरीर सामग्री को यज्ञ कर गया योगी स्वयं सृष्टा के पद को प्राप्त होता है। ऐसा उल्लेख श्रीमद्भगवत्गीता में भी बारम्बार आया है।

इस प्रकार स्थूल रूप से इन तीन मार्गों को जानने का मार्ग बताया है मैंने आप महाप्रभुओं को! नारायण आप पर कृपालु हों! मोक्ष ही मात्र लक्ष्य हो! यही मार्ग हो आप महात्माओं का! हरि ॐ नारायण हरि!

इन तीन महान अलौकिक गतियों के अतिरिक्त नाना प्रकार की अधोगतियाँ कही गईं हैं। नाना प्रकार की पापयोनियां हैं, जिनका सविस्तार वर्णन है, सनातन के पुराणादिकों में। इनको भी अधोगति जाते सकामी जन को अवश्य भोगना पड़ता है।

कुछ नूतन सम्प्रदायों ने विचित्र प्रकार का प्रचार प्रारम्भ कर दिया है कि पुरुष की आत्मा पुरुष में ही जावेगी, स्त्री की आत्मा स्त्री रूप ही धारण करेगी; कुत्ते की आत्मा अगले जन्म में कुत्ता ही बनेगी। यह सब मूर्खतापूर्ण प्रचार है। स्वयं को अन्धा बनाना है। ऐसे समाजों और सम्प्रदायों से निश्चय ही धार्मिक व्यक्तियों को दूर रहना चाहिये। एक ने सम्भोग से समाधि की बात की, तो दूसरे ने पति-पत्नी को भाई-बहन बनने का आदेश दिया; तीसरे ने कहा, शरीर को शरीर भोगता है इसलिये जिससे चाहो सम्भोग करो। ऐसें नीच-पातकी अधोगति को जाते सम्प्रदायों का निश्चित एवं सशक्त बहिष्कार होना चाहिये। आप धर्म की रक्षा करें। धर्म आपको अमर सुख प्रदान करेगा और मोक्ष मार्गी बनावेगा।

यह कहना कि मनुष्य पुनः मनुष्य ही बन जाता है; सरासर गलत और सारहीन झूठ है। यदि मनुष्य का पुनर्जन्म सीधा मनुष्य होता तो भस्मी का पुनर्जन्म मनुष्य में होता, न कि वनस्पति में? फिर तो घर के लोग ही मृत्यु को प्राप्त हुए स्वजन को पकाकर खा जाते कि फिर से मनुष्य बन जावे सीधा तथा वनस्पति को भोजन स्वरूप ग्रहण करना ही व्यर्थ

होता ; क्योंकि वनस्पति मनुष्य का शरीर बनती कैसे ? लगता है पिछली योनि में भेड़िया बन अब पुनः मनुष्य जन्म को धारण किया है तो पिछले संस्कार मिट नहीं पाये हैं, इसलिये जग को एक नया सिद्धान्त पढ़ा रहे हैं ये प्रकृतिद्रोही, सनातनद्रोही !

आत्मा का स्वरूप सूर्य के सदृश्य है ! तेजस्वी हवनकुण्ड है ! न तो स्त्री है; न ही पुरुष ! सम्पूर्ण जगत की आत्माओं के स्वरूप एक से हैं तथा यन्त्र की गति के अनुरूप यज्ञ करना, क्षीरसागर-यन्त्र (शरीर अथवा पौधा) का बनाये रखना तथा अन्तर्प्रेरणा द्वारा उसे माया भटकाव से सचेत करना ही मुख्य धर्म है। सूर्य जगत आत्मा है, अर्थात् सम्पूर्ण जगत-आत्माओं की ही तस्वीर हैं। गोभी में, बैंगन में, कुत्ते में, मनुष्य में, चिड़िया में; मछली और घड़ियाल में, चूहे में, पतंगे में जो जीवनदायनी सृजक तेजचक्र शक्ति है उसका नाम आत्मा है। यही स्वरूप एक-सा सर्वत्र है। इसलिये मनुष्य ही वनस्पति बनता है। कुत्ता, सुअर, खरगोश, कीड़ा आदि की योनि में भी मनुष्य को जाना पड़ता, है अपने कर्मफल भोग के अनुरूप !

शरीर जला; राख बना ! राख ने खाद का स्वरूप ग्रहण किया और जड़ों द्वारा ग्रहण किया तो तपहीन शरीर फलों में न बदल; बदल गया पेड़ की पत्तियों में ! पत्तियां खाईं खरगोश ने ! अपने ही शरीर (जो अब पत्तियां हैं) का उद्धार करने खरगोश की योनि में भटक रहा है तू ! खरगोश को बिलाव ने खा लिया, अब अपने शरीर के उद्धार हेतु उसके गर्भ में भटक रहा है तू ! उस बिलाव को दूसरे जानवर ने घायल कर दिया ! झाड़ियों में छिपा बिलाव सड़ गया, मरकर ! कीड़े पड़ गये ! अपने वजन भर का एक कीड़ा उसमें तू भी है ! जाग रे प्राणी ! झूठी तसल्ली और ढोंग-पाखण्ड छोड़ ! देख क्या लिखा है प्रकृति के प्रत्येक अंग पर ! पहचान उसे ! न भटक, और न भटका जन-जन को ! इन अधोगतियों से बच और सुन्दर गतियों को धारण कर ! पत्ते-पत्ते पर, जीव-जीव में लिखी है कहानी तेरी ! पढ़ उस कहानी को ईमानदारी से ! शिक्षा ले

प्रकृति की खामोश कथाओं से ! जाग और लक्ष्य को निर्धारण कर ! अभी कुछ देर नहीं हुई है ! एक बार जो योग में हो सका स्थापित, तो लक्ष्य पाकर ही रहेगा । योग में स्थापित योगी की मृत्यु होती नहीं है। फिर तो यज्ञ करके ही उठेगा ! दशरथ-मार्गी हो ! सनातन-पद का अधिकारी हो ! इस प्रकार; हे नाना-देवाधिदेवो ! सनातन प्रेमियो ! आपकी सम्पूर्ण शंकाओं का निवारण किया ! अब **मोक्षमार्ग** पर चलने को उद्धत हो ! एक बार पुनः लक्ष्य और मार्ग की चर्चा करें ! अब किसी भक्त का सन्देह अथवा संशय पत्र नहीं है मेरे पास ! ठीक है न ! आप भक्तगण कृपया धैर्यपूर्वक सुनें ! इस तथ्य को न भूलें कि—

मन संशयरहित हुआ किसका तथा आत्मा को संशय कहां ! स्पष्ट है कि मन तो कभी संशयरहित होता नहीं है, चाहे आप इसके कितने ही संशय निवारण क्यों न करें, इसके पास कोई न कोई संशय रहेगा अवश्य ।

इस मन के संशय को निवारण करते रहने की प्रक्रिया ही गलत है । कारण ? यह मन संशय निवारण की प्रक्रिया में कदापि संशयरहित हो सकता नहीं है । बहुमूल्य क्षण योग और तप के व्यर्थ ही में नष्ट हो जाते हैं और दुर्लभ मनुष्य जन्म खोकर प्राणी नाना-पापयोनियों में भटकने को चल देता है । जिन संशयों का निवारण किया था, उनका ज्ञान भी नष्ट हो जाता है । पुनर्जन्म में संशय पुनः ज्यों-के-त्यों हैं ।

इस मन को सही करने का एक ही मार्ग है कि अन्तर्मुखी हो आत्मा के साथ बांध दो । संशयरहित का संगकर, यह स्वयं भी संशयरहित हो जावेगा । अमर का संगकर, अमर मार्ग पर स्वतः अमर होने चल देगा। संशय निवारण से संशयरूपी अग्नि दावानल सी बढ़ती चली जावेगी और स्वर्ण-सा समय नष्ट हो जावेगा तथा यह अग्नि चिता की अग्नि बन सर्वस्व नष्ट कर देगी ।

आइये ! आज हम सब प्रतिज्ञा करें कि निष्काम कर्मयोगी बनेंगे । सदा मस्त, प्रसन्न, निश्चिन्त रहेंगे । जीवन को एक निष्काम कर्मयोगी, (sportsman) की भांति खेलेंगे । अब सकाम कर्मयोग के महापाप में इस

दुर्लभ मनुष्य जन्म को खोकर व्यर्थ नहीं करेंगे। चिन्ता, दुख, आशंका, भय, क्रोध, मोह, ममता, लिप्सा, दम्भ, सन्देह, ईर्ष्या, राग-द्वेष एवं संगदोष के महापाप से सदा दूर रहेंगे। इन महापापों को निश्चयपूर्वक त्याग रहे हैं तथा इनका प्रतिज्ञापूर्वक दमन करेंगे। कर्म को निष्काम भाव से करते हुये, निरन्तर आत्म-चिन्तन में मस्त रहेंगे। सम्पूर्ण लिप्साओं से त्यक्त होंगे और इन्द्रियों को मात्र आत्मप्रेरित हो, यज्ञ के लिये ही प्रयोग में लावेंगे। लिप्साओं का आनन्द लेने के लिये कदापि-कदापि इन्द्रियों का दुरुपयोग करेंगे नहीं।

ज्ञान को आत्मप्रेरित तथा आत्मप्राप्ति हेतु ही ग्रहण करेंगे। कोरे तर्कवाद और दम्भ, पाखण्ड विद्वता के, महापापों की छाया से भी दूर रहेंगे।

कर्म को सदा निष्काम भाव से करेंगे। सकाम कर्म के महापापों को सदा दूर रखेंगे। कर्मफल की वासनाओं का हम मनसा-वाचा-कर्मणा प्रतिज्ञापूर्वक त्याग करते हैं। कर्मफल की लिप्साओं से त्यक्त होते हुये निष्काम कर्मयोगी बनेंगे। उपरान्त कर्म की बहिर्मुखी दिशा को अन्तर्मुखी कर देंगे। सम्पूर्ण इन्द्रियों के कर्म की दिशा को अन्तर्मुखी कर आत्मा के संग ही सम्पूर्ण कर्म करेंगे। यही हमारी प्रतिज्ञा है!

भक्ति को आत्मप्रेरित करेंगे। बहिर्मुखी स्वरूप इन्द्रियों की भक्ति को अब हठपूर्वक अन्तर्मुखी कर देंगे। सकाम भक्ति का ढोंग, पाखण्डत्याग कर; निष्काम भाव से भजेंगे आत्मा को भीतर अपने। इन्द्रियों के द्वारा अन्तर्मुखी हो भीतर ही पूजेंगे आत्मा को, सजायेंगे, गायेंगे, रिझायेंगे। भीतर ही उससे लिपट जायेंगे। झझोड़ेंगे, नोचेंगे, प्यार और दुलार करेंगे अन्तर्मार्ग में ही!

चलेगी अब गाड़ी निष्काम कर्मयोग की तीन सशक्त पहियों पर—भक्ति—ज्ञान—कर्म!

चलेगी यह गाड़ी अन्तर्मुखी हो ध्यानमार्ग पर! ध्यान के पुष्प

चढ़ायेंगे ! ध्यान की धूप जलायेंगे ! ध्यान की ज्योति जलेगी जगमग ! रोम-रोम में जगमग होगी दीपावली ! शरीर मन्दिर सुवासित होगा, ध्यान के अमर सुगन्धित पुष्पों, धूप-दीप से । भीनी-भीनी महक देखो मुझे भीतर से आने लगी है ।

अब भीतर ही खेलेंगे । भीतर ही लड़ेंगे, झगड़ेंगे । भीतर ही रूठेंगे, मनावेंगे । बाहर आने की सुधि किसको है ! बाहर अब आना चाहेगा कौन ?

सारे दशानन छूट जावेंगे बाहर ! क्या कहते हो उनको ? स्वजन ! अरे ! दशानन रावण हैं ये सारे ! दशानन बनाये रखना चाहते हैं तुझको । न कर संग इनका ! न देख इनकी ओर । न सुन तर्क इनके । न इनका विषय कोई सोच ! इनके ज्ञान-विज्ञान को फेंक दे बाहर ! दूर ! बहुत दूर—फेंक जोर से !

सोच कि मुट्ठी भर राख से, मुट्ठी भर गेहूं जब बना सकता नहीं तू—तो क्यों करे पाखण्ड मेरे-तेरे का । आज भी एक वक्त के भोजन का भिखारी है जग सारा ! वही राख को यज्ञ से वनस्पति बनाता है तो पेट भरते हैं धन्ना सेठ, राजा, रंक, लुटेरे ! सब भिखारी ! एक वक्त की रोटी तक के ! अमरीका का राष्ट्रपति भी भिखारी है राम का ! फिर काहे न करे संग उस दाता का ! भिखारियों का संग छोड़ ! चल उस आतमा राम की शरण में ! होके राम के राम ! अपन भीख देंगे राष्ट्रपतियों को, धन्ना सेठों को, भिखारियों को ! अरे ! दाता का संग करेंगे ! दाता बनेंगे ! छोड़ इन स्वजन-मित्रजन रूपी दशानन रावणों को ! इस मन्दिर को सजा ! मना दीपा-वली हर क्षण की ! महक उठे रोम-रोम तेरा !

मोर के पंख लगा रे ध्यानमार्गी ! सिले होंठो में मस्त गा रे दीवाने ! मुंदी आँखों देख मूरत प्यारी, मेरे मोहन की ! कितनी सुन्दर कितनी मोहक ! डूब कर मूरत में; मूरत हो जा रे ! निहारे कन्हाई को यूं कि कन्हाई ही हो जावे ! मिलन हो ऐसा ! कि रूप ही जावे बदल ! झूम ! सनातन झूम ! ! रोम-रोम में समाये मस्ती उसकी ! रोम रोम जले

दीपावली सा ! सहस्त्रों चितायें जला दे रोम-रोम में ! तेज से तेज बन ! यज्ञेश्वर हो ! यज्ञेश्वर हो !! रे तेजपुन्ज ! भज तेज ! सहस्त्रों सूर्यों को तेज देता है कन्हाई मेरा ! भज कन्हैया ! भज कन्हैया !! मुग्ध हो ! मोहित हो !! सहस्त्रों सूर्यों सा तेजस्वी कन्हैया बन जा रे सखा !

नियमपूर्वक गाण्डीव धारणकर, बन जा रे महारथी ! महायोद्धा, मायाओं के महासमर का ! अरे ! तू ही तो धनुर्धर अर्जुन है ! यज्ञोपवीत के गाण्डीव को कान तक खींच और आत्मा सारथि कृष्ण के आदेश पर त्याग के पैने बाण चला रे सखा ! लक्ष्य भेद करे हर बाण तेरा ! करके महासमर भयंकर, नष्ट करके सारी सेना शत्रु मायाओं की, चल स्वर्गारोहण को ! निष्काम कर्मयोगी बैठते नहीं हैं गद्दियों पर ! निष्काम कर्मयोगी रुकते नहीं हैं अपने पेड़ों का फल खाने को ! निष्काम कर्मयोगी जीतते हैं महासमर और चल देते है स्वर्गारोहण को ! राजपाट से क्या लेना ! राजपाट के लिये युद्ध करा किसने था ? कर्म के धर्म को ही क्षेत्र जानकर, निष्काम कर्मयोग का सेनानी बन, निष्काम कर्मयोगी लड़े युद्ध भयंकर ! तू भी योद्धा बन रे सखा ! अर्जुन सा योद्धा अतिशय प्रिय है मेरे कन्हैया को ! सकाम कर्मयोग का प्रतीक दुर्योधन है ! उसका पथ त्याग रे मित्र ! कंसमार्गी बन नहीं ! आत्मद्रोही होगा और तेरा आत्मा ही तुझे पटक कर जीवन के अखाड़े में चल देगा ! राजपाट की लिप्सा त्याग ! 'मोक्ष-लक्ष्य' को धारण कर ! देख कितना भाग्यशाली है तू ! स्वयं कन्हैया सारथि बने हैं तेरे ! निश्चिन्त, मस्त, अनासक्त, अकर्तापन के भाव से पूर्ण हो और कर प्रहार भयंकर ! हरि ॐ नारायण हरि !!

भक्तगण ! आप सब महाप्रभुओं की कृपा से इस मूढ़ अज्ञानी ने आपको 'सनातन दर्शन की पृष्ठभूमि' दिखाकर, इसकी रहस्यमयी कुंजी आपको अर्पित कर दी है। वेद में भी इसी लक्ष्य को तथा इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु; करने योग्य आत्मयज्ञ की ही चर्चा सर्वत्र है। यज्ञ के अर्थ तथा रहस्य न ज्ञात होने के कारण भाष्यकारों एवं विद्वानों को इन महा-नतम दुर्लभ पुस्तकों का रहस्य स्पष्ट न हो सका ! सो श्री नारायण हरि

की कृपा से, देवगुरु वृहस्पति की परम अनुकम्पा से, तथा उन्हीं महाप्रभु के आदेश से, आप सब महात्माओं के प्रति श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक अर्पित किया। आप महाप्रभुओं ने नौ दिन इस भक्त की प्रार्थनाओं को ध्यान से एवं धैर्यपूर्वक, प्रश्नरहित हो सुना ; यह आपकी महानता का प्रतीक है ! मेरे द्वारा कहलाये गये इस अन्तर्ज्ञान से आप महाप्रभुओं का हित हो; यह ज्ञान मार्गदर्शक बने; सब महात्मा मूल लक्ष्य को धारण कर सकें; ऐसी प्रार्थना इस भक्त की क्षण-क्षण है !

'सनातन दर्शन की पृष्ठभूमि' को हृदयंगम कर, जो भक्त उस पृष्ठभूमि की ही रोशनी में, पुनः गीता एवं वेदों को पढ़ेंगे, उन्हें सनातन का दुर्लभ ज्ञान प्राप्त होगा। विश्व के महानतम विज्ञान-ज्ञान के स्वतः उत्तराधिकारी बन जावेंगे; तथा जो व्यक्ति केवल सन्देह और कोरे तर्क को ही लक्ष्य मानते हैं, उनको श्रीहरि इस दर्शन में त्रुटियाँ ही त्रुटियाँ दिखाकर उनकी तृप्ति करें। भूखे को भोजन अवश्य मिले।

तीसरा मूल यज्ञ क्या है तथा कितने-कितने प्रकार के यज्ञ हैं, इन्हें मैंने आप सब महात्माओं को यज्ञ यज्ञेश्वर की चर्चा में बताया था। इसका वर्णन गीता (४।२५) में भी स्पष्ट किया गया है "......ज्ञानीजन परमब्रह्म परमात्मारूप अग्नि में यज्ञ के द्वारा ही यज्ञ को हवन करते हैं।" अर्थात् तत्वज्ञानी मुझ आत्मारूपी हवनकुण्ड में ही यज्ञ (शरीर) को हवन करते हैं।

श्रीमद्भगवत्गीता तो पुस्तक ही यज्ञेश्वर महाप्रभु कृष्ण की है ! यज्ञ कर रे अर्जुन ! अहं ब्रह्मास्मि, निष्काम कर्मयोग एवं मोक्ष का स्पष्ट दर्शन आपको इस पुस्तक में मिलेगा !

निष्काम कर्मयोगी बनकर अहं ब्रह्मास्मि की ओर चलिये ! भौतिक उपलब्धियां कहीं अधिक होंगी। लक्ष्य भी प्राप्त होगा। सकाम बनकर जीना तो सारा जीवन नरक भोगना है तथा जो इस जीवन को स्वर्ग के आनन्द की नाईं न भोग सका उसे अगले जन्म में सुख कैसा ? जिसको

मिला हो संग सर्वानन्द आत्मा कन्हाई का—वह रोता फिरे जीवन भर—अरे उस जैसा नीच-पातकी इस धरा पर और कौन होगा ? कृष्ण का साथ हो और फिर तू रोता फिरे, दुखी और कष्ट का जीवन बितावे तो इससे तो स्पष्ट होता है कि तू महापापी है ! आत्मद्रोही है ! धर्म का अंश मात्र भी नहीं है तुझमें ! बिना कर्मफल भोग के सजा मिलती नहीं है । तब अवश्य ही तूने भयंकर से भयंकर, घृणित से घृणित, महा-महापाप किये हैं—तभी तो जीवन भर रोता रहा है; दुखी रहा है, भटकता, ठोकरें खाता फिरा है ! दे मत दुहाई अपने धर्मात्मा बनने की ! दे मत दुहाई अपनी ईमानदारी और धर्मनिष्ठा की ! तुझसे बड़ा बेईमान और कौन है जो इस मन्दिर शरीर को अनाधिकार नष्ट कर रहा है ! रे जीवन को रोकर बिताने वाले ! अगला जन्म भारी कष्टकर एवं नारकीय होगा ! रे आत्मद्रोही ! तू तो स्वयं से अभिशप्त है ।

मस्त रहो ! निश्चिन्त रहो !! सदा प्रसन्न रहो ! आत्मा के धर्म का आचरण कर धर्मात्मा बनो ! झूमो संग कन्हाई के ! नाचो संग कन्हाई के ! जीवन के प्रत्येक क्षण को आत्माकृष्ण के आनन्द से आनन्दित कर दो ! पृथ्वी पर मनुष्य जन्म बड़ा दुर्लभ है ! यह देव का पद है ! आत्मा के आनन्द से आत्मविभोर हो, स्वर्ग का आनन्द भोगते हुए 'अहं ब्रह्मास्मि' को प्राप्त हो ! स्वप्न से जागृति हो तुम्हारी ! तब चलो मूल लक्ष्य मोक्ष की ओर, सशरीर तेज में बदलकर !..........

हरि ॐ नारायण हरि !

नम्र-निवेदन

पाठक बन्धु,

एक समय का भोजन बांटने से एक समय की भूख मिटती है—एक पुस्तक का दान करने से जन्म-जन्म की भूख मिट जाती है !

इस महान पुस्तक-यज्ञ में भाग लेकर महापुण्य अर्जित करें ! आप का बहुमूल्य सहयोग स्तुत्य है। कृपया इस पुस्तक को पढ़कर आलमारी में बन्द न करें ! अपने इष्ट-मित्रों को भी इसका ज्ञानार्जन करावें एवं पुण्य अर्जित करें तथा इस पुस्तक के पुनः एवं वृहद् प्रकाशन में आपके सहयोग की आकांक्षा हैं !

इस पुस्तक के सहयोग के रूप में हम आपसे १५ रु० (पन्द्रह रुपये) की आकांक्षा करते हैं। यदि आपकी आर्थिक स्थिति देने योग्य है तो कृपया शीघ्र निम्न पते पर भेज देवें। यदि आप आर्थिकरूप से इस योग्य नहीं हैं, तो कृपया इसे हमारी ओर से दानस्वरूप स्वीकार करें तथा हमें यथासूचित करें। यह पुस्तक-महायज्ञ चलता रहे, ऐसा आप सहयोग दें !

शुभ कामनाओं सहित,
सम्पादक

रुपया भेजने का पता :
श्रीनारायण मिश्र
द्वारा नारायण प्रिन्टर्स
४-ए, वाल्मीकि मार्ग, लालबाग, लखनऊ–१
उत्तर प्रदेश (भारत)

नाथ गहे अब चरण तिहारे !

तुम ही माता, तुम्हीं पिता हो,
तुम बिन और न कोई हमारे ॥१॥ नाथ···

तुमने भवसागर में भेजा,
नाव लगा दो पार किनारे,
जग आलोकित करने वाले,
दूर करो फैले अंधियारे ॥२॥ नाथ···

तुम ही भीतर, तुम हो बाहर,
तुम ही घट में, तुम ही पथ में,
तुम ही तुम सम्पूर्ण जगत में,
सब जीवों में हो रखवारे ॥३॥ नाथ···

तुम ही दुःख में तुम ही सुख में,
तुम ही मृत्यु में, तुम ही जीवन में,
ज्ञान और सद्भक्ति न मिलती,
कृपा कोर के बिना सहारे ॥४॥ नाथ···

तुम ही जड़-चेतन, अचराचर में,
सत्य सनातन ! जग नश्वर में,
तुम ही एक आधार हमारे,
छोड़ तुम्हें अब कौन उबारे ॥५॥ नाथ···

— *'आरती'*

सनातन के प्रति !

'सनातन दर्शन की पृष्ठभूमि'—अपने आप में ही अति महान है। सनातन-दर्शन जाति-विशेष का नहीं, धर्म-विशेष का नहीं, देश-विशेष का नहीं; यह तो है दर्शन आत्माओं का, जो हैं व्याप्त सम्पूर्ण धरा पर ! धरा ही क्यों ? आत्मायें तो व्याप्त हैं सूर्य-लोक, देव-लोक, ब्रह्म-लोक एवं सनातन-लोक में ! सभी जगह तो वे व्याप्त हैं। आत्मा स्वयं में अनादि है, अनन्त है। सनातन-दर्शन भी उसी प्रकार अपरिसीम है। उसे समय, स्थान व कारण की सीमाओं से बांधा जा सकता नहीं है।

समस्त वेद इसी दर्शन को प्रतिपादित करते हैं; और व्याख्या के उपरान्त कहते हैं 'नेति'-'नेति'। यह तो महानतम् दर्शन है। समस्त प्रकृति इसकी अनुयायी है। जो कुछ भी दृश्य है, श्रव्य है, परिकल्पनीय है, तथा जो कल्पनातीत भी है, वह है समाया हुआ इस सनातन-दर्शन में !

इस दर्शन के आदि की कल्पना की नहीं जा सकती ; क्योंकि यह दर्शनहै आत्माओं का। आत्माओं की आदि नहीं, तो उनके दर्शन की आदि कहाँ ? इसके अतिरिक्त किसी अन्य दर्शन, ज्ञान की कल्पना नहीं की जा सकती। यह है अतुलनीय एवं अति-व्यापक ! 'सनातन-दर्शन' को पुस्तक-रूप में लाने में वेद भी अपने को असमर्थ पाते हैं। इसकी ही व्याख्या तो लिखी हुई है हर पत्ते पर, हर पौधे पर, हर ग्रह पर, हर नक्षत्र पर और हर ब्रह्माण्ड पर। इसके अतिरिक्त है ही क्या दिग्-दिगंतर में।

सो उसकी 'पृष्ठभूमि' मानव जीवन के परम् लक्ष्य मात्र को प्राप्त करने के दृष्टिकोण से लिखी है 'सनातन' ने, जिससे हम सब भी, हो जावें सनातन और प्राप्त करें 'अहं ब्रह्मास्मि'।

इस 'पृष्ठभूमि' में साररूप में, केवल सूत्रों में, 'सनातन-दर्शन' के कतिपय अति महत्वपूर्ण तथ्य हैं, जिनको आत्मसात् कर लेने पर मानव

मोक्ष को प्राप्त करने की दिशा में सुस्थिर कदमों से बढ़ सकता है और सतत् प्रयास से उसे प्राप्त भी कर सकता है !

'सनातन' मतानुसार यह पुस्तक है आत्मा की, इसलिए आत्मा को ही इसका लेखक बनाइये । सो लेखक है 'सनातन' । यह नाम लेखक के पार्थिव शरीर का नहीं है । उनकी इच्छा भी नहीं कि लोक उन्हें उनके पार्थिव नाम से जाने, सो उन्हें सनातन कहना ही उचित होगा । वस्तुतः वे हैं एक दिव्य-पुरुष, नित्य आत्म-संगी एवं सनातन ! आत्मा है नित्य-मुक्त, निस्संग, आनन्द-सरोवर । आत्मा में लिप्सा नहीं, मोह नहीं, अहं नही । वही है स्वभाव 'सनातन' का । वे हैं नित्य-मुक्त, निर्द्वन्द, आत्म-निष्ठ और हैं आनन्द के अपरिसीम भंडार । उनकी लिप्सा नहीं कि युग उन्हें जाने ।

'सनातन' हैं एक परम-दिव्य-योगी । उन्हें समझना, परखना, जानना सरल नहीं । उनके एक व्यक्तित्व में समाये हैं सहस्त्रों व्यक्तित्व ; और समाया है उनमें युगों का अपरिसीम ज्ञान-विज्ञान, दर्शन एवं धर्म ! उन्हें अद्वितीय ज्ञान है ज्योतिष का, हस्तरेखा का । ज्ञान की पराकाष्ठा को प्राप्त कर लिया है, तभी तो अब वे हो गये हैं 'मूढ़-भक्त' कन्हाई के ! इस शरीर की ज्ञानेन्द्रियों से पढ़े नहीं हैं वेद, पुराण, शास्त्र एवं उपनिषद् । फिर भी समाये हैं ये सभी ग्रंथ उनके भाषणों एवं दिव्य प्रवचनों में । उनका ज्ञान है अतीन्द्रिय और अलौकिक ! आत्मा का ज्ञान होता भी तो है ऐसा ही !

'सनातन' ने त्यागा सर्वस्व 'कन्हाई' के चरणों में । इस शरीर द्वारा अर्जित विद्या त्यागी, धन-वैभव-संपत्ति त्यागी, ऐश्वर्यमय अर्थोपार्जन त्यागा, घर-द्वार त्यागा । उन्होंने ज्ञान को ढोंग; एवं सम्मान को पाखण्ड की संज्ञा देकर त्याग दिया है । उनकी इच्छा नहीं कि जग जाने उन्हें उनके 'दशानन-स्वरूप' में !

'सनातन' ने मना कर दिया कि उनका इतिहास लिखना नहीं क्योंकि वे हैं आत्म-मार्गी, और आत्म-मार्गी का इतिहास कैसा ? जैसे 'आत्मा' की कोई 'इति' या 'ह्रास' नहीं, वैसे ही उनका भी कोई इतिहास नहीं । आजकल भक्तजनों के निरन्तर अनुरोध को स्वीकारते हुए 'सनातन'

ने एक आश्रम की स्थापना की दिशा में अनुमति प्रदान की है। आश्रम का निर्माण कार्य चालू है, जहां ज्योतिष-शिक्षा का एक स्कूल बनाकर 'सनातन' ने अपनी इस महान विद्या का दान सुयोग्य पात्रों को निष्काम भाव से देने की महती कृपा करने का आश्वासन दिया है।

इस पुस्तक को जन-जन हिताय लिखने के लिए 'सनातन' को प्रेरित किया, माननीया श्रीमती राजेन्द्र कुमारी बाजपेयी, खाद्य एवं रसद मंत्री, उत्तर प्रदेश, ने। इस महायज्ञ के लिए समस्त सनातन जगत उनका हृदय से आभारी है।

यह पुस्तक, जैसा कि इसका नाम है, मात्र 'पृष्ठ-भूमि' है। आशा है सनातन–जनों के हित के लिए भविष्य में 'सनातन' इसका और अधिक विस्तार करते हुए 'सनातन-दर्शन' भी देंगे।

यह पुस्तक है आत्मा की, सनातन की, आत्मा के लिये, आत्म प्राप्ति के लिये। एक ही ध्येय है—मोक्ष-प्राप्ति ; आत्म-प्राप्ति! उसी ध्येय से इसे पढ़ा जाये, समझा जाये, आत्मसात् किया जाये और कर्म-पथ में उतारा जाये। ज्ञान को ज्ञान के लिए न लेकर, ध्येय के लिए ही लेने पर वह फलदायी होता है, अन्यथा वह ज्ञानी को भटका देगा। यह है आत्मा का ज्ञान, इसे उसी स्वरूप में स्वीकारा जाना चाहिये। आशा है 'सनातन' की यह अमर 'पृष्ठभूमि' सबको कल्याणप्रद सिद्ध होगी।

हे पाठक वृंद! यह है आपकी ही पुस्तक, और है आपको ही समर्पित! इस पुस्तक के प्रकाशन में अच्छे कागज के भयंकर अभाव के कारण कागज भी बढ़े हुये मूल्यों पर (ब्लेक में) खरीदना पड़ा है। इस-लिए यह पुस्तक काफी मंहगी पड़ी है। आशा है आपके सहयोग से भविष्य में इसके वृहद् एवं सस्ते संस्करण छापे जा सकेंगे। आपका सहयोग स्तुत्य है।

कार्तिक कृष्ण अमावस्या
दीपावली, संवत् २०३१
लखनऊ।

आपके आभारी,
श्रीनारायण मिश्र
कृष्ण प्रेम अवस्थी

वसुधैव कुटुम्बकम्
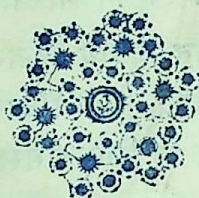
अन्तर्ब्रह्माण्डीय
सनातन सन्देश संघ

मान्यवर,

आत्मा मात्र का यह मिशन आरम्भ कर रहे हैं। इसके सदस्य बनकर जीवन धन्य करें। सद्भावना, श्रद्धा एवं सहयोग ही इसका चन्दा है। प्रत्येक आत्माधारी इस संघ का सदस्य बनने की पूरी योग्यता रखता है। यह सम्प्रदाय विहीन; प्रकृति के धर्म एवं आत्म-मार्ग के उपासकों का संघ है।

कृपया स्वीकृति की सूचना विवरण सहित देवें।

शुभ कामनाओं सहित

सनातन मित्र मण्डल